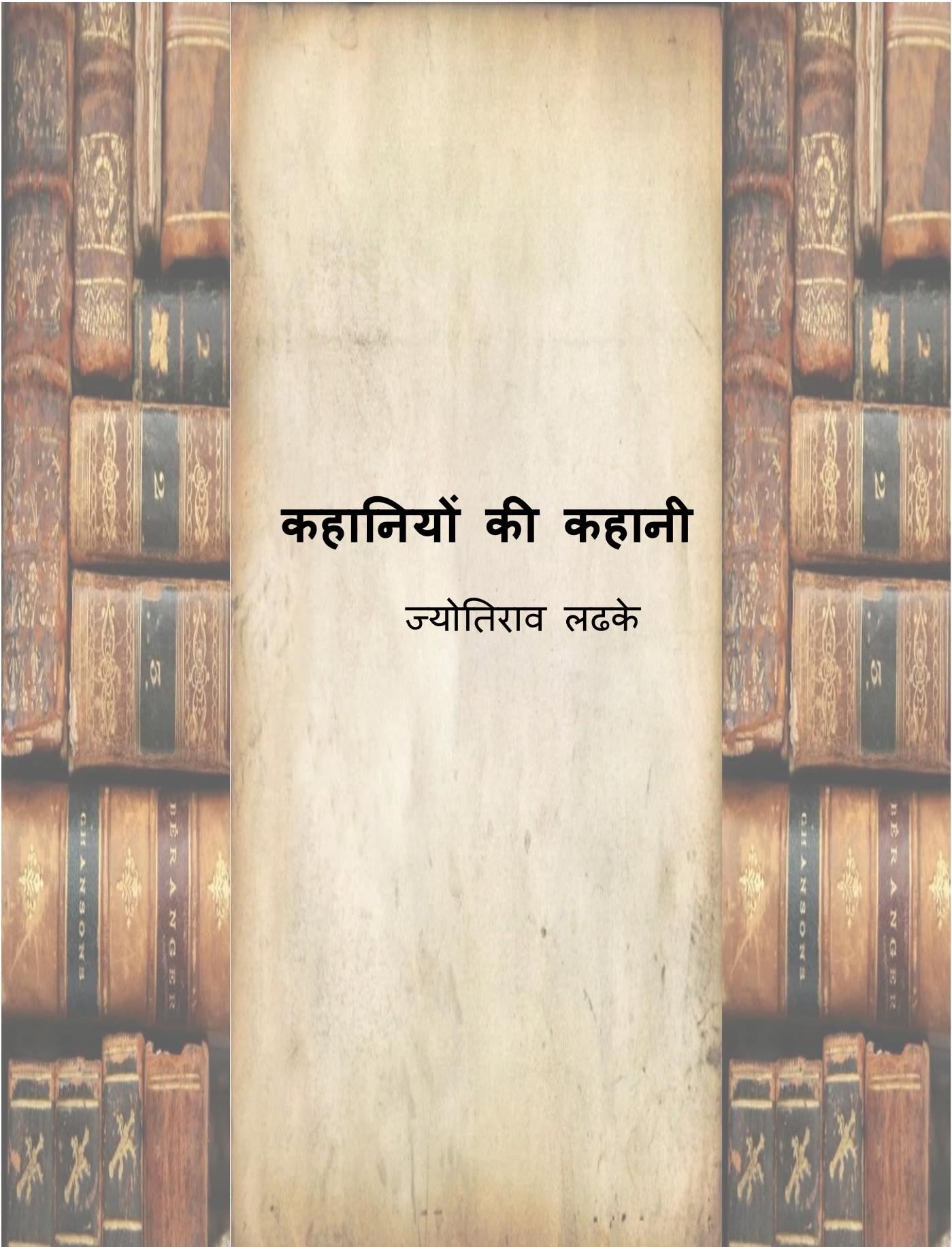


जब दो व्यक्तियों के बीच संप्रेषण होता है तो वास्तव में एक की दूसरे को कहानी कहने की ही मन्शा होती है, किसी व्यक्ति की, किसी घटना की, किसी प्रक्रिया की, किसी अनुभव की, रहस्य की मालिका को खोलने की, जानकारी अहाते में से घुमाकर लाने की, स्मृतियों के प्रदेश में रममाण करवाने की, विचार प्रवृत्त करने की, तो बेचैन करके छोड़ने की, अनामिक प्रेरणा का स्रोत होने की, चर्चा या विवाद का स्फूर्लिंग छोड़ने की। सभी कुछ तुम्हें समृद्ध करनेवाला।



कहानियों की कहानी

ज्योतिराव लढके

प्रास्ताविक

आदि मानव के लिए, जीवनयापन प्रित्यर्थ सामुहिक श्रम तथा सुरक्षा की दृष्टि से, समुह में रहना आवश्यक हो गया, तो वक्त काटने के लिए अपने अनुभवों में काल्पनिक मसाले मिलाकर दूसरों से संप्रेषण करने, बतियाने का सिलसिला शुरू हुआ होगा। कल्पनाओं का मिश्रण भी आवश्यक था ताकि संप्रेषण उबाऊ न हो।

जब दो व्यक्तियों के बीच संप्रेषण होता है तो वास्तव में एक की दूसरे को कहानी कहने की ही मन्शा होती है, किसी व्यक्ति की, किसी घटना की, किसी प्रक्रिया की, किसी अनुभव की, रहस्य की मालिका को खोलने की, जानकारी अहाते में से घुमाकर लाने की, स्मृतियों के प्रदेश में रममाण करवाने की, विचार प्रवृत्त करने की, तो बेचैन करके छोड़ने की, अनामिक प्रेरणा का स्रोत होने की, चर्चा या विवाद का स्फूर्लिंग छोड़ने की। सभी कुछ तुम्हें समृद्ध करनेवाला।

मनुष्य जाति के इतिहास में जबसे उसने बोलने की कला सिखी, शायद ही कोई व्यक्ति होगा जिसने इस या उस रूप में कहानी नहीं सुनी होगी। आज तो कहानी को एक साहित्यिक विधा माना जाता है। तो इस विधा की उत्पत्ति का मूल ढूँढते हुए हम पीछे-पीछे चलें, तो कहाँ पहुँचेंगे? जहाँ तक साहित्य का संदर्भ है, वेदों को ही सबसे पुराना साहित्य माना जाता है। लेकिन शुरू में यह साहित्य भी लिखित रूप में नहीं था, चूँकि लेखन के किसी लिपि का उद्भव, बाद की बात है। मुखाग्र रूप में ही उसका संप्रेषण पीढ़ी दर पीढ़ी होता रहा है। तार्किक दृष्टि से सोचा जाए तो इससे पहले भी कहना-सुनना चल ही रहा होगा। कहानी लिखने और पढ़ने की बात तो बाद में बनी। मूलतः तो यह सुनने-सुनाने की चीज थी।

प्राचीन समय में किसी ज्ञान को अक्षुण्ण रखने के लिए सुने और कहे गये अनुभव के रूप में स्मृति में संजोए रखना आवश्यक होता था। ज्ञान को सहज स्मृतिग्राह्य बनाने के लिए दृष्टान्तों की परंपरा अनजाने ही शुरू हुई होगी। और आगे ज्ञानवृद्धि के साथ सामान्य जन का संबंध ज्ञानव्याप्ति की जगह इन्हीं दृष्टान्तों से जुड़ता गया। और इन्हीं दृष्टान्तों ने लोककथाओं का रूप ले लिया, जो सहज, ग्राह्य और अति प्रभावी होती थीं।

आगे धर्म विस्तार ने आख्यायिकाओं के दृष्टान्तों के सहारे अपने सूत्रों को व्याख्यायित किया।

सहज ही समझा जा सकता है कि शुरू में ज्ञान की अल्पता के कारण साहित्य और कहानियों में भी कल्पनाओं का ही बोलबाला था। अद्भुत कथाएँ, लोककथाएँ, मिथक कथाएँ आदि इसकी प्रतिनिधि हैं। लेकिन समय जैसे-जैसे आगे बढ़ता रहा, वैसे-वैसे जीवन में काल्पनिकता और आध्यात्मिक गुढ़ता की जगह वास्तविकता अपना स्थान बनाती रही। अद्भुतता का स्थान तार्किकता लेने लगी। बर्बर सामन्तवाद और कुटिल पुरोहितवाद से समाज न्यायोचित समानता की ओर बढ़ने लगा। जीवन कई आयाम ग्रहण करने लगा। इन सारी बातों का प्रतिबिंब तत्कालीन कहानियों में पड़ना लाजिमी था। कहानी का स्वरूप भी बदलता रहा।

ज्ञान, आदर्श, मानवीय मूल्य, मानवीय संवेदनाओं का संवहन जितने अच्छे ढंग से कहानी कर सकती है उतनी शायद ही कोई ओर विधा। और समाज को तो इसी दिशा में आगे बढ़ना है। इसीलिए कहानियाँ महत्व हैं।

सारिका

बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में, कहानी विधा को समर्पित थी टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन की पत्रिका 'सारिका'। यह शुरू में मासिक तो बाद में पाक्षिक तौर पर नियमित निकलती थी। इसके प्रकाशन का कालावधि लगभग 1961 से लेकर तो नव दशक के उत्तरार्ध तक रहा है। इसने समय-समय पर भिन्न-भिन्न संदर्भों से जुड़ी कहानियों के विशेषांक भी निकाले थे। इन विशेषांकों की संख्या लगभग सौ हैं। मुझे उपलब्ध हुई जानकारी के अनुसार सारिका का अंतिम प्रकाशित अंक क्रमांक 454 होना चाहिए। वेबसाइट पर काफी खोज करने पर भी इसके केवल 54 अंक वेबसाइट 'हिंदवी' पर उपलब्ध हैं। उनमें भी विशेषांक केवल आठ हैं।

सारिका के विशेषांक--

वास्तव में यह एक जगह उपलब्ध सारा साहित्य, अमूल्य धरोहर है। (मेरे पास 70 विशेषांक उपलब्ध हैं, लेकिन इन सबको वेबसाइट पर उपलब्ध कराना मेरे अकेले के क्षमता के बाहर की बात है।) ये अंक टाइम्स के कई खोजियों की कड़ी मेहनत का परिणाम है।

जहाँ तक हिन्दी कहानियों के वर्गीकरण का सवाल है, उन्हें लेखकों की पीढ़ियों के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। सारिका ने पांच पीढ़ियों के पांच और दो संयुक्त पीढ़ी विशेषांक प्रकाशित किए थे। तथा इनमें इन कहानियों पर विशेष भाष्य भी दिये हैं। इन कहानियों की विशेषताओं की इससे अच्छी व्याख्या हो नहीं सकती। ये प्रकरण कुछ हद तक टाइम्स प्रकाशन के सौजन्य से, उसके इन्हीं प्रयासों पर आधारित है।

सारिका के विशेषांकों से संबंधित कुछ जानकारी इस प्रकार है जो अन्यत्र दी हुई है। इनमें दुनिया के चोटी डे लगभग 150 कथालेखक तथा लगभग 1500 सर्वोत्तम और चयनित कहानियाँ से आपका साक्षात्कार होगा। इतनी सारी कहानियाँ और उनसे जुड़ी बातें विस्तार के साथ एक मर्यादा से अधिक, इस अल्प से प्रयत्न में संभव नहीं था। फिर भी पाठकों को और खास करके नयी पीढ़ी के पाठकों को उत्कृष्ट लेखक और उत्कृष्ट कहानियाँ इनके बारे में तो जानकारी मिल ही सकती है।

नववें दशक के उत्तरार्ध, प्रकाशित होनेवाले हिन्दी के नियतकालिक एक के बाद एक बंद होते गये। हिन्दी कहानियाँ और अन्य साहित्य प्रकाशित होने के और वे पाठकों को आसानी से उपलब्ध होने के रास्ते बंद हो गये।

सारिका के ये सारे अंक प्रत्येक व्यक्ति के लिए हो सकता है ढूँढने पर भी उपलब्ध न हो। इतिहास में हर सामाजिक गतिविधियाँ दर्ज नहीं हो सकती। लेकिन उनके संदर्भ हमें तत्कालीन साहित्य और खास तौर पर कथा साहित्य में अवश्य मिलते हैं। वे भी लुप्तप्राय न हों इसीलिए कहानियाँ का महत्व है। इस दृष्टि से इस अमूल्य धरोहर को काफी कुछ आधार बनाकर लेखन करने का विचार मन में आया। उसकी पूर्ति में मैं कहां तक सफल हुआ और यह सामग्री कितनी उपयोगी रहेगी इसका निर्णय तो पाठक ही कर सकते हैं।

कहानियों की कहानी

अनुक्रमणिका

क्रमांक	प्रस्तावना	प्रकरण	पृष्ठ
1)		कहानियों की कहानी -----	6
2)		अद्भूत कथाएँ -----	10
3)		लोककथाएँ -----	19
4)		मिथकीय कथाएँ -----	23
5)		विज्ञान कथाएँ -----	33
6)		मराठी विज्ञान कथाएँ -----	39
7)		हिन्दी कहानियाँ -----	41
8)		कहानियाँ : समीक्षाशास्त्र का दृष्टिकोण -----	70
9)		विचित्र कहानियाँ -----	78
10)		हास्य / मृत्यु गीत (कहानियाँ) -----	82
11)		प्रतिनायक की कहानियाँ -----	92
12)		युद्ध की कहानियाँ -----	95
13)		महाविनाश की कहानियाँ -----	104
14)		अपराध कहानियाँ -----	112
15)		जासूसी कहानियाँ -----	124
16)		क्रांतिकारियों की कहानियाँ -----	134
17)		जब्तशुदा कहानियाँ -----	142
18)		भावावेग की कहानियाँ -----	155
19)		नोबेल पुरस्कार प्राप्त लेखकों की कहानियाँ -----	165
20)		कथा साहित्य का फिल्मांकन -----	174
21)		ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त लेखकों की कहानियाँ -----	188
22)		नारी पीड़ा की कहानियाँ -----	198

प्रकरण १

कहानियों की कहानी

मनुष्य जाति के इतिहास में जबसे उसने बोलने की कला सिखी, शायद ही कोई व्यक्ति होगा जिसने इस या उस रूप में कहानी नहीं सुनी होगी। आज तो कहानी को एक साहित्यिक विधा माना जाता है। तो इस विधा की उत्पत्ति का मूल ढूँढते हुए हम पीछे-पीछे चलें, तो कहाँ पहुँचेंगे? जहाँ तक साहित्य का संदर्भ है, वेदों को ही सबसे पुराना साहित्य माना जाता है। लेकिन शुरू में यह साहित्य भी लिखित रूप में नहीं था, चूँकि लेखन के किसी लिपि का उद्भव, बाद की बात है। मुखाग्र रूप में ही उसका संप्रेषण पीढ़ी दर पीढ़ी होता रहा है। तार्किक दृष्टि से सोचा जाए तो इससे पहले भी कहना-सुनना चल ही रहा होगा। कहानी लिखने और पढ़ने की बात तो बाद में बनी। मूलतः तो यह सुनने-सुनाने की चीज थी।

वैसे यह सिलसिला ऋग्वेद तक जाता ही है। ऋग्वेद में वृत्रवध की कहानी, इंद्र से संबंधित प्रमुख कथा है। वृत्र को 'अहि' = सर्प कहा गया है। वह जल के प्रवाह को रोके हुए था। इंद्र-वृत्र के युद्ध के समय आकाश और पृथ्वी कांप रहे थे। इंद्र ने अपने वज्र से वृत्र का वध करते ही जलप्रवाह मुक्त होते हैं। इंद्र-वृत्र संघर्ष बार-बार होता है। वृत्रवध के कारण ही इंद्र को 'अप्सुजीत' कहते हैं।

'ब्राह्मण' कहें जाने वाले, वैदिक ग्रंथ हैं। इनकी रचना वैदिक संहिताओं के बाद हुई। वैदिक यज्ञ संस्था का शास्त्र, ब्राह्मण ग्रंथों ने बनाया। औपनिषदिक दर्शन की नींव इन्हीं ग्रंथों ने डाली। मंत्रों का स्पष्टीकरण देने, ब्राह्मण ग्रंथों की रचना हुई है। इन ग्रंथों का प्रमुख विषय 'यज्ञ' ही है। स्वर्गप्राप्ति के लिए 'यज्ञ' ही प्रधान धर्म-कर्म है। इस यज्ञ में उपयुक्त कर्म बतानेवाले ग्रंथ, यह इन ब्राह्मण ग्रंथों की विशेषता है।

यज्ञ से संबंधित ऐसी विश्वोत्पत्ति कथा, अन्य पुराण कथाएँ, इन ब्राह्मण ग्रंथों में आती हैं। आर्षवाद का एक हिस्सा इस रूप में, ब्राह्मण ग्रंथों में कई आख्यान, 'इतिहास और पुराण' इस नाम से आते हैं। इनमें पुरुरवा-उर्वशी (शतपथ ब्राह्मण), जल प्रलय कथा (श. ब्राह्मण), शुनःशेष कथा (ऐ. ब्रा.), सोमहरण कथा (श. ब्रा.), यम-यमी कथा (मैत्री सं.), विश्वोत्पत्ति कथा (श. ब्रा.) आदि हैं। ये सारी कथाएँ ' इतिहास और पुराण ' इस वाङ्मय के पूर्व चिन्ह हैं।

इसके बाद आते हैं आरण्यके। चार आश्रम के सिद्धांत के तृतीय आश्रम संबंधित अर्थात् वानप्रस्थाश्रम संबंधित साहित्य यानि आरण्यके। इनमें आता है यज्ञ का गुह्य और प्रतिकात्मक अर्थ और यज्ञ धर्म का दर्शन। वैदिक युग के अन्त में ये ग्रंथ तैयार हुए। ये वेद का अंतिम हिस्सा हैं।

इसके बाद आती हैं उपनिषदें। इन सबमें जनश्रुति, रैक्व, सत्यकाम, जाबाल, प्रजापति, इंद्र, विरोचन आदि की कथाएँ आती हैं। उदाहरण : छांदोग्योपनिषद्।

बाद के ग्रंथ हैं पुराण। पुराण शब्द के कई अर्थ पाये जाते हैं। एक अर्थ है, 'प्राचीन आख्यान, पुरातन आख्यान'। इनमें देव / सूरों की कथाएँ हैं। विष्णु पुराण में एक कथा आती है, 'तैत्तिरीय संहिता से संबंधित। उसके अनुसार ऋषि वैशंपायन एक बार अपने शिष्य याज्ञवल्क्य पर क्रोधित हुए और कहा, "मैंने पढ़ाया वेद

लौटा दे”। याज्ञवल्क्य ने उसे वमन द्वारा निकाल दिया। तब अन्य शिष्यों ने तित्तर पक्षी का रूप धारण कर उसे ग्रहण किया। इस कारण इसे ‘तैत्तिरीय संहिता’ कहते हैं। लेकिन पाणिनी ने तित्तिर नामक ऋषि के नाम से इसका संबंध बताया है।

संस्कृत गद्यकाव्य

संस्कृत गद्यकाव्य प्रायः कथा और आख्यायिका इन दो रूपों में मिलता है। ‘कथा’ और ‘आख्यायिका’ इनमें भेद करने के प्रश्न पर साहित्य मनीषियों में बड़ा विवाद हुआ था। ‘भामहा’ का मत ‘दण्डी’ ने अमान्य किया। तब ‘रुद्रट’ ने बाणभट्ट की ‘कादंबरी’ और ‘हर्षचरित’ इन दो ग्रंथों को मानक मानकर, एक को कथा तो दूसरे को आख्यायिका, ऐसा विभाजन कर दिया।

कथा में ‘कन्यालाभ’ यह बात प्रमुख हो, तो आख्यायिका में ‘राजा का चरित्र’ आवश्यक है। इसके सिवाय आख्यायिका में कवि स्वयं का चरित्र देता है। प्रकरणों को ‘उच्छवास’ कहा जाता है। उच्छवास के आरंभ में आर्या वृत्त में श्लोक होता है। भामहा के नियमानुसार कादंबरी कथा नहीं मानी जा सकती। अतः रुद्रट का मत ग्राह्य मान लिया जाता है। बाणभट्ट की भी इसके प्रति मौन सहमति है, ऐसा माना जाता है।

ईसा सदी के काफी पहले से ही ‘आख्यायिका’ नामक गद्य काव्य प्रकार, काव्य का एक हिस्सा इस रूप में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था। कात्यायन ने अपनी वर्तिका में तथा पतंजलि ने ‘वासवदत्ता’, ‘सुमनोत्तरा’, व ‘भैमरथी’ ऐसी तीन प्रसिद्ध आख्यायिकाओं के नाम दिये हैं। गद्यकाव्य के उपरोक्त दोनों प्रकार काफी पहले से लोकप्रिय हो चुके थे।

आख्यान : स्वयं देखकर लिखी हुई कथाएँ।

उपाख्यान : सुनने के बाद लिखी हुई कथाएँ।

गाथा : घटित हुई घटनाओं की पद्यात्मक स्मृतियाँ।

इन गद्यकाव्य के साहचर्य से ही लोककथाएं विकास पायीं।

रामायण

रामायण जैसा आर्ष (ऋषिकृत) महाकाव्य एकदम रचित होना संभव नहीं। वैदिक समय से ही वह उत्क्रांत होते हुए बढ़ना चाहिए। ऋग्वेद (10. 93,14) में ‘राम’ इस नाम का उल्लेख है और (4.57.6-7) में सीता का उल्लेख कृषि देवता के तौर पर मिलता है। लेकिन इतने आधार पर यह कहना संभव नहीं कि वह वैदिक काल से है।

व्यावसायिक तौर पर कथाकथन करनेवाले वैदिक समय से थे। ऐसा बतानेवाले ‘सुपर्णाख्यान’ के कथन से विरोध होने का कोई कारण नहीं। पहले ऐतिहासिक कथानक तथा वीर वर्णनपर गाथाएं, एकदूसरे से जुड़ती हुई रहीं। आगे उनका विकास रामायण, महाभारत रूप में होना चाहिए। उन्हें ग्रंथ स्वरूप प्राप्त होने के पूर्व, कई सदियों तक, आख्यानों के गीतों के रूप में उनका अस्तित्व होना चाहिए। ये गीत या वीरवर्णन गाथाएं ‘नाराशंसी’ सूत लोगों का वाडमय था। ऐसे आख्यानक कविताओं के निर्माताओं को ‘सूत या कुशीलव’ कहते थे। इस दृष्टि से रामायण-महाभारत सूत संस्कृति का साहित्य बनता है। प्रत्यक्ष रामायण में उल्लेख मिलता है कि व्यावसायिक आख्यानों अर्थात् कुशीलवों की परंपराओं द्वारा रामायण का कथन किया जाता था। प्रमुख रामकथा के साथ-साथ रामायण में कई उपकथानक आये हैं। वे मुख्यतः बाल और उत्तर कांड में हैं।

- रामायण को युद्ध आख्यानक काव्य भी कहा जाता है।
- भारतीय परंपरा के अनुसार रामायण, महाभारत से प्राचीन है।
- **महाभारत**

महाभारत में, रामायण की तुलना में ' आख्यान ' भाग अर्थात् मूल कथानक जितना है उससे अधिक उपदेश और नीतिप्रधान हिस्सा है। (पांच गुना है ऐसा कहा जाता है)।

बौद्ध साहित्य

गौतम बुद्ध ईसा के पूर्व 487 में निर्वाण को प्राप्त हुए। इसके एक सदी उपरांत उनके शिष्यों में मतभेद उभरकर आये। आगे इसके बाद तो तीन सदियाँ समाप्त होते-होते उनमें अलग-अलग पंथ पैदा हुए, जिनकी संख्या तीस तक पहुँच गयी। मूल शिष्यों से पथभ्रष्ट हुए, वे थे ' महासांघिक '। उनमें से ईसा पूर्व तीसरी सदी में पैदा हुआ एक उपपंथ ' लोकोत्तरवादी '। उसका ग्रंथ ' महावस्तु ' का समय भी वही मानना होगा। यह कथा साहित्य या ' जातक ' कथाओं का महाग्रंथ है। यह ग्रंथ मूलतः हीनयानियों का है। लेकिन उसमें महायानियों के विचार भी बीच-बीच में उछलते हुए दिखते हैं।

ललितविस्तर

इसे बुद्ध विषयक सारी दन्तकथाओं का उद्गमस्थान माना जाता है।

सुत्रालंकार

यह जातक और अवदान (महत्वपूर्ण घटनाओं पर आधारित) कथाओं का संग्रह है।

बुद्धचरित

यह अश्वघोष की काव्य प्रतिभा का आविष्कार माना जाता है। उसमें महावस्तु तथा ललितविस्तर से अधिक सुसंबद्ध और व्यवस्थित ढंग से बुद्ध की कथा वर्णित है। महावस्तु और ललितविस्तर में बुद्ध के विषय में जो अतिशयोक्तिपूर्ण व चमत्कारिक दन्तकथाओं का जाल बुना गया था, उसमें से शुद्ध, सरस काव्य निर्मिती का श्रेय अश्वघोष को ही जाता है। यहाँ नीरस चरित्र और बुद्ध मतों की शुष्क चर्चा नहीं है।

सौन्दरनन्द

यह अश्वघोष का ही महाकाव्य है और इसमें भी बुद्ध कथा ही है। अश्वघोष का समय ईसा की प्रथम सदी है।

जैन साहित्य

मेरुतुंग का ' प्रबंध चिन्तामणि ' इ. स. 1306 में पूर्ण हुआ तो राजशेखर का ' प्रबंधकोश ' 1339 में। ये दोनों ग्रंथ ऐतिहासिक, धार्मिक और अद्भूत कथाओं के संग्रह हैं। यह निर्विवाद बात है कि जैन धर्मगुरु और ग्रंथकार, उत्तम कथा निवेदन करनेवाले लेखक थे। उन्होंने संस्कृत, प्राकृत, और अपभ्रंश भाषाओं में अद्भूत, सुरस और चमत्कृत करनेवाली कथाओं के संग्रह में बहुत भारी वृद्धि की। लेकिन मनोरंजन यह उन कथाओं

का दुय्यम उद्देश्य था। उनका प्रमुख उद्देश्य था वाचकों को धार्मिक ज्ञान देना। पालित्सुरी (पादलिप्तसुरी) की ' तरंगवती ' अति प्राचीन (ईसा की पाचवीं सदी) अद्भूत धर्मकथा थी। उसकी मूल प्रति नष्ट हुई। लेकिन उसका ' तरंगालिक ' इस नाम से 1643 श्लोकों का सारांश उपलब्ध है। हरिभद्र की ' समराइच्च कहा ' यह भी काव्यात्मक अद्भूत धर्मकथा है। ग्रंथ गद्य में है लेकिन पद्य भी बीच-बीच में झांकता है। भाषा 'जैन महाराष्ट्री ' है। सिद्धर्षि के ' उपमितिभवप्रपंच ' में संस्कृत रूपकात्मक उपन्यास की परमोच्च चोटी दृष्टिगोचर होती है। यह अद्भूत धर्मकथा ईसा के 906 में पूरी हुई। यह गद-पद्य मिश्रित है। इसे बहुत ही महत्वपूर्ण माना जाता है। धनपाल की ' भविसत्तकहा, ' किसी अज्ञात लेखक की ' मलयसुंदरीकथा ' ये काव्यमय अद्भूत कथाएँ हैं।

बाद में छोटी-छोटी कथाओं के संग्रह सामने आये। उन्हीं में से कइयों के दीर्घ काव्य बने। 'कालकाचार्य का कथानक ' यह प्राकृत गद्य-पद्य में काव्यात्मक कथानक है। उसमें उज्जयिनी के 'गर्दभिल्ल ' राजा की हकीकत है। इस ग्रंथ का कर्ता तथा समय अज्ञात है।

किसी अज्ञात लेखक का ' कथाकोष ' उल्लेख करने योग्य है। एक कथाकोष संस्कृत में तो दूसरा प्राकृत में है। प्राकृत ग्रंथ श्रीचंद्र का ग्यारहवीं सदी का है।

प्रकरण २

अद्भुत कथा

अद्भुत कथाओं के संस्कृत में कई ग्रंथ हैं।

लेकिन गुणाढ्य की ' बृहत्कथा ' यह इस प्रकार में सबसे प्राचीन ग्रंथ है। लेकिन दुर्भाग्य से इसकी मूल प्रति उपलब्ध नहीं है। फिर भी उसके अनुवाद के तीन संस्करण उपलब्ध हैं। वे इस प्रकार हैं—

- 1) बृहत्कथा श्लोक संग्रह : इसे बुद्धस्वामी ने तैयार किया। इसे बृहत्कथा का नेपाली संस्करण कहते हैं। वास्तव में यह बृहत्कथा का सारांश - अनुवाद है। इसका हस्तलिखित नेपाल में मिला था। यह ग्रंथ आठवीं-नवीं सदी में तैयार होना चाहिए।
- 2) बृहत्कथामंजरी : क्षेमेन्द्र ने इसे इ.स.1037 के दरम्यान तैयार किया। यह बृहत्कथा का सत्यनिष्ठ सारांश होना चाहिए, ऐसा विश्वास किया जाता है।
- 3) कथासरित्सागर : इसका कर्ता है सोमदेव और तैयार होने का समय है लगभग सन् 1070। यह कश्मीरी अनुवाद है जिसमें 84000 श्लोक हैं। इसे सर्वाधिक लोकप्रियता मिली है। आगे इसीने 24000 श्लोकों का सारसंग्रह तैयार किया और भाषा भी बदल दी।

गुणाढ्य की मूल कथा संस्कृत में नहीं तो, 'पैशाची' नामक प्राकृत में थी।

कथासरित्सागर को सामने रखकर, 'पेंझर' बृहत्कथा के विषय में कहते हैं—

“ कथासरित्सागर यह, मानवी कल्पना, जितने भी प्रसंगों की कल्पना कर सकती है, उतनी सभी कथाओं का संग्रह है। ईसा पूर्व से चली आ रही, पशु-पक्षियों की, जगत उत्पत्ति विषयक, ऋग्वेद से, परंपरा से आर्यों खून जमानेवालों भूत, वेताल, राक्षसों की, समुद्र पर्यटन के अज्ञात द्वीप, झंझावात आदि सामुहिक जीवन की, काव्यात्मक रम्य प्रणय की, देव, दैत्य, मानव की, युद्ध की, सभी प्रकार की कथाएँ तुम यहां देखोगे। चमत्कारिक और अद्भुत कथाओं का उद्भव स्थान है भारत, पर्सिया या अरबस्तान नहीं। अद्भुत कथाओं ने प्रथम जन्म लिया भारत में ही। 'अरेबियन नाइट्स' से पुरातन है कथासरित्सागर। उसकी ही कुछ कथाएँ कम-अधिक फर्क के साथ 'अरेबियन नाइट्स' में प्रवेश कर गयीं। पूरी दुनिया के अद्भुत कथा साहित्य पर इस ग्रंथ का प्रभाव जरूर रहा है।”

सोमदेव की कथा कहने की पद्धति स्पष्ट, रेखीव और आकर्षक है। उससे अद्भुत रस को उछाल मिल गया।

क्षेमेन्द्र और सोमदेव दोनों भी कश्मीर के 'अनन्त' राजा के समकालीन (इ. स. १०२९-१०६४) हैं।

अब गुणाढ्य के विषय में-- उसकी अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। इतना ही ज्ञात है कि वह गोदावरी किनारे, प्रतिष्ठान का रहनेवाला और सातवाहन राजा के दरबार में आश्रित था। तो बुद्धस्वामी का '

बृहत्कथाश्लोकसंग्रह ' तथा एक अन्य ग्रंथ - नेपाल महात्म्य ' कहते हैं कि गुणाढ्य का जन्म मथुरा में हुआ तथा वह उज्जैन के मदन राजा का दरबार कवि था। अर्थात् इस विषय पर एकमत नहीं है।

गुणाढ्य के विषय में एक दन्तकथा -

सातवाहन राजा एकबार अपनी कई रानियों के साथ गोदावरी के प्रवाह में विहार करते समय एक रानी ने उससे कहा ' मोदके परिताड्य माम् ' । राजा को अर्थ समझा नहीं। इस कारण उसने मोदक लाने की आज्ञा दी। तब रानी ने, राजा का संस्कृत विषयक अज्ञान उसके ध्यान में ला दिया। यह बात राजा के दिल को लगी। उसने संस्कृत सीखने की ठान ली। गुणाढ्य ने उसे छह साल में संस्कृत का अच्छा जानकार करवाने की बात कही। तो शर्मवर्म नामक ब्राह्मण ने यह काम छह महिने में ही करने की बात कही और वैसा करके भी दिखाया। इससे गुणाढ्य को अपने आप पर ग्लानि हुई। उसने संस्कृत और तद्भव भाषाओं का त्याग किया और वह विंध्यारण्य में चल दिया। वहाँ उसने पिशाच जाति की ' पैशाची ' भाषा सीखी और शंकर ने पार्वती को बतायी ' बृहत्कथा ' शंकर के एक गण के मुख से सुनी तथा अपने खून से ताडपत्रों पर पैशाची भाषा में उतारी और राजा को बतायी। लेकिन शुरू में राजा ने उस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। इसे अपने ग्रंथ का अपमान समझकर गुणाढ्य ने अपना ग्रंथ जलाना शुरू कर दिया। इस बात का राजा को पता चलते ही राजा गुणाढ्य को सन्मान के साथ दरबार ले आया। कहते हैं शुरू में, ग्रंथ में सात लाख श्लोक थे। लेकिन राजा ने दरबार में लाने तक उनमें से छह लाख श्लोक जलकर नष्ट हो गये थे। जो बचा वही ' बृहत्कथा '।

यह कथा क्षेमेन्द्र के ' बृहत्कथामंजरी ' और सोमदेव कथासरित्सागर इन बृहत्कथा के कश्मीरी अनुवादों में मिलती है।

सात लाख में से एक लाख श्लोक ही बचे। इससे यह साफ होता है कि मूल ग्रंथ पद्य में था। उसके दो अनुवाद, कश्मीरी तथा नेपाली, भले ही श्लोकबद्ध हो लेकिन ' दण्डी ' ने ' काव्यादर्श ' में यह सबूत पेश किया है कि बृहत्कथा गद्य में थी। अतः यह प्रश्न अभी भी अनसुलझा ही है कि बृहत्कथा गद्य में थी या पद्य में। लेकिन उसके पद्य रूप को मान लेने में बड़ी भूल होगी ऐसा नहीं। बृहत्कथा का अनन्यसाधारण महत्व है। बाद के कथाकारों ने जैसे भास, हर्षदेव, भवभूति, बाण, शुद्रक आदि ने अपने काव्य नाटकों की रचना करने के लिये बृहत्कथा की कथाओं का आश्रय लिया है। इस कारण बृहत्कथा को रामायण, महाभारत के बराबर का सन्मान प्राप्त हुआ है। तत्कालीन भारतीय रितिरिवाज, समझ, श्रद्धा, आचार-विचार आदि की जानकारी इस ग्रंथ से मिलती है। गुणाढ्य की प्रतिभा की भी अस्पष्ट सी कल्पना आती है।

इसी कारण संस्कृत साहित्य के तीन प्रवाह के तौर पर रामायण, महाभारत और बृहत्कथा का उल्लेख किया जाता है।

पीछे उल्लेख हुआ है, उस शर्मवर्म ' के तन्त्र ' व्याकरण का समय ईसा की पहली सदी है तो उपरोक्त जानकारी के आधार पर बृहत्कथा का समय भी ईसा की पहली सदी, यह ' लॅकॉट ' का मत भी ग्राह्य माना जा सकता है।

वेतालपञ्चविंशतिका

कथासरित्सागर के ' शशांकवती ' प्रकरण में संपूर्ण वेताल कथा अंतर्भूत है। लेकिन ऐसा अनुमान है कि पहले यह स्वतंत्र ग्रंथ होना चाहिए। इसमें वेताल ने त्रिविक्रमसेन (विक्रमादित्य) राजा को कथन की हुई 25 कथाएँ आती हैं। इस ग्रंथ का अनुवाद लगभग सभी भाषाओं में हुआ है और ये कथाएँ लगभग सभी को मालूम हैं।

सिंहासन द्वात्रिंशिका या द्वात्रिंशपुत्तलिका या विक्रमार्कचरित

यह एक बत्तीस कथाओं का संग्रह है। प्रस्तुत ग्रंथ कई संस्करणों के माध्यम से प्राप्त हुआ है। उनमें एक पद्य, एक गद्य और एक मिश्रित ग्रंथ है। जो गद्य संस्करण है वह चौदहवीं सदी का ' क्षेमकर ' नामक जैनी का है और वही खास तौर पर प्रसिद्ध है। इंद्र की ओर से विक्रमादित्य को मिले और फिर भोज राजा को प्राप्त हुए सिंहासन पर लगी हुई बत्तीस पुत्तलियों ने कथन की हुई ये कथाएँ हैं।

“ विक्रमादित्य यही भारतीय कथाओं की मध्यवर्ती व्यक्ति है, ऐसा विद्वानों का दावा है। “

शुकसप्तति

यह शुक ने कथन की हुई 72 कथाओं का संग्रह है। बोलनेवाला शुक यह कल्पना मूलतः बाणभट्ट की है। कादंबरी कथा का शुक भी कथाकथन करता है। इस ग्रंथ का समय इ. स. 1000 का है।

इसके अतिरिक्त विद्यापति की ' पुरुषपरीक्षा (पंधरहवीं सदी), बल्लाळ सेन का ' भोजप्रबंध ' (सोलहवीं सदी), शिवदास का ' कथार्णव ' आदि कई अद्भुत कथाओं के संग्रह हैं।

नीतिकथाएं

नीतिकथा यह उपदेश देने की प्रवृत्ति से निकला साहित्य है। लेकिन उपदेश उबाऊ न होते हुए मनोरंजक हो इस हेतु से नीतिकथाओं को रोचक रूप प्राप्त हुआ। मनुष्य को व्यवहार कुशल बनाया जाए, सदाचार समझा दिया जाए, धूर्त की धूर्तता से परिचित करा दिया जाए आदि उद्देश्य यहाँ हैं।

पंचतंत्र

यह नीतिकथाओं का जगप्रसिद्ध ग्रंथ है।

पंचतन्त्र तथा बृहत्कथा दोनों लोककथाओं के ही संग्रह हैं। लेकिन बृहत्कथा में अद्भूत चमत्कार, श्रद्धा ये गुण अधिक हैं। पंचतंत्र में पशुपक्षियों के मनुष्यवत् व्यवहार व नीति ये विशेषताएं हैं। पंचतन्त्र का एक संस्करण ' तन्त्राख्यायिका ' इस नाम से है। उसमें ' आख्यायिका ' यह शब्द आता है। तो बृहत्कथा में ' कथा ' शब्द आता है। लेकिन आख्यायिका और कथा इन्हें अलग करनेवाले ऐसे कोई नियम नहीं हैं। फिर भी रचना, कल्पना और हेतु इन सारी दृष्टियों से दोनों में निश्चित ही अंतर है। शुरू में दोनों में होनेवाला अंतर होता था वह यह कि अद्भूत कथा में शुद्ध पद्य होता था या शुद्ध गद्य। तो नीतिकथा मिश्रित स्वरूप की होती थी।

नीतिकथा का स्रोत ऋग्वेद तक पहुँचता है। ऋग्वेद के मंडुक सुक्त (7-103) में एक मनुष्य और मच्छ की कथा मिलती है। छांदोग्य उपनिषद में, सत्यकाम जाबाल ने पशु-पक्षियों से उपदेश ग्रहण किया, ऐसा उल्लेख मिलता है। वहीं एक श्वान का भी आख्यान है। आगे पुराणों में तथा महाभारत में भी पशु-पक्षियों की कथाएँ आती हैं। बौद्ध तथा जैन साहित्य में भी उनकी उपस्थिति है। बौद्धों की जातक कथाएँ इसी कल्पना से रचित हुई हैं। बुद्ध ने अनेक पारमिता प्राप्त कर लेने के लिए अर्थात् जगत उद्धार के लिए, अनेक पशु-पक्षियों के भी जन्म लिये। ऐसा कथन करनेवाली 550 जातक कथाएँ हैं। ये जातक कथाएँ ईसा पूर्व दूसरी सदी में भी थीं। अर्थात् नीतिकथाओं में पशु-पक्षी इस अंश का मूल ऋग्वेद में भले ही हो, लेकिन नीति विषयक नीतिकथा ईसा पूर्व दूसरी सदी में अस्तित्व में आयी। मनु, बृहस्पति, शुक्र, पाराशर, व्यास, कौटिल्य ये वास्तव में नीति वैज्ञानिक ही थे।

पंचतंत्र का समय : उपलब्ध पंचतंत्र में, नमन् के बाद एक श्लोक आता है।

मनवे वाचस्पतये शुक्राय पराशराय सत्युताय । चाणक्याय च विदुषे नमोऽस्तु नयशास्त्रकर्तृभ्य ॥

इसमें चाणक्य का उल्लेख दर्शाता है कि पंचतंत्र ईसा पूर्व 300 के बाद अस्तित्व आया। उसका पहला अनुवाद पहलवी भाषा में इ. स. 550 में हुआ। पंचतंत्र में ' दीनार ' यह रोमन शब्द मिलता है। ये सारे संदर्भ बताते हैं कि पंचतंत्र की रचना पहली-दूसरी सदी में हुई, ऐसा माना जा सकता है।

मिहिलारोप्य नगरी के, अमरशक्ति राजा के तीन लड़कों को राजनीति और व्यवहारचातुर्य की शिक्षा देने के लिए ' विष्णुवर्मा ' ने इसकी रचना की, ऐसा उसकी प्रस्तावना में उल्लेख है। लेकिन लेखक का वास्तव नाम ' विष्णुवर्मा ' था या नहीं, इस विषय में संदेह है। ' हर्टेल ' के अनुसार पंचतंत्र का निर्माण स्थल कश्मीर है। लेकिन इस बारे में भी संदेह है।

पंचतंत्र के संस्करण : मूल पंचतंत्र उपलब्ध नहीं है। लेकिन हर्टेल और एडगर्टन इन्होंने चार उपलब्ध संस्करणों के आधार पर, महत्प्रयास से, मूल ग्रंथ के काफी करीब होगा, इस तरह के ग्रंथ की रचना की। ये चार संस्करण हैं--

- 1) **तंत्राख्यायिका** : शारदा लिपि का यह संस्करण, हर्टेल को कश्मीर में मिला। यह एक अकेला संस्करण है जिसमें मूल पंचतंत्र का काफी हिस्सा है। लेकिन बाहर से डाला हुआ भाग भी काफी है। इससे संबंधित ऐसे दो पंचतंत्र हैं। वे जैन संस्करण हैं। एक बुल्लर और कीलहार्न इनका जैन पंचतंत्र (1100 इ.स.) और दूसरा ' पूर्णभद्र ' का ' पंचाख्यान '। यह 1199 का है। यह भी जैन संस्करण ही है। यह कम - अधिक अनुपात में तंत्राख्यायिका पर निर्भर है। लेकिन इसमें 21 नयी कथाएँ हैं। इसमें प्रमुखता से पशुओं की कृतज्ञता तथा मनुष्य की कृतघ्नता दिखायी गयी है।
- 2) **बृहत्कथा का पंचतंत्र** : सोमदेव के कथासरित्सागर में तथा क्षेमेन्द्र की बृहत्कथा मंजरी में जो पंचतंत्र आता है उसे एक स्वतंत्र संस्करण माना जाता है। इसमें कथाओं का पद्यमय संक्षेप है। काफी कुछ विषयांतर भी हुआ है।

3) **दक्षिणात्य पंचतंत्र और “हितोपदेश”**: दक्षिणात्य संस्करण में भी मूल कथाओं का संक्षेप आया है। नेपाली पंचतंत्र और हितोपदेश दोनों दक्षिणात्य संस्करण पर आधारित हैं। नेपाल में पंचतंत्र की कई हस्तलिखितें मिलती हैं। उनमें कुछ गद्य, कुछ पद्य तो कुछ मिश्रित हैं। लेकिन उनका समय निश्चित नहीं है।

‘ हितोपदेश ’ अर्थात् बंगाली पंचतंत्र। उसका कर्ता नारायण नाम का ब्राह्मण था और कथा मुखों से बालकों को व्यवहार और नीति सिखाने के लिए इसकी रचना की गयी। लेकिन उसमें शुकसप्तति, वेतालपंचविंशी शति, कामंदकीय नीतिसार आदि ग्रंथों की भी सहायता ली गयी है। हितोपदेश रचना का समय बारहवीं सदी होना चाहिए। उसका एक सन् १३७३ का हस्तलिखित मिला है। हितोपदेश की 43 कथाओं में से 25 पंचतंत्र की हैं। बंगाल में यह ग्रंथ काफी लोकप्रिय है। समी भारतीय भाषाओं में उसका अनुवाद हुआ है।

मुख्य कथा में अवांतर कथा गुंफना यह भारतीय कथा पद्धति है।

जैनों ने अद्भूत कथाओं का प्रचंड वाङ्मय रचा हुआ है।

बायबल के बाद जागतिक स्तर पर सर्वाधिक प्रसार होनेवाला यही ग्रंथ है।

पंचतंत्र के पांच प्रकरण-

- 1) मित्रभेद : इसमें पिंगलक नामक सिंह और सजीवक नामक बैल इनमें करटक और दमनक दुष्मनी पैदा करते हैं।
- 2) मित्रसंप्राप्ति : इसमें चित्रग्रीव हंस, हिरण्यक चूहा, लघुपतनक कौआ, चित्रांग हिरन और मंथर कछुआ इनकी दोस्ती की कथाएँ हैं।
- 3) कोकोलुकियम : इसमें कौए और उलूक इनकी दुश्मनी है।
- 4) लब्धप्रणाशम् : यह बंदर और सुसर की कथा है।
- 5) अपरिक्षितकारकम् : ब्राह्मण और नेवला इनकी कथा।

ये सब प्रमुख कथाएँ हैं। उनके बीच कई उपकथाएँ गुंफित की गयीं हैं।

पंचतंत्र के विदेशी अनुवाद-

- 1) पूरब में ईसा के 668 में ही चीनी कोश में इसका अनुवाद अंतर्भूत हुआ था।
- 2) खुश्रु अनोशेखान(ईसा का 531-579) राजा के शासन के दरम्यान बुर्झो नामक इराणी हकीम ने इसका अनुवाद किया था। लेकिन मूल ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। उसका नाम था ‘ करटक और दमनक ’। लेकिन इसके माध्यम से ही पश्चिम में पंचतंत्र का प्रसार हुआ। इस कारण इसका महत्व है। उसकी ‘ तन्त्राख्यायिका ’ के साथ काफी समानता होनी चाहिए। करटक और दमनक ये पंचतंत्र में चालाक लोमड़ियाँ हैं।
- 3) इस पर से बुद ने ईसा 570 में सीरियन भाषा में अनुवाद किया। यह उपलब्ध है।

4) इसी रास्ते अब्दुलाह-बीन-अल-मुकोफा द्वारा अरबी अनुवाद ईसा 750 में किया गया जिसका नाम था ' कलीलह व दिम्नह ' । इसका काफी महत्व है क्योंकि पश्चिम में इससे ही कई अनुवाद हुए।

ग्रीक - 1081 में, पुरातन स्पेनिश - 1251 में, हिब्रू - 1100 में, लैटिन - 1270 में, जर्मन - 1483, अंग्रेज़ी - 1570 में, इटालियन - 1583 में, फ्रेंच - 1556 में। आगे स्लाव, डैनिश, आइसलैंडिक, तुर्की, डच, स्पेनी आदि।

सुप्रसिद्ध ' इसापनीति ' तथा ' अरेबियन नाइट्स ' में पंचतंत्र की कथाएँ अंतर्भूत हैं। मध्ययुग में ' बिदपाई की कथाएँ ' नाम से पंचतंत्र प्रसिद्धी पा चुका था।

यह सब लिखित रूप के प्रसार की बातें हैं। मौखिक रूप में तो पंचतंत्र, यूरोप में काफी पहले पहुँच चुका था। आज लगभग 50 भाषाओं में इसके 250 संस्करण उपलब्ध हैं।

भाषाएं

वैदिक संस्कृत और लौकिक भाषा

बृहत्कथा के संदर्भ में संस्कृत \ प्राकृत आदि भाषाओं का उल्लेख हुआ है।

यूरोपीय भाषा वैज्ञानिक सर जॉर्ज ग्रियर्सन, भारत की भाषाओं के तीन वर्ग करते हैं।

- 1) **प्राथमिक प्राकृत** : वे इसमें वैदिक भाषा और लौकिक संस्कृत का अंतर्भाव करते हैं। धार्मिक दृष्टिकोण और सामाजिक परिस्थिति इन कारणों से संस्कृत भाषा का वैदिक विभाग और लौकिक प्रकार इनमें भिन्नता पैदा हो गयी थी। सभी वैदिक साहित्य यज्ञप्रधान और धार्मिक बातों से परिपूर्ण है। लेकिन लौकिक संस्कृत साहित्य में अन्य बातें भी आती हैं। लौकिक कालखंड में महाकाव्यों (आर्ष) का कालखंड भी आता है। आर्ष युग में वैदिक निसर्गपूजा का महत्व जाता रहा। नयी-नयी देवताओं का उदय हुआ। वैदिक काल की देवताएं विस्मृत सी हुईं। लौकिक संस्कृत साहित्य में कर्मवाद और पुनर्जन्म इन दो बातों का इतना प्रभाव पैदा हुआ कि लौकिक जीवन के प्रति एक ढंग के निराशा के सुरों का उद्भव होने लगा। वैदिक सुक्तों और गद्य में जो एक ढंग की प्राकृतिक सरलता थी उसका लौकिक साहित्य में लोप हो गया। उसका स्थान अद्भुतता, अतिमानुषता और अतिशयोक्ति ने व्याप्त कर डाला। वैदिक काल में गणतन्त्र व्यवस्था थी। लेकिन रामायण-महाभारत काल में प्रादेशिक राज्यों का उदय हुआ और गणतन्त्र व्यवस्था लगभग लुप्त हो गयी। यह हुआ मनुष्य के सामाजिक जीवन में बदलाव।
- 2) **द्वितीय प्राकृत** : इसमें पाली वाड.मय आएगा। सिंहल, बर्मा, सयाम आदि देशों में संकलित बौद्ध ग्रंथ पाली भाषा में हैं। प्रो. सुनीति कुमार चेटर्जी के अनुसार बुद्ध के सभी उपदेश वचन मागधी भाषा के बाद मध्यप्रदेश की " शौरसेनी " प्राकृत में अनुवादित हुए थे। वह भाषा ईसा पूर्व दूसरी सदी में ' पाली ' भाषा के रूप में पहचान पा गयी।

इसमें इसके अतिरिक्त प्राकृत व्याकरणकारों के व्याकरण में उदाहरण के तौर पर आए परिच्छेद, प्राकृत साहित्य और अपभ्रंश होंगे।

(श्वेताम्बर जैनियों के सूत्रग्रंथ ईसा के सन 454 में काठेवाड के 'वलभी' में लिपिबद्ध किये गये। उसके पहले मौखिक परंपरा थी। दिगंबर जैनियों के मतानुसार सभी मूल ग्रंथ लुप्त हुए हैं।)

3) तृतीय प्राकृत : अर्वाचीन प्रान्त भाषा।

हम जिस प्राकृत पर सोच रहे हैं वह द्वितीय वर्ग में आएगी। अशोक के शिलालेखों के प्राकृत से हमारा उससे परिचय होता है।

ऐसा कहा गया है कि प्राकृत भाषाएँ सात हैं। लेकिन वररुचि के 'प्राकृत प्रकाश' में चार प्राकृत भाषाओं का ही व्याकरण दिया है। 1) महाराष्ट्री 2) पैशाची 3) शौरसेनी 4) मागधी लेकिन बाद के ग्रंथकारों ने प्राकृत भाषाओं की संख्या 27 तक पहुँचायी है।

प्राकृत भाषाएं ये भारत खंड में अलग-अलग प्रान्तों में जो प्राचीन बोलभाषाएं थीं उनपर अधिष्ठित साहित्यिक भाषाएं हैं। इनमें महाराष्ट्री और अर्धमागधी विशेष ज्ञात हैं। फिर भी उनपर अन्य प्राकृतों का कम-ज्यादा असर है।

- 1) **महाराष्ट्री** : प्राकृत वाड.मय के सभी काव्य तथा प्रणय गीत आदि महाराष्ट्री में हैं। इस कारण उसमें अन्य बोलियों के विभक्ति रूप तथा शब्द आये हैं। उसका अर्धमागधी से कुछ साम्य भी है। व्याकरणकार 'महाराष्ट्री' यानी प्राकृत ऐसा मानकर चलते हैं।
- 2) **शौरसेनी** : इसका संस्कृत के साथ निकट संबंध है। लेकिन महाराष्ट्री से काफी वैधर्म्य है।
- 3) **अर्धमागधी** : यही महावीर के उपदेश की भाषा है। डॉ. हॉर्नले इसे 'आर्ष प्राकृत' कहते हैं।
- 4) **पैशाची** : गुणादय की बृहत्कथा इसी प्राकृत में लिखी हुई है। प्रियर्सन के अनुसार पैशाची भाषा वायव्य के पंजाब और अफगानिस्तान में पैदा हुई और विस्तार पायी। पिशाचपूर- पिसाउर-पेशावर, इस व्युत्पत्ति से यह संभव दिखता है।

अपभ्रंश -

अर्थात् प्राकृत का अंतिम रूप। शास्त्र में संस्कृत छोड़कर अन्य सभी भाषाओं को अपभ्रंश कहते हैं। अपभ्रंश यह प्राकृत भाषा भेद हैं। ग्रियर्सन के अनुसार, जब प्राकृत भाषा, व्याकरण नियमों से बद्ध होकर ग्रांथिक रूप में आयी, तब सामान्य लोगों की बोलभाषा अपभ्रंश बनी। उनकी उत्पत्ति ईसा की पांचवी सदी के पहले से हो रही थी और दसवीं सदी तक प्राकृत साहित्यिक भाषाएँ प्रचलित थीं।

अपभ्रंश भाषाओं के 27 भेद मार्कडेय ने अपने 'प्राकृत सर्वस्वात' में बताए हैं। अपभ्रंशों की निर्मिति भारत के अलग-अलग प्रदेशों में हुई।

इन्हीं अपभ्रंश भाषाओं से अर्वाचीन भाषाएँ निकलीं।

संक्षेप में _

एकदम सामान्य लोग, प्राकृत (प्रकृति की-सामान्य जनों की) भाषा अपने दैनंदिन नित्य व्यवहार के लिए उपयोग में लाते थे। यह इससे पता चलता है कि ईसा सदियों के पहले के अधिकतर लेख प्राकृत में हैं। लौकिक साहित्य और वैदिक भाषा इनसे भिन्न जो लोकभाषाएँ थीं वे प्राकृत। यह सामान्य जनों की आम जीवन की बोली थी। अपने धर्म, समाज के सभी स्तरों तक पहुँचे, इसलिए गौतम बुद्ध और महावीर ने अपने तत्वों का प्रचार प्राकृत में किया। लेकिन स्थान भेद के कारण सामान्य जनों के उच्चारण में होनेवाले भेद आदि कई कारणों से प्राकृत भाषाएँ साहित्य निर्मिती का माध्यम बनने में देरी लगी।

प्राकृत भाषाओं का प्रारंभ साक्षात् वैदिक समय तक पीछे ले जा सकते हैं। जब वेद सूक्त तैयार हो रहे थे तब वैदिक आर्यों की दैनन्दिन व्यवहार की भाषा, सूक्तों की भाषा से अलग होनी चाहिए। प्राकृत जैसे शब्दप्रयोग वैदिक सूक्तों में भले ही मिले। ईसा पूर्व 500-400 के दरम्यान एकत्रित किये गये बौद्ध ग्रंथ मागधी भाषा में हैं। महावीर ने अपने धर्म का उपदेश अर्धमागधी भाषा में दिया। यही सबसे प्राचीन प्राकृत भाषाएँ हैं।

अब एक प्रश्न खड़ा हो सकता है कि क्या संस्कृत कभी बोलभाषा थी?

एक पक्ष कहता है कि संस्कृत यह कभी लोकव्यवहार की भाषा थी ही नहीं। प्राचीन काल से बोलभाषाएँ केवल प्राकृत ही थीं।

दूसरा पक्ष कहता है कि कभी संस्कृत भी व्यवहार की भाषा थी। बाद में प्राकृत भाषाओं का जन्म हुआ और संस्कृत का क्षेत्र मर्यादित होता गया। मगर क्यों? अगर संस्कृत व्यवहार की भाषा के रूप में उपलब्ध थी तो प्राकृत भाषाओं का जन्म क्यों हुआ। इस मत के अनुसार, ईसा पूर्व 700 के पहले संस्कृत यह बोलभाषा होना संभव है। प्राकृत भाषाओं का उपयोग जैसा-जैसा बढ़ता गया वैसा-वैसा संस्कृत एक विशिष्ट वर्ग या ब्राह्मण वर्ग की भाषा बनकर रह गयी। संस्कृत ईसा पूर्व 200 तक इस रूप में जारी रहनी चाहिए।

- कुछ लोग प्राकृत भाषाओं का मूल संस्कृत में ढूँढते हैं।
- तो राजशेखर जैसे लेखक अपने बालरामायण में प्राकृत को संस्कृत की जननी कहते हैं।

लिपि

भारत में उपलब्ध हुआ सबसे प्राचीन लेख है ' प्रियावा घटलेख ' जिसका समय लगभग ईसा पूर्व पाँचवीं सदी आंका गया है। यह उत्कीर्ण लेख ब्राह्मी लिपि में है। इस लेख की भाषा सर्वमान्य प्राकृत से अलग है। ऐसा कहा जाता है कि जिस घट पर यह लेख है उस घट में बुद्ध के अवशेष थे।

अशोक के पहले का ' सौहगौरा ' ताम्रपत्र भी ब्राह्मी लिपि में ही उत्कीर्ण है। अशोक के शिलालेख भारत में जगह-जगह मिलते हैं। वे ' ब्राह्मी ' तथा ' खरोष्ठी ' ऐसी दोनों लिपियों में हैं। इनकी भाषा प्राकृत है। ईसा

पूर्व के, प्रायः सभी उत्कीर्ण लेख प्राकृत में हैं। लेकिन ऐसा लगता है, इसके बाद उत्कीर्ण लेखों का लेखन, संस्कृत में होने लगा। (इससे भी प्राकृत भाषाओं की प्राचीनता सिद्ध होती है।)

इस तरह प्राचीन भारत में ईसा के पहले से ' ब्राह्मी ' और ' खरोष्ठी ' ऐसी दो लिपियाँ प्रचार में थीं। खरोष्ठी वायव्य दिशा के प्रदेशों में प्रमुखता से प्रचलित थी। शहाबाजगढी और मनसेरा जो वायव्य प्रदेश में हैं, वहाँ अशोक के शिलालेख खरोष्ठी में हैं। तो अन्य स्थानों पर ब्राह्मी में हैं। डॉ. बुल्हर के अनुसार, खरोष्ठी लिपि, सेमेटिक लिपि के ' अरामिक ' इस विशिष्ट प्रकार से उत्क्रांत हुई है। यह तब हुआ जब वायव्य प्रदेश, पर्शिया के अकॅमिनियम उर्फ हखामनी साम्राज्य का हिस्सा बना। (ईसा पूर्व छठीं सदी) उस समय इस लिपि का वहाँ प्रसार हुआ। लेकिन खरोष्ठी कभी पंडितों की लिपि नहीं थी। यह लिपि दाहिनी ओर से बायी ओर लिखी जाती थी। डॉ. सिल्वा लेवी के मतानुसार इस लिपि का असली नाम ' खरोष्ठी ' न होकर ' खरोस्ट्री ' ऐसा है चूंकि वह मध्य एशिया के ' कशगर ' प्रदेश की लिपि थी।

ब्राह्मी लिपि

संस्कृत की मूल लिपि ब्राह्मी है। इसकी उत्पत्ति के विषय में अनेक मत हैं। सामान्य तौर पर यूरोपीय पंडित इसका उद्भव सेमेटिक लिपि से हुआ ऐसा मानते हैं। 1) उसमें भी वेबर मानते हैं कि ब्राह्मी, फिनिशियन लिपि से निकली। 2) तो डॉ. डीक के अनुसार उसका मूल अस्सिरियन लिपि में है। 3) अरबी लिपि उसकी जननी है-डॉ. टेलर 4) अरामिक, ग्रीक, खरोष्ट्री आदि कई लिपियों से वह उत्क्रांत हुई -हॉल्वी 5) केवल अलेक्झांडर कमिंगहॅम, यह एक ही पाश्चात्य संशोधक मानते हैं कि इस लिपि का उद्भव एतद्देशीय चित्रलिपि से हुआ। पहले माना जाता था कि भारत में चित्रलिपि का अस्तित्व नहीं था। लेकिन हडप्पा-मोहनजोदारो के उत्खनन में चित्रलिपि की खोज हुई है। 6) प्रो. हिस डेव्हिड्स आदि सब ब्राह्मी लिपि के उद्भव के लिए, सेमेटिक लिपि की ओर ही अंगुलीनिर्देश करते हैं।

डॉ. वेबर ने पहली बार यह खोज की कि प्राचीन भारतीय लिपि के कई वर्ण तथा अस्सिरियन वर्ण लगभग एक हैं। अर्थात् ईसा पूर्व की सातवीं - नौवीं सदी के उत्तर सेमेटिक वर्णों का ब्राह्मी वर्णों के साथ साम्य है। उत्तर सेमेटिक 23 वर्णों में से एक तिहाई ब्राह्मी लिपि के वर्णों से साम्य रखते हैं। अन्य एक तिहाई का आंशिक साम्य है। बचे एक तिहाई में कोई साम्य नहीं है। इस खोज का आधार लेकर 7) डॉ. बुल्हर ने गहराई में जाकर परिश्रमपूर्वक आगे खोज की। ईसा पूर्व आठवीं - सातवीं सदी में भारत के अस्सिरियन व्यापारियों के साथ संबंध स्थापित हुए थे। उस दरम्यान अस्सिरियन लेखन कला भारत में आयी। उसमें भारतियों ने अपनी सुविधा अनुसार बदल किए। यही लेखनकला उत्क्रान्त होते-होते एक हजार सालों बाद ब्राह्मी लिपि के तौर पर स्थापित हुई। शुरु में यह लिपि भी दायी ओर से बाईं ओर लिखी जाती थी। लेकिन जब यहाँ के ब्राह्मणों को बायें से दाईं ओर लिखना सुविधाजनक लगा तो उन्होंने इसे पवित्र घोषित किया।

प्रकरण ३

लोककथाएँ

अबतक उल्लेखित कथाओं का अंतर्भाव 'लोककथाओं' में ही किया जाता है। यहाँ कुछ विशिष्ट कथाओं का परिचय दिया गया है। लेकिन लोककथाओं का संसार बहुत विस्तृत है। इस संसार की विशेषताओं से परिचित होना भी कम मनोरंजक नहीं है। यही हम करने जा रहे हैं।

लोककथा के विषय में 'सारिका' मासिक के संपादकीय में कहा गया है कि—

“लोककथाओं का जन्म कब, कहाँ, और कैसे हुआ, इसका आदि प्रणेता कौन था? यह बता पाना मुश्किल है। लोककथाओं की परंपरा तो ढूँढी जा सकती है लेकिन उनका कोई निश्चित इतिहास निर्धारित नहीं किया जा सकता। यह सबसे प्राचीन तथा घुमन्तू विधा है। लेकिन इसके यात्रापथ को निश्चित कर पाना भी कठिन है। यह वेदों की तरह ही शुरू में श्रुति विद्या रही है। इसे लोकजीवन की स्मृति भी कह सकते हैं। प्राचीन समय में (लिपि के उद्भव के पूर्व) किसी भी ज्ञान को अक्षुण्ण रखने के लिए, सुने और कहे गये अनुभव के रूप में स्मृति में संजोये रखना आवश्यक होता था। ज्ञान को सहज स्मृतिग्राह्य बनाने के लिए दृष्टान्तों की परंपरा अनजाने ही शुरू हुई होगी।”

लोककथाओं के विषय में 'हमारी लोककथाएँ - कथा साहित्य की जन्मदाता' शीर्षक अंतर्गत विनय विश्वास कहते हैं—

“रचनाकार को बिसराकर, खुद अमर हो जानेवाली कथाओं को लोककथाएँ कहा जा सकता है। इतिहास, जिन्दगी के जिन हिस्सों को नजरअंदाज करके आगे बढ़ जाता है, उनकी उपयोगिता को न केवल रेखांकित करनेवाली अपितु सुरक्षित रखनेवाली भी यही विधा है। यह, वह साहित्य है जो जनता के लिए ही नहीं, जनता का और जनता द्वारा लिखा गया साहित्य भी है।”

- आदि मानव के लिए, जीवनयापन प्रित्यर्थ सामुहिक श्रम तथा सुरक्षा की दृष्टि से, समुह में रहना आवश्यक हो गया तो वक्त काटने के लिए, अपने अनुभवों में काल्पनिक मसाले मिलाकर दूसरों के साथ संप्रेषण करने, बातकही का सिलसिला शुरू हुआ होगा। इसी बातकही ने आगे लोककथाओं का रूप ले लिया होगा।

सामुहिक रहने के दरम्यान जैसे-जैसे जानकारी एकत्रित होती गयी या अन्य शब्दों में ज्ञान संकलन बढ़ता गया, इस ज्ञान के सभी हिस्सों को पूरी तरह ग्रहण करना समाज के बड़े हिस्से के बुते की बात नहीं रही। जनसाधारण के लिए इस ज्ञान का काफी हिस्सा गुठ बनता गया। फिर उनके लिए दृष्टान्त बनते गये। ये ही महत्व पाते गये। इसके लिए यह उदाहरण दिया जाता है— नचिकेता-यम-यमी संवाद में जिस गुठ आत्मतत्त्व का विवेचन हुआ है वह तत्त्व जनसाधारण के लिए उतना ग्रहण नहीं हो सका लेकिन नचिकेता की कहानी एक मार्मिक आख्यान बन गयी। ऐसे कई आख्यान श्रुति परंपरा से जनसाधारण तक पहुँचे। इन्हीं आख्यानों ने आगे लोककथाओं का रूप ले लिया। ये आख्यायिकाएँ सहज, ग्राह्य और अति प्रभावी होती हैं।

प्राचीन काल में, ज्ञान, आदर्श और मानवीय मूल्य तथा मानवीय संवेदनाओं से जुड़े संदेशों का संवाहन जितने अच्छे ढंग से लोककथाएँ करती रहीं, कोई अन्य विधा नहीं कर सकी।

- लोककथाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि रचयिता वास्तव में प्रायः अज्ञात ही रहता है। उदा. हीर-रांझा। इसी कारण ऐसी कथाओं को समाज की सम्पत्ति माना जाता है। इसमें व्यक्तिविशेष भी गौण हो जाता है।
- इतिहास के दरम्यान, मूल कथा में कितने परिवर्तन हुए यह बात भी समय की धूँध में खोयी रहती है।
- जहाँ तक हो सके, लोककथा को नृत्य, गायन, संगीत का साथ रहता है। ताकि उसे मनोरंजक रूप में सामान्य जनता के सामने प्रस्तुत किया जा सके। ये प्राचीन समय से ही, मौखिक रूप में ही गाकर आदि, की जाती रही है। लेकिन उसमें गहन अलंकार शैली, छंद, लालित्य का उपयोग नहीं किया जाता क्योंकि सामान्य जन में इन बातों को ग्रहण करने की क्षमता नहीं होती। लेकिन रस, लय और मधुरता जरूर होती है।
- जहाँ तक हो सके, गहन उपदेश से भी वह दूर ही रहती है। अन्यथा यह डर रहता है कि कहीं वह उबाऊ न हो जाएँ।
- उसमें स्थानीयता का पुट जरूर रहता है। अर्थात् आंचल विशेष के आचार, व्यवहार, रीति-रिवाज, रहन-सहन, विश्वास आदि।

जहाँतक लोककथाओं के दुनिया में फैलने की बात है, उसके पीछे निम्न कारण रहे हैं—

- जीवनयापन के साधन और आवासीय सुरक्षा इनके लिए शुरू से ही हजारों सालों तक, आदमी, कबीले और जनजातियाँ दुनिया में घूमती रहीं। इसी घुमन्तू वृत्ति ने, लोककथाओं के प्रचार-प्रसार में हाथ बंटाया।
- इनके प्रसार में साधु-सन्यासी, नटों जैसी घुमक्कड़ जातियाँ, यात्री, व्यापारी, बनजारे, तीर्थयात्री, धर्म प्रचारक इनका बड़ा योगदान है। ये वर्ग अपने साथ, अपनी संस्कृति के साथ-साथ अपनी लोककथाएँ भी एक जगह से दूसरी जगह लेते गये। लोककथाओं का यह आयात-निर्यात, भिन्न-भिन्न संस्कृतियों को समृद्ध करता रहा। एक और कारण है साम्राज्य का विस्तार और सैन्य अभियान। आक्रमणकारी, आक्रान्त देशों से गुलाम, दास-दासियाँ अपने साथ लेते गये। इन दास-दासियों के साथ उनकी संस्कृति और लोककथाएँ भी विजेता देशों में पहुँचती रहीं।

बौद्ध, इस्लाम, ख्रिश्चन जैसे धर्म दुनिया के बड़े भूभाग पर फैलते रहे। इस कारण भी लोककथाओं का बड़े पैमाने पर विनिमय होता रहा।

- इस अंतरण के दरम्यान लोककथाओं ने किस तरह अपना रूप बदला यह भी ढूँढ निकाला गया है। उत्तर प्रदेश की बिरबल की हाजिरजवाबी की कहानियाँ, बंगाल में गोपाल भांड, मणिपुर में बिजांडो, तमिलनाडु में तेनालीराम की कहानियाँ बन गयीं। वही इटली में गीफा की तो टर्की में अक की।
- लोककथाएँ किसी भी देश के लिए उसकी सांस्कृतिक धरोहर तो हैं ही। लेकिन उनका समाजशास्त्रीय महत्व भी है। प्राचीन, आदिम समाज की मान्यताएँ, अंधविश्वास, परंपराएँ, रीति-रिवाज, मनोवैज्ञानिक

स्थिति, बिखरा-बिखरा सा इतिहास, आदिम अनुभव जैसा ज्ञान भंडार भी उसमें समाया हुआ है। राज्य व्यवस्थाओं, समाज व्यवस्थाओं का लेखा-जोखा भी उसमें मिल जाता है।

- अपने ' लोककथाओं में अंतर्निहित राजनीति ' इस लेख में श्री रमेश उपाध्याय कहते हैं," रावण राज्य के विरुद्ध राम राज्य की कल्पना करना ही, एक ढंग का विद्रोह ही है।

ऊपर से देखने से ऐसा लगता है कि ऐसी लोककथाओं में कहीं कोई राजनीति नहीं है। लेकिन जरा इनसे प्रतिपादित या प्रतिष्ठित होनेवाले मूल्यों पर विचार करें। एक मूल्य उभरता है, सौंदर्य की रक्षा का। जिसमें सत्य, न्याय, विवेक और मानवियता की रक्षा का प्रयास शामिल है। दूसरा मूल्य उभरता है, सर्वथा अजेय प्रतीत होनेवाली मानव विरोधी शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष करके उसपर विजय प्राप्त करने का। कहने की जरूरत नहीं कि ये दोनों मूल्य मानवीय सृजन और उत्पादन करनेवाले जनगण के मूल्य हैं। जो इन्हीं लोककथाओं में अंतर्निहित समूची शासक वर्गीय राजनीति पर भारी पड़ते हैं। सामन्तवादी शासकवर्ग का सामाजिक औचित्य पूर्णतः समाप्त होने पर भी इन लोककथाओं को हमारे लिए प्रासंगिक बनाते हैं। और उन्हें उनकी विशिष्ट कलात्मक सुंदरता और सामाजिक मूल्यवत्ता प्रदान करते हैं।

लोककथाएं सामंती युग की रचनाएँ हैं, और सामन्ती युग में जनमुक्ति की परिकल्पना प्रायः उस युग की सीमाओं में ही आबद्ध होगी। फिर भी इनके द्वारा प्रतिपादित होनेवाले मूल्य आम तौर पर जनपक्षीय होते हैं। “

एक टिप्पणी के अनुसार-

- एक तरफ राज्य विस्तार ने नीतिपरक कथाओं को प्रश्रय दिया। उसी तरह धर्म विस्तार ने, आख्यायिकाओं के दृष्टान्त के सहारे अपने सूत्रों को व्याख्यायित किया। इससे भी बहुत से देशों में लगभग एक जैसी लोककथाओं का प्रचलन हुआ।
- अधिकांश लोककथाओं में चूंकि शाश्वत सत्य और संपूर्ण मानव जाति के मंगल कल्याण की भावना के संदेश थे, इसलिये वे सबके लिए उपयोगी और सबको अपनी लगने लगीं।

भारत के अधिकतर लोककथाओं की शुरुआत ' एक था राजा ' से होती है। धार्मिक संकल्पनाओं को साथ मिलाकर, समाज के शक्तिशाली वर्ग ने सत्ता पर कब्जा कर लिया था। वही समाज की बागडोर हांकता था। यह सोच बहुत गहराई तक पहुँचा दी गयी थी कि राजा यह इस धरती पर, ईश्वर का ही रूप है। मनुष्य के बौद्धिक विकास के उस स्तर पर, ईश्वर को मानना एक मजबूरी थी। अतः यह स्वाभाविक था कि लोककथाओं का भी सबसे अधिक हिस्सा राजा ही हथियाये। छोटी-छोटी रियासतों में बंटा यह देश था। उसकी नियति राजाओं की नियतियों और उनकी सनकी मिजाज पर निर्भर थी। और राजाओं का मुख्य उद्यम था पड़ोसी रियासतों के साथ युद्ध करना। उद्देश्य होता था क्षेत्र विस्तार और लूट। इसके सिवाय अधिकतर लोककथाओं में पाएंगे कि युद्ध का कारण होता था पड़ोसी राजकुमारियों के सौंदर्य पर ललचाना। सामान्य जनता को युद्ध में झोंक दिया जाता था। तानाशाही की चरम सीमा थी।

तमाम धार्मिक मान्यताओं का पालन करना अपना कर्तव्य माननेवाली जनता यही कल्पना कर सकती थी कि एक अच्छा राजा हो। इस कारण विक्रमादित्य का न्याय और किसी राजा की करुणा पूर्ण गाथाएँ भी लोककथाओं में विकसित हुईं। इन गाथाओं ने तत्कालीन जनता के संघर्ष, उसकी मजबूरियों को पकड़ा और राजा की कहानियों ने समाज की विसंगतियों को। लोककथाओं ने इन स्थितियों को भिन्न-भिन्न प्रतीकों के माध्यम से बारिकी के साथ व्यक्त किया।

ये कथाएँ जीवन के साथ-साथ और स्थानीय परिस्थितियों के साथ-साथ विकसित होती रहीं। इस कारण एक ही लोककथा एक स्थान पर जो भाव व्यक्त करती है, वहीं किसी अन्य स्थान पर कुछ परिवर्तित या प्रत्यक्ष एकदम विपरीत भाव भी व्यक्त करती मिलती है।

वास्तव में मनुष्य के जीवन की दिशा, ज्ञान वृद्धि के साथ-साथ, आध्यात्मिकता से भौतिकता की ओर, आदर्श से वास्तविकता की ओर चमत्कारिकता से स्वाभाविकता की ओर ही रही है। इसीके समानांतर ही लोककथाओं का सफ़र भी रहा है। यही कारण है कि लोककथाओं की यात्रा मनुष्य जाति का इतिहास भी व्यक्त करती है। जिन समाजों ने उपरोक्त दिशा को नहीं पकड़ा, वे समाज इस या उस रूप में पिछड़ गये।

हम बचपन में नाना-नानी, दादा-दादी से, कभी न कभी यह कहानी जरूर सुनते थे कि एक अत्याचारी राक्षस था (यह अत्याचारी राजा भी हो सकता है) उस राक्षस की जान एक तोते में थी। वह तोता सात समुंदर पार एक पिंजरे में बंद था। लोककथाओं में बार-बार उल्लेख होनेवाला यह पिंजरे में बंद तोता और राक्षस की जान का उसके साथ जुड़ा हुआ होना। राजकुमार का सात समुंदर पार उस तोते तक पहुंचना....और अन्त में राजकुमार द्वारा तोते के माध्यम से अत्याचारी राक्षस का खात्मा।

ये कहानियाँ सारी दुनिया में प्रचलित हैं।.....संघर्ष किए बिना और कष्ट झेले बिना अत्याचार और अन्याय का खात्मा असंभव हैं और समाज में शुरू से यह हो भी रहा है।.....अत्याचारी तो आज भी सामने आते ही रहते हैं।.....तोता सत्ता का प्रतीक है ।.....और अंततः विजय लोकशक्ति की ही होती है।

- मनुष्य ने पशु-पक्षियों के साथ अपने रिश्ते कायम किए। उनके बीच ही अपना जीवन बिताया है। उनकी कहानी उसकी अपनी कहानी के साथ जुड़ी है। तो लोककथाओं में उनका अंतर्भाव तो होना ही था।
- इसके साथ ही यह भी ध्यान में लेना होगा कि हमारा लोकसाहित्य अंधविश्वासों और सही-गलत रूढ़ियों से भरा हुआ है। हमारे यहाँ पहले लोकसाहित्य को ' ग्रामसाहित्य ' कहा जाता था।
- भारतीय समाज का जो एक घिनौना पक्ष है - जाति प्रथा, उसका भी दर्शन यहाँ की लोककथाओं में होता है। जैसे-कनौजी की कहानी में ठाकुर को वीर तथा चतुर, बनिया को धनी, लोभी और डरपोक, नाई को चतुर लेकिन स्वार्थी, सुनार को विश्वासघातकी के रूप में चित्रित किया गया है।
- कुछ-कुछ लोककथाओं में दलित, श्रमिक, पीड़ितों की दर्दभरी जिन्दगी की झाकियाँ भी देखने को मिलती हैं।

प्रकरण ४

मिथकीय कथाएँ

मिथक

‘ मिथ ’, यूनानी शब्द ‘ माइथोस ’ से व्युत्पन्न हुआ है। शुरु में ‘ माइथोस ’ शब्द किसी भी प्रकार की कथा के लिए प्रयुक्त किया जाता था। लोककथाओं और परिकथाओं के लिए भी यही शब्द उपयोग में लाया जाता था। लेकिन बाद में इसे एक विशिष्ट अर्थ प्रदान हो गया। आज जिस अर्थ में इसे हम लेते हैं, उसकी शुरुआत प्लेटो से हुई। ऐसा मानने कोई हरकत नहीं। देवी-देवताओं से तथा सृष्टि उत्पत्ति से जुड़ी कथाएँ ‘ मायथोलॉजी ’ या ‘ धर्मगाथा ’ के अंतर्गत आती हैं।

आज माइथोस या मिथक का अर्थ हो गया है ‘ अतर्क्य आख्यान ’।

स्पेन्सर के अनुसार मिथक में किसी देवी-देवता या पराप्राकृतिक शक्ति का विवरण रहता है। इसमें आदिम मन परिलक्षित रहता है। इसमें धार्मिकता को सर्वाधिक महत्व रहता है।

- इतिहास के उपलब्ध ज्ञान के आधार पर कह सकते हैं कि ग्रीक और रोम में मिथकों का सृजन करनेवालों के पास ब्रह्माण्ड और उसकी दृश्य-अदृश्य शक्तियों से संबद्ध कोई व्यवस्थित दर्शन नहीं था और न ही उनकी नैतिक चेतना इतनी विकसित थी। (ए हंडबुक टु माइथोलॉजी)

प्राचीन यूरोप में कोई देवता नहीं थे। एक देवी थी, जिसे अनादि, अपरिवर्तनशील, और सर्वव्यापी माना जाता था। और पितृत्व की अवधारणा का धर्म प्रणाली में समावेश नहीं था। वह प्रेमी चुनती थी केवल सुख के लिए, न कि अपने बच्चों को पिता देने के लिए। पुरुष मातृदेवी से भय खाते थे, उसकी आराधना करते थे।.....उनके लिए उसका मातृत्व एक गहनतम रहस्य था।.....वह गुहा या घर में अग्नि या अग्निकुंड की रक्षा करती थी।.....इसी कारण यूनानी जब सामूहिक रूप से बलि देते थे तो पहली भेंट सदा अग्निकुंड की रक्षिका को दी जाती थी।.....सामूहिक पर्वों पर किये जानेवाले प्रहसन-अनुष्ठानों के प्राप्त वर्णनों को मिथक के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। बहुधा इन्हीं को चित्रों के रूप में, मंदिरों की दीवारों, फुलदानों, कटोरों, आइनों, बक्सों, कवचों और यवनिकाओं पर उतारा गया। रॉबर्ट ग्रेव्स)

बाद के यूनानी देवता शक्ति में भले ही श्रेष्ठतर हैं, लेकिन रूप, गुण में मूलतः मानव की ही प्रतिकृति हैं। मिश्र की तरह, यूनानी देवी शक्तियां पशु आकृति की न होकर, विशुद्ध रूप से मनुष्य रूप में गढ़ी गयीं। ये सुंदर और गौरवर्ण हैं। इनके कद लम्बे और अंग सांचे में ढले हैं। वे केवल आकृति में ही मानव के अनुरूप नहीं, उन्हें सुख-दुख, हर्ष-विशाद, काम-क्रोध आदि संवेगों की अनुभूति भी मानव के समान ही होती है। उनकी दुर्बलताएं इन्हें, मानव के साथ एक ही धरातल पर ला खड़ा करती हैं। जैसे- ज्यूस में काम प्रवृत्ति उद्दाम है। एफ्राडायरी को रूप का अभिमान है। वह किसी अन्य स्त्री के रूप की प्रशंसा नहीं सह सकती। देवी-देवताओं में भी आपस में द्वेष भावना है। हेमीज, देवता अवश्य है लेकिन उसे चोरी की आदत है।

कुछ ग्रीक मिथकों की विशेषताएं हैं दैवी, लेकिन पूरी तरह मानवीय।

- यूनानियों का प्राकृतिक शक्तियों में विश्वास था लेकिन—
- जादू-टोने में अधिकतर नहीं। केवल दो ही स्त्री पात्र मिलते हैं जिन्हें जादू का ज्ञान था।
- यूनानियों की श्रद्धा, उनका परमार्थ इहलोक तक ही सीमित था।
- उनमें पुनर्जन्म में विश्वास का अभाव दिखता है।
- हस्तरेखा और नक्षत्रज्ञान, भविष्यकथन का अभाव (दो ही पात्रों, टियरेसियस एवं कर्जेड्रा को ही दैवी कृपा से भविष्यज्ञान का वरदान था। (ग्रीस पुराण कथा कोष)
- यूनानी मिथकशास्त्र में ' अवतार ' की कोई अवधारणा नहीं है।
- अथेन्स में सुव्यवस्था बहाल करने के कारण ' थीसियस ' को अथेन्स में लोकतंत्र बहाल करनेवाले के रूप में याद किया जाता है।
- यूनानी मिथकशास्त्र में देवता जीवधारी हैं।
- यूनानी मिथकशास्त्र के स्रोत, होमर के प्राचीन ग्रंथ इलियड और ओडिसी तथा हेसियाड का थियोगौनी है। होमर की इलियड करीब अठ्ठाइस सौ वर्ष पहले लिखी गयी थी। ओडिसी यूनानी महाकाव्यों में सबसे पुरानी रचनाओं में से एक है। ग्रंथ में पायी गयी खगोलीय घटना के आधार पर ऐसा लगता है होमर को प्रेरित करनेवाली घटनाएँ ईसा के 1200 वर्ष पूर्व घटित होनी चाहिए। ओडिसी यूनानी भाषा में लिखी गयी है। यूनानी लिपि का विकास ईसा पूर्व 1000 में फ्यूनिशियन लिपि से हुआ।
- ट्रोजन युद्ध, कुछ विद्वानों के अनुसार ऐतिहासिक है तो कुछ के अनुसार मिथकीय। ' ट्रोजन घोड़े ' से संबंधित तीन कृतियाँ हैं। होमर की ओडिसी, यूरिपाइडस का नाटक ' ट्रोजन वूमन ' और विरजिल का ' एनिड '। घोड़े के अंदर छिपकर बैठे सैनिकों की संख्या हरेक में अलग-अलग है, बीस से पचास के बीच में। ऐसा कहा जाता है कि यह युद्ध दस साल चला। वैसे मिथकशास्त्र, इतिहास पूर्व समय का है। ट्रोजन युद्ध और महाकाव्य युग (महाभारत काल), कांस्य युग है।
- रोमन मिथकशास्त्र में ' डाइक (यूनानी) ' को ' जस्टीशिया ' कहा गया है। उसका चित्रण, आखों पर पट्टी, एक हाथ में तराजू, दूसरे हाथ में तलवार के साथ किया जाता है। वह न्याय का प्रतीक बन गयी। तराजू को राशिचक्र के चिन्ह ' तुला ' से भी जोड़ा गया है।
- यूनानी मिथकशास्त्र (कथाकार) अव्यवस्था से व्यवस्था की ओर, यूनानी दार्शनिक विश्वास से तर्क की ओर, ईसाई धर्म अनेक ईश्वर से एक ईश्वर की ओर और आधुनिक समाजशास्त्र, सामन्तवाद से न्यायोचित समान विकास की ओर बढ़ते हैं।

ईश्वर का मिथक--

- विज्ञान के आने के पहले, दुनिया में ईश्वर ही सर्व शक्तिशाली था। अज्ञान के कारण वैसा मानना मजबूरी थी। (कुछ मनिषियों का मानना है कि अगर हम ईश्वरीय व्यवस्था की कल्पना खत्म कर दे तो हमें ही काफी असुविधाओं का सामना करना पड़ेगा)
- फिर भी आदमी अपनी तकनीकों में उचित सुधार करके रेगिस्तान को भी उपजाऊ बना सकता है।....बर्ट्रेड रसेल।

मिथक की कुछ और व्याख्याएं-

- मिथक यानी सरल शब्दों में कल्पित कथा।
- व्यक्ति विशेष या घटना विशेष, जब अपने चरित्र को छोड़कर एक सार्वभौम, सार्वकालिक और कालजयी घटना के रूप में स्थापित हो जाते हैं, तो सारी दुनिया उसे मिथक मान लेती है।
- मिथक कथाओं का उपयोग किसी भी साहित्यिक विधा में किया जा सकता है। लेकिन वे प्रायः प्राचीन काल की देन ही मानी जाती हैं, जिनपर प्राचीन काल का मनुष्य तो विश्वास करता ही था, आज का मनुष्य भी अपने को उनसे अलग नहीं पाता है। मिथक शायद जनमानस के विश्वास की प्रतीति ही अधिक होते हैं। वही उनका जनक होता है और उनका पुरस्कर्ता.....
- मिथक की परिभाषा, विज्ञान के अभ्युदय के पूर्व के एक ऐसे कल्पनाशील प्रयास के रूप में की जा सकती है, जो किसी घटित अथवा संभावित घटना की व्याख्या के लिए पुराख्यान सृष्टा के कौतूहल को उद्दीप्त करता है। ऐसी घटनाओं से मन में पैदा हुए विकल संभ्रम से पीछे निकलकर संतोष की स्थिति में पहुँचने का प्रयास ही इनके पीछे है। (ऑक्सफ़र्ड क्लासिकल डिक्शनरी)
- (मिथहास) मिथक : प्राचीन काल में, जब इतिहास लेखन शुरू नहीं हुआ था, मनुष्य मिथकों और गाथाओं के माध्यम से अपने अतीत की कथा-स्मृति को यथा संभव सुरक्षित रखता था, लेकिन उस समय यथार्थ और कल्पना इतने घुस-मिल जाते थे कि एकदूसरे को अलग कर पाना संभव नहीं था। (लाल बहादुर वर्मा)
- रूसी चिंतक ' वरदिफ ' इतिहास ' को ही मिथक की संज्ञा देते हैं। लेकिन इससे उपरोक्त घालमेल बनी रहेगी और आज तो पुराण प्रेमियों द्वारा मिथकों को ही इतिहास मानने पर जोर दिया जा रहा है।
- कलिंगवूड के अनुसार मध्यपूर्व की प्राचीन सभ्यताओं में एक प्रकार के धार्मिक इतिहास के बीज मिलते हैं। लेकिन यह ध्यान में रखना होगा कि वह धर्म का इतिहास है। शुद्ध इतिहास नहीं। उसमें बहुतायत मिथकों की ही है।

- इतिहास की शुरुआत यूनान के हिरोडोटस से मानी जाती है। हिरोडोटस और यूसीदीदस ने मनुष्यों के कार्यों और संबंधित घटनाओं को देश और काल, दोनों के अनुसार व्यवस्थित करना शुरू किया। फिर भी एकाएक मिथके और इतिहास का एकदूसरे से अलग होना संभव नहीं था।
- कुछ लोग मानते हैं कि आज की दुनिया इतनी करीब आ गयी है और उसमें इतनी अनगिनत घटनाएँ हो रही हैं, समस्याएँ खड़ी हो रही हैं कि उनको छोड़कर, आज का कथाकार अगर कथावस्तु के लिए पुराणों की शरण में जाये तो क्या यह उसका वैचारिक पलायन नहीं है? ऐसे लोगों को पौराणिक कथाएँ व्यर्थ की बातें प्रतीत होती हैं। लेकिन भूतकाल का इतिहास, भले ही मिथहास के रूप में क्यों न हो, उस समय के जीवन की तुलना, आज के मानव जीवन के साथ करके कुछ तो हासिल किया ही जा सकता है।
- मिथक मूलतः अनुभूत तथ्यों पर उद्दीप्त कल्पना का परिणाम है। इनमें आसपास का वातावरण, प्राकृतिक घटनाओं और उनके प्रति मानव की प्रतिक्रिया है।
- 'सागा' उन रचनाओं को कहा जाता है, जिनके नायक मनुष्य हों। ये भूले-बिसरे ऐतिहासिक या अर्ध-ऐतिहासिक व्यक्तित्व भी हो सकते हैं। इसमें उनके शौर्य और साहसी कारनामों की गाथा होती है। इनमें तात्कालिक राजनैतिक घटनाओं और ऐतिहासिक व्यक्तित्वों का भी समावेश रहता है।
- मार्येन : यह मुख्य रूप से मनोरंजनात्मक कथा होती है। अंग्रेज़ी में हम इन्हें 'फेअरी टेल्स' के नाम से सुनते हैं।

अर्थात् ये तीनों प्रकार एक दूसरे के साथ इतने घूलमिल गये हैं कि उन्हें शुद्ध रूप में एकदूसरे से अलग करना मुश्किल है।

- मिथक के साथ एक और शब्द आता है 'लिजेंड' लेकिन इसका विषय प्रकृति शक्ति नहीं तो मनुष्य होता है।

अंग्रेज़ी शब्द 'मिथ' को हिंदी में 'मिथक' कहा जाता है। इसे ही दंतकथा, पुरावृत्त, धर्मगाथा, पुराख्यान आदि भी कहा गया है। लेकिन अब 'मिथक' शब्द सर्वमान्य हो गया है।

- मिथक में तर्क की कोई संगति नहीं होती।
- मिथक आदिम मनुष्य की भाषा है, जिसके माध्यम से वह जीवन और प्रकृति की घटनाओं और रहस्यों के प्रति अपनी प्रतिक्रियाओं को, अलौकिक गाथाओं के रूप में अभिव्यक्ति देता था। यह आदिम यथार्थ के प्रति सामुहिक अचेतन मन का सहजस्फूर्त बिंबात्मक सृजन है.....डॉ. बच्चन सिंह
- मिथकों का अध्ययन मनोविज्ञान, नृतत्वशास्त्र, प्रतिकों के आधार पर किया गया है...डॉ. नगेन्द्र

समाजशास्त्रीय दृष्टि-

मलिनोव्स्की के अनुसार मिथक न तो प्रकृति के प्रति चमत्कारिक प्रतिक्रिया है और न विगत का आलेख। उसका प्रयोजन सामाजिक का संरक्षण और संचालन है। उसके अध्ययन को 'प्रकार्यवादी अध्ययन' कहा जाता है जो मूलतः मानवतावादी है।

फ्रांसीसी समाजशास्त्री डर्कहीम के मतानुसार भी मिथक का संबंध प्रकृति से नहीं, समाज से है।

नृतत्वशास्त्रीय दृष्टि-

इसमें मानव के मूल विचार, प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया जाता है।

नृतत्वशास्त्रवेत्ता लेबी स्ट्रोस, " यह विशुद्ध मानसिक रूपात्मक क्रिया है। न तो सामाजिकता, न ऐतिहासिकता से उसका कुछ संबंध है और न मानवीयता से। वे आदिम संस्कृतियों की संरचना के तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से इसपर विचार करते हैं।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण---

फ्राइड और युंग दोनों की दृष्टि में यह अवचेतन मन की प्रतिकात्मक अभिव्यक्ति है।

फ्राइड : मिथक भी आदिम मनुष्य की दमित यौन भावनाओं का प्रतीकमूलक व्यक्तिकरण है।

युंग : यह मानस के तीन स्तरों को मानता है—वैयक्तिक चेतन, वैयक्तिक अवचेतन, सामुहिक अवचेतन। सामुहिक को ' प्रजातीय अवचेतन ' भी नाम दिया गया है। वैयक्तिक अवचेतन सतह पर रहता है ' सरफेस स्ट्रक्चर '। सामुहिक अवचेतन अत्यंत गंभीर और व्यापक होता है। इसे ' डीप स्ट्रक्चर ' कहा गया है। इसमें देश-कालातीत संस्कार समाहित रहता है। इसे वह ' आदिम बिंब ' भी कहता है। वह कहीं न कहीं, आज भी हमारे मन में दुबका हुआ है और कल भी बना रहेगा। प्रजातीय अवचेतन का आदिम बिंब ' मिथक ' है।

इन तीनों आधारों पर पुराणों का अध्ययन किया जा रहा है।

- धर्मगाथा की सर्जना या तो सृष्टि के साथ, मनुष्य के संबंध की व्याख्या के लिए अथवा तत्कालीन सामाजिक संस्थाओं तथा प्रथाओं आदि की व्याख्या के लिए की जा सकती है। (मानविकी पारिभाषिक कोश: साहित्य खंड)
- " पुराणकथा, धर्मगाथा यानी ' मिथक ', कोई ऐसी कथा, जो विचारणा एवं आलोचना शक्ति से सर्वथा शून्य, आदिम चेतना की स्वयंस्फूर्त उद्भावना हो और जिसमें प्रकृति की शक्तियों का देहधारी या अर्धदैहिक रूपों में प्रतिधान किया गया हो, जो अति प्राकृतिक एवं अति मानवीय कार्य सपन्न करते हों " डॉ. नगेंद्र

" भारतीय मिथकों की भंगिमाएं.....संजीव

- “ मिथक मूलतः जनसाधारण की अपनी निर्मिती होती है, लेकिन विडंबना यह है कि, व्यवस्था बड़ी चतुराई से उन्हें अपने हितों के अनुरूप ढाल लेती है। जनसामान्य फिर भी लोकगीतों और लोककथाओं में जनपक्षीय मिथकों को जीवन्त और जीवित रखता है। क्यों और कैसे? एक जनपक्षीय विश्लेषण.....
- इतिहास के सत्य से अलग, लोकमानस एक अलग सत्य गढ़ता है जहाँ उसकी दमित वासनाओं और कुचले हुए अहं को खुलकर खेलने की छुट है। इस काल्पनिक संसार का नायक, सर्वशक्तिमान है, वहाँ हर कर्म का कर्मफल है, मृत्यु के खिलाफ अमरत्व है, जीवन के समापन के विरुद्ध पुनर्जन्म है, वांछित फल देनेवाले देवी-देवता हैं, टोने-टोटके हैं तथा मंत्रों के साधन हैं, जो असंभव को भी संभव कर दिखाते हैं। वहाँ के पशु-पक्षियों से लेकर पेड़-पल्लव और नक्षत्र तक प्राणवंत और आत्मीय हैं। वहाँ स्वर्ग है, नर्क है, उदयगिरी है, कामधेनु है और कल्पवृक्ष है।

चूँकि वर्ग विशेष अपने स्वार्थ और अहं की पूर्ति के लिए अपने अनुरूप ही मिथक बुनता है। अतः अन्य वर्गों को उसमें हस्तक्षेप करना पड़ा और उन्हें अपने-अपने ढंग से तोड़ा-मरोड़ा जाता रहा।

भारतीय मनिषा में पुराण, रामायण, महाभारत के मिथकों का बड़ा संसार बार-बार संस्कारित होता रहा.....पर मोरध्वज, शीवि, हरिश्चन्द्र, दधीचि, राजा नृग और भगिरथ जैसे लोकधर्मी मिथक भी हैं। इन मिथकों का विस्तार हमारे प्राक्काल के गणित और विज्ञान तक है, जैसे लीलावती के विधवा होने की कथा।

इस दृष्टि से सबसे जादा विस्मित करते हैं समय और शक्ति के मिथक। उदा. ब्रह्मा के दिन-रात, कल्प, कल्पांतर, प्रलय आदि की अवधारणाएं और लोमश ऋषि जो ब्रह्मा का एक वर्ष पूरा होने पर अपना एक लोम उखाड़ देते फिर भी इस परम दीर्घायु ऋषि ने जगत को क्षणभंगुर माना और अपनी स्थायी कुटी नहीं बनायी।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में-

- हमारे यहाँ हास्य के मिथक लगभग नदारद रहे हैं। क्रोध के दुर्वासा, सत्य के हरिश्चन्द्र, वचन के रघु, प्रेम के काम-रति, व्यभिचार के इंद्र, जयंत, परिश्रम के भगिरथ, पंगु ज्ञान के बर्बरीक, पराक्रम के हनुमान, और शौर्य के तो अनगिनत मिथक हैं।
- विभिन्न धर्ममत ही नहीं, क्रमशः कबिलाई, अनार्य, द्रविड़, मंगोल, यूनानी, कुषाण, हूण, आभीर, तुर्की, अफगानी, मुगल, अंग्रेज़ आदि के संघात और संमिश्रण ने नये-नये मिथक पैदा हुए।
- लेकिन अधिकतर इन मिथकों के नायक राजा, देवी-देवता या ऋषि-मुनि ही रहें।
- बर्बर सामन्तवाद, और कुटिल पुरोहितवाद के हितों में अधिसंख्य मिथक गढ़े और प्रचारित किए गये।
- अक्सर वर्ग-वर्ण और एकदूसरे को हेठी दिखाने के क्रम में अपने-अपने नायक स्थापित किये गये। शुद्र, ब्रह्मा के पैर से निकलें यह बताने में ही व्यास से तुलसीदास तक सब अपने को धन्य मानते रहें।

- फल यह हुआ कि नारी और अन्त्यजों का मनोबल रौंदा जाता रहा। उदा. सीता और दौपट्टी की विसंगतियाँ। हनुमान जैसे वीर भी राम के गुलाम ही रहे। गार्गी के अधिक प्रश्न करने पर शिरोच्छेद की धमकी, एकलव्य का अंगुठा कटवा लेना तथा शंबुक का शिरच्छेद। स्पष्ट है कि सामन्तवाद का पूरा अस्तित्व, उसका आमोद-प्रमोद निम्न वर्ग के शोषण (और उनके साथ की जानेवाली नृशंसता) पर ही आधारित था। सामन्तवाद के मूर्तिमंत रूप है इंद्र और उससे भी चिकने रूप में विष्णु। इंद्र को उसकी सत्ता छिनी जाने का भय सताते रहता है। वह तपस्वियों की तपस्या भंग करने के, परस्त्रीगमन में हमेशा लिप्त रहता है।
- सामन्तवाद के पिष्टपोषक मिथकों में रामकथा भी अन्यतम है।
- सामान्यजन प्रतिवाद नहीं कर पाते। फिर भी विरोध के स्वर और निम्न वर्ग-वर्ण की पीड़ा और सामन्तवाद पर प्रहार किये जाने के भी नायाब मिथक जगह-जगह मिलते हैं।
- मिथकों का उपयोग करके सामाजिक रचना का सृजन करना दोधारी तलवार पर चलने जैसा जोखिमभरा काम है। पर अनेक भारतीय कथाकारों ने यह जोखिम उठाकर मिथकों पर आधारित सफल साहित्यिक रचनाओं का सृजन किया है। “

सारिका संपादकीय.....

सबसे बड़ी चीज हमारे ध्यान में थी, इन मिथकों में या इनके माध्यम से आधुनिक संदर्भों की तलाश। आधुनिक संदर्भों और अर्थों के लिए कुछ मिथकीय चरित्र बहुत ही महत्वपूर्ण, सार्थक और शक्तिशाली भूमिका निभाते रहे हैं। इन मिथकों में सार्वभौम और सार्वकालिक अर्थों व संदर्भों की तलाश की जाती रही है और की जाती रहेगी क्योंकि यह व्यापक अर्थों का संवहन करते रहे हैं। मिथकों के साथ अथवा मिथकों के चरित्रों के साथ जो और जैसी फंतासी जुड़ गयी है, वह उनके अर्थों को थोड़ा गुढ़ और दुरूह तो बनाती है लेकिन जब वे अर्थ खुलने लगते हैं तो सहस्र दल कमल की तरह खुलते चले जाते हैं। सही अर्थों में इन मिथकों से जुड़ी फंतासी उन्हें अर्थों के धरातल पर व्यापक गहराई देती है।

- जल, अग्नि, पृथ्वी, वायु और आकाश के सहारे मिथकीय पुरुष ने जिस अमरत्व की तलाश का सिलसिला शुरू किया था उस अमरत्व की लालसा आज भी मनुष्य के मन से दूर नहीं हुई है। इनके सहारे जीवन की प्रक्रिया को समझने का सिलसिला आज भी ज्यों का त्यों है। आदि पुरुष ऐसा मानते रहे हैं कि जीवन को समझने की इसी प्रक्रिया का कोई पड़ाव अमरत्व हो सकता है। इन्हीं सारी बातों को आधार मानकर मिथकों और मिथकीय चरित्रों का निर्माण हुआ। आज जरूरत इस बात की है कि हम धर्म से हटकर मात्र जीवन के दृष्टिकोण से इन मिथकों की व्याख्या करें। इसी दिशा में बढ़ती चली गयी हैं इन अंकों की ये मिथक कथाएँ।”
- “ आर्यों के आक्रमण के पहले या आर्य संस्कृति के फैलने से पहले हमारे यहाँ जो श्रमण संस्कृति थी, वह गणसंघ व्यवस्था के अंतर्गत थी और अधिसंख्य गणों के आदिनाथ अथवा आदिदेव शिव थे। गणों

के स्वामी को, प्रजा, शिव का पुत्र मानती थी। यह मान्यता ठीक उसी तरह थी जैसे आर्य राजाओं को ईश्वर का विशेष अंश माना जाता था। गण का स्वामी या गणपति पूरे गणराज्य का सबसे शक्तिशाली व्यक्ति होता था और लोग यह मानते थे कि गणपति की शक्ति ही सारे कार्यों को निर्विघ्न पूर्ण कराती है।”

- पाश्चात्य जगत् में मेसोपोटामिया के महाकाव्य ‘ इम्युना अलीश ‘ में मारुदक दानवों की रानी तिआमत को पराजित करता है। यही से मातृसत्ता का अन्त और पितृसत्तात्मक समाज रचना का आरंभ माना जाता है।

यूनानी और हिंदू मिथकों की तुलना

हिंदू मिथकों में स्वयंवर के रिवाज का काफी उल्लेख है। अर्थात् लड़की द्वारा वर के चुनाव का रिवाज (जो अधिकार बाद में उससे छिन लिया गया)। ग्रीक मिथक में भी हेलन द्वारा वर के चुनाव का उल्लेख है। रामायण, महाभारत की तरह ही ओडिसी भी एक कुलीन स्त्री के लिए योग्य पति चुनने के तरीकों के रूप में धनुर्विद्या प्रदर्शन की बात कहती है। ऐसा प्रतीत होता है यह एक साझा इण्डो-यूरोपियन, जनजातीय प्रथा थी।

हिंदू मिथकों की ग्रामदेवता की तरह ही ग्रीक मिथक में भी ‘ पैलेडियम ‘ ग्रामदेवता है।

यूनानी मिथकशास्त्र में ‘ टार्टरस ‘ एक अंधकारयुक्त शून्य है। जो अस्तित्व के पहले से था। इसका पहले क्रोनस और बाद में जियुस, उन सब के लिए यातनागृह के तौर पर उपयोग करते हैं, जो उनकी आज्ञा का पालन नहीं करते। कालांतर में यह संकल्पना ईसाई मिथकशास्त्र में ‘ नर्क ‘ और इस्लामी मिथकशास्त्र ‘ में जहन्नूम ‘ बन गयी। ऐसी धारणा हिंदू मिथकों में नहीं है।

लेकिन ‘ कुछ नहीं ‘ (Nothingness) या ‘ शून्य ‘ बुद्ध दर्शन का आधार है तो ‘ अनन्त ‘ हिंदू विचारधारा का मूल तत्व। इन्हींसे झिरो और इन्फिनिटी की अवधारणाएं पैदा हुईं जो अरब संस्कृति के माध्यम से दसवीं सदी में यूरोप पहुंचीं। इन्हीं से ‘ सांख्यिकी ‘ शास्त्र का उदय हुआ।

ऐसा माना जाता है कि नये अनुभव प्राप्त करने और सोच के दायरे को विस्तृत करने के लिए अपना घर, अपना सुविधा क्षेत्र छोड़ने के लिए यूनानी हमेशा तत्पर रहते थे। जबकि करीब 1500 वर्ष पहले, सागर यात्रा हिंदूओं ने अपने लिए निषिद्ध कर ली।

- महिषासुर, हिंदू पुराण में उल्लेखित, भैंसे के सिरवाला राक्षस था, तो यूनानी मिथक में सांड के सिरवाला ‘ माइनाटौर ‘ है। लेकिन महिषासुर की कथा सातवीं सदी की है तो माइनाटौर की कहानी भूमध्यसागर में करीब हजार साल पहले ज्ञात थी।
- यूनानी मिथकशास्त्र में प्रोमिथियस, मनुष्य के उत्थान के लिए, सत्ता की अवज्ञा करता है और इसके लिए कष्ट उठाता है। जैसे अग्नि चुराना। वेदों में एक चोर प्रामथ की चर्चा है। वैदिक मिथ में ‘

मातिश्विन ' द्वारा अग्नि चोरी का वर्णन है। शायद इन कथाओं का मूल एक सा ही इण्डो-यूरोपीयन हो।

दोनों में अंतर

- यूनानी नाटक दुःखान्त होते हैं। संस्कृत नाटक त्रासद नहीं होते।
- नेमिसिस और फ्युरीस जैसे प्रतिशोध लेनेवाले देवता हिंदू मिथकों में नहीं मिलते।
- यह बात हिंदू मिथकों से विपरीत है। वहां किसी को शाप देने के लिए अपने समस्त अर्जित कर्मों को व्यय करना पड़ता है।
- भाग्य की धारणा यूनानी और हिंदू दोनों मिथकशास्त्रों में पायी जाती है। लेकिन यूनानी कहानियों में मनुष्य का भाग्य देवता तय करते हैं, हिंदू कहानियों में यह हमारे अपने कर्मों का प्रतिफल है।
- यूनानी मिथकशास्त्र की तरह हिंदू मिथकशास्त्र में भी अनेक जीव हैं जिनके कुछ अंग पशुओं जैसे तो कुछ आदमियों जैसे हैं। पर हिंदू मिथकशास्त्र में ऐसे नरपशुओं की परिकल्पना में सिर पशुओं जैसा तो धड़ मनुष्यों जैसा है। यूनानी मिथकशास्त्र में स्थिति इससे उलट है।
- हिंदू मिथकशास्त्र में सूर्य और चंद्र दोनों पुरुष हैं लेकिन यूनानी मिथकशास्त्र में सूर्य पुरुष तो चंद्र स्त्री।
- हिंदू धर्म में प्रकृति की नारी रूप में पूजा ईसा के 700 वर्षों बाद देवी पुराण लिखने के उपरान्त और तंत्रमंत्र के आविर्भाव के बाद शुरू हुई। लेकिन स्त्री को वैदिक काल से ही सम्मान की दृष्टि से देखा गया है, भय से नहीं। इससे उलट यूनानी मिथकों में प्रकृति को अव्यवस्था माना गया है।
- हिंदू राजाओं की कई रानियाँ और कई रखैल होती थीं। लेकिन यूनानी राजाओं की एक ही रानी और कई रखैल होती थीं। एक यूनानी मिथक के अनुसार पैरिस, हेलन को रानी बनाने के लिए अपनी पहली पत्नी ओएनन का त्याग करता है। लेकिन फिर भी ओएनन पैरिस की मृत्यु के बाद उसकी चिता पर अपने आप को जला लेती है। यह बताता है कि हिंदुओं की महिमामंडिता सति प्रथा की तरह ही इसका मूल इंडो-यूरोपीयन जनजातियों में होना चाहिए।

फिर भी कौटुंबिक व्यभिचार यूनानी महाकाव्यों और नाटकों का आम कथानक है।

रानी के अपने सौतेले पुत्र के प्रेम में पड़ने की कहानियाँ यूनानी तथा भारतीय लोकसाहित्य में भी मिलती हैं। सौतेली माँ के सौतेले पुत्र के प्रति आकर्षण मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में ' फेद्रा कॉम्प्लेक्स ' कहलाता है।

आम तौर पर बलात्कार हिंदू मिथकशास्त्र की विषयवस्तु नहीं है। वह खलनायकों से सम्बद्ध है, देवताओं से नहीं। (क्या इसके लिए इंद्र अपवाद माना जा सकता है?) रामायण में रावण, रम्भा का बलात्कार

करता है. जो उसे श्राप देती हैं कि अगर वह दोबारा किसी स्त्री पर बलप्रयोग करेगा तो उसका सिर हजार टुकड़ों में बंट जाएगा।

हिंदू मिथकशास्त्र में अपहरण द्वारा पत्नी प्राप्त करने को राक्षस विवाह तो बलात्कार द्वारा पत्नी पाने को पिशाच विवाह कहा जाता है।

हिंदू मिथकशास्त्र में ब्रह्मश्चर्य पुरुषों से संबंधित है. न कि स्त्रियों से। स्त्रियों से शुचिता अपेक्षित है।

हिंदू मिथकों में भोर के लिए, एक देवता अरुण भी है और देवी उषा भी। कलाकृतियों में भोर का देवता, सूर्यदेव के रथवाहक के रूप में दिखाया गया है। उसका शरीर कमर तक तो पूरा दिखाया गया है, कमर के नीचे नहीं। जिससे वह अनिश्चित लिंग वाला देवता बन गया है।

यूनानी और बायबल संबंधित मिथकशास्त्र, दोनों ही मनुष्य की पीड़ा के लिए स्त्री को उत्तरदायी मानते हैं। पेनडोरा और ईव्ह दोनों के ही निर्णय विद्वंस का कारण बने। हिंदू मिथकशास्त्र स्त्रियों को मनुष्यता के लिए दोषी तो नहीं मानना पर स्त्री को प्रलोभन स्वरूप मानना है, जो ब्रह्मचारी साधुओं को पथभ्रष्ट कर सकता है।

- पहली शताब्दी ईसा में लैटिन लेखक ' हायजिनस ' ने अपने समय के सभी मिथकों के विवरणों का ' फेबुली ' नाम से संग्रह किया था।
- सन 1890 में स्कॉटिश पुरातत्ववेत्ता सर जेम्स जॉर्ज फ्रेजर ने एक पुस्तक प्रकाशित की थी 'द गोल्डन बाऊ : ए स्टडी इन कम्पॅरिटिव्ह रिलिजन '। यह मिथकशास्त्र का विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन है।

(ऑलिम्पस : देवदत्त पटनायक)

प्रकरण ५

विज्ञान कथाएँ

- जब विज्ञान कथाओं की बात होती है तो सबसे पहले प्रश्न उभरता है कि इसमें विज्ञान महत्वपूर्ण है या कथा? अर्थात् इसमें कथा ही प्रधान रहेगी। लेकिन गौण क्यों न हो, विज्ञान भी इसके कलेवर का एक हिस्सा तो रहेगा ही।
- इससे अपेक्षा तो रहेगी ही कि वाचक को इसमें कथा वाचन का आनंद भी मिले और विज्ञान की जानकारी भी।
- एक महान विज्ञान कथाकार है ' आईझैक आसिमोव '। उनके अनुसार, विज्ञानकथा- मानव समाज और व्यक्ति विशेष पर विज्ञान और प्रद्योगिकी के प्रत्याशित प्रभावों के प्रति बुद्धिजीवियों और रचनाकारों के मन में उभरनेवाली साहित्यिक प्रतिक्रिया है।
- रोजमर्रा की जिन्दगी में विज्ञान और तकनीकी के बढ़ते हस्तक्षेप के कारण यह स्वाभाविक है कि ठोस विज्ञान कथा साहित्य की मांग भी बढ़ रही है।
- भविष्यवाणियों या सभावनाओं की कल्पनाशील छानबीन से पाठक को अप्रत्याशित के लिए तैयार करना, विज्ञान कथा साहित्य की एक उपलब्धि रही है।
- नीत नये मौलिक अन्वेषण के सुझाव, समाधान की दिशा सुझाने में भी इनकी भूमिका की उपेक्षा नहीं की जा सकती। पृथ्वी की कक्षा में स्थिर स्थापित संचार उपग्रह की बात सुझानेवाले, कथाकार आर्थर क्लार्क ही थे।
- प्रसिद्ध विज्ञान कथाकार ब्रायन एल्डिस का कथन है कि, भूतप्रेत कथाएँ, भूतप्रेतों के लिए नहीं लिखी जातीं। इसी तरह विज्ञान कथाएँ भी सिर्फ वैज्ञानिकों के लिए नहीं होतीं।
- अब विदेशों में आम आदमी का परिवेश, तकनीकी दुनिया से परिचित हो चुका है। इस कारण विज्ञान कथाओं में सिर्फ मशीन मानव या कई आखोंवाले गुबरैलों के कारनामों के बिंब जरूरी नहीं। इसी कारण पश्चिम में विज्ञान कथाओं के लेखक भी विज्ञान की भाषा, जानकारी के मामले में अधिकचरे नहीं होते।
- हां, भारतीय क्षेत्र में, शुरू में इस विधा को गंभीरतापूर्वक न लेकर फंतासी, अजीबोगरीब कहानियाँ, जादू-टोनें, बच्चों की कहानियाँ जैसा हल्का फुल्का साहित्य ही माना जाता रहा। इसके पीछे इस विशिष्ट विधा की तथा वैज्ञानिक जानकारी की कमी, तथा पौराणिक के प्रति आकर्षण आदि कारण रहे हों।

विज्ञान कथा में दो वर्ग आ सकते हैं-

- 1) **विज्ञान फिक्शन** : फिक्शन लातीनी शब्द है। इसका अर्थ है आविष्कार करना। विज्ञान फिक्शन में विज्ञान के ज्ञान और मान्य नियमों में आप कोई फेरफार नहीं कर सकते। आपको कल्पना करना है, वह विज्ञान के नियमों को उचित सम्मान देकर ही।
- 2) **विज्ञान फंतासी** : फंतासी यह यूनानी शब्द है। इसका अर्थ है कल्पना करना। इसमें फिक्शन जैसा कोई बंधन नहीं है। यहाँ आप विज्ञान कल्पना के नाम पर चाहे जैसी और चाहे जितनी बे सिर-पैर की बातें कर सकते हैं, विज्ञान के नियमों को तोड़-मरोड़ सकते हैं। आप ऐसा यान भी बना सकते हैं जो प्रकाश गति से भी तेज चल सकता है।

लेकिन आप अगर ऐसा ग्रह ढूँढ निकालते हैं, जहाँ के पर्यावरण के कारण वहाँ कार्बन, हिरे के रूप में उपस्थित है तो यह विज्ञान फिक्शन होगा। वर्तमान ज्ञान के आधार पर नयी सुझ या विचार यह फिक्शन वर्ग में ही आयेगा। इस मानक के आधार पर संभावना का चित्र तर्क के आधार पर बनाना होगा। अन्यथा वह मिथकों की दुनिया होगी, विज्ञान फंतासी नहीं।

- विज्ञान कथाओं में भविष्य की दुनिया की झांकियां होंगी। अतः विज्ञान कथाओं का उद्देश्य व्यापक और उत्तरदायित्व पूर्ण है।
- विज्ञान कथाओं का उपयोग आनेवाली पीढ़ी को विज्ञान की बातें आसानी से समझाने के लिए तथा उनमें वैज्ञानिक दृष्टि पैदा करने के लिए किया जा सकता है।
- प्रायः सामान्य कहानी में, कथानक में उपयोग में लायी जा रही किसी टर्म का आशय गहराई में समझाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। लेकिन वैज्ञानिक कहानी में कभी-कभी ऐसी बात आवश्यक होती है। तभी पाठक पूरी तरह रसग्रहण कर सकेगा।
- कथा लेखक ऑसिमोव्ह के अनुसार विज्ञान कथाओं का अधिकांश भाग तो अपरिचित वेश से पाठकों का तादात्म्य स्थापित करने में खर्च हो जाता है। इस कारण विज्ञान कथाओं में पात्रों का चारित्रिक विकास प्रायः नहीं हो पाता।

विज्ञान कथा लेखक और उनकी कहानियाँ

- आधुनिक विज्ञान फंतासी (कल्पना) का जन्म 1705 में डॅनियल डेफी ' द कन्सॉलिडेटर ' के रूप में हुआ था। इसमें अंतरिक्ष यात्रा की कहानी थी।
- विज्ञान कथाओं का जन्म पाश्चिमात्य जगत में हुआ।
- प्रथम विज्ञान कथा 1818 में, मेरी शेली इस लेखिका द्वारा ' फ्रैंकेस्टाईन ' शीर्षक से लिखी गयी थी। उस समय संगणक इस संकल्पना का उदय भी नहीं हुआ था। एक डॉक्टर ने बनाया यंत्रमानव, भस्मासुर जैसा व्यवहार करने लगता है, इसका प्रत्ययकारी चित्रण उसमें है। मनुष्य द्वारा किये गये अनुसंधान पर उसका ही नियंत्रण न रहने की संभावना इसमें व्यक्त की गयी है। आज इक्विसवीं सदी में कृत्रिम बुद्धिमत्ता के विषय में यही डर व्यक्त किया जा रहा है।

लेकिन यह तो हुई तंत्रज्ञान की स्याह बाजु। उसकी उजली बाजु दिखानेवाली कहानियाँ भी कम नहीं हैं। उदा. आयज़क ऑसिमोव्ह का उपन्यास ' फॅन्टास्टीक व्हॉएज '। इसमें एक सूक्ष्म रोबोट मनुष्य के शरीर में छोड़कर, उसके द्वारा शरीर का परीक्षण और चिकित्सा की जाने की कल्पना है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता की संकल्पना का उदय होने के पूर्व की ये कहानियाँ हैं।

- जुल्स बर्न : अनेक अंतरिक्ष वैज्ञानिक, इस बात को स्वीकार करते हैं कि उबाऊ, खर्चीले अनुसंधान कार्यक्रमों के प्रति जनसाधारण में रुचि पैदा करने, उसके प्रति समर्थन जुटाने, स्वयं वैज्ञानिकों की महत्वाकांक्षाएं निरंतर बढ़ाते रहने में, बर्न का महत्वपूर्ण योगदान है। इनकी ' 200,00 लीगज अंडर सी ', जर्नी टु द सेन्टर ऑफ द अर्थ, जैसी कथाएँ तकनॉलाजी के विकास में सटीक भविष्यवाणी के रूप में प्रसिद्ध हैं।
- एडगर एलन पो (1809 - 1849) ने अमेरिका में विज्ञान कथा लेखन की शुरुआत की।
- सर आर्थर कानन डायल : जासूसी उपन्यासों के इस महान अंग्रेज़ी लेखक के उपन्यासों का प्रभाव भी आधुनिक विज्ञान कथाओं पर पड़ा। उन्होंने अपने उपन्यासों में तर्क और वैज्ञानिक विधियों का उपयोग किया।
- एच. जी. वेल्स : द वॉर ऑफ़ द वर्ल्ड्स ' 1898 में प्रकाशित हुआ। उनके, द टाइम मशीन, द इन्वहिजिल मॅन आदि अन्य उपन्यास हैं।
- जॉर्ज ऑरवेल : ' 1984 ' यह उपन्यास 1949 में प्रकाशित हुआ।
- स्टिव्हन्सन : डॉ. जेकिल अँड मि. हाइड।
- एडुल्स हक्सले : परखनली शिशु पर उपन्यास 1932 में।
- डेव्हिड शेरविक : वॉर्न इन हीज ओन इमेज, क्लोनिंग ऑफ़ द मॅन : आण्विक जीव विज्ञान।
- कारसेन : द सायलेन्ट स्प्रिंग।
- डेव्हिड शिल्टजर : द प्रोफ़ेसी : प्रदुषण पर।
- जॉन गौडी : ' द स्नेक '।
- आधुनिक युग के प्रसिद्ध विज्ञान कथाकार : रे ब्रेडवरी, पॉल एंडरसन, यूरी लिन्स्टर, रॉबर्ट हीर्नलन, जॉन ख्रिस्टोफर।
- सोवियत रूस : एक समर्पित नाम है ' अलेक्ज़ांडर वेलियेव '। इनकी ' द एयरशीप स्टार कॅट ', स्काई गेस्ट ' प्रसिद्ध हैं। 1935 में उन्होंने ' द मिरॅक्युलस आय '(आण्विक ऊर्जाघर) उपन्यास लिखा। परमाणु विद्वंस पर रूस में काफी साहित्य लिखा गया है।
- 1928 में हयुगो ग्रन्सबैक ने विश्व की प्रथम विज्ञान कथा पत्रिका शुरू की थी ' एमेज़िंग स्टोरीज "। हयुगो विद्युत इंजीनियर थे।
- 1979 में अंग्रेज़ी में एक विज्ञान कथा संग्रह निकला था। इसमें अंग्रेज़ी तथा अमेरिकी लेखकों की अंतरिक्ष यात्रा, समय यात्रा आदि पर कहानियाँ थीं। लेखक थे जॉन हाइडमन, फ्रेड्रिक पोल, आर्थर क्लार्क, हॅरी हॅरीसन आदि।

- हॉर्लेन एलिसन : कामोत्तेजक साहित्य के क्षेत्र में: कॅट मॅन इस अपनी कहानी में मशीन-मानव संभोग की संभावना वे उजागर करते हैं। लेकिन इस विचित्र रतिक्रिया के वर्णन में, सामाजिक आयाम का ख्याल अवश्य रखा गया है।

भारत में विज्ञान कथा लेखन

- सरस्वती के जुलाई 1900 के अंक में केवलप्रसाद सिंह की विज्ञान कथा 'चंद्रलोक की यात्रा' ।
- सरस्वती के ही 1908 के एक अंक में स्वामी सत्यदेव परिव्राजक की कहानी 'आश्चर्यजनक घंटी' ।
- विशाल भारत में श्रीराम शर्मा और बनारसीदास चतुर्वेदी।
- 1918 में जुल्स बर्न के 'फाइव विक्स इन ए बलून' का अनुवाद 'बलून विहार' शीर्षक से शिवसहाय चतुर्वेदी ने किया था।
- 1930 के आसपास 'सरस्वती' और 'विशाल भारत' में डॉ. नवलबिहारी मिश्र, डॉ. ब्रजमोहन गुप्त, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक' इनकी कहानियाँ प्रसिद्ध हुईं।
- 1947 में अशोक जी का संग्रह 'अस्थिपंजर' जिसमें तीन कथाएँ -वैज्ञानिक की पत्नी, दो रेखाएँ तथा अस्थिपंजर थीं, प्रकाशित हुआ। दूसरा संग्रह था 'अप्सरा का सम्मोहन'। फिर 1949 में विशाल भारत में आया धारावाहिक उपन्यास 'चक्षुदान'। इसका विषय था 'आंख प्रतिरोपण'। उनके अन्य वैज्ञानिक उपन्यास थे 'अन्न का आविष्कार', (1956), अपराधी वैज्ञानिक (1968), हिम सुंदरी (1971)।
- डॉ. नवलबिहारी मिश्र : साठ के दशक में 'विज्ञान लोक और 'विज्ञान जगत' में नियमित रूप से कहानियाँ प्रकाशित हुईं। 'अपराध का पुरस्कार' धारावाहिक रूप में 62-63 में विज्ञान जगत में प्रकाशित हुआ। प्रमुख कथा संग्रह : अधुरा आविष्कार, आकाश का राक्षस, हत्या का उद्देश्य। प्रमुख कहानियाँ : शुक्र ग्रह की यात्रा, पाताल लोक की यात्रा, उडती मोटरों का रहस्य, सितारों के आगे और भी हैं जहाँ, अदृश्य शत्रु आदि।

कुछ जाने-माने और लेखक

- आचार्य चतुरसेन शास्त्री : उपन्यास 'खग्रास' ।
- राहुल सांकृत्यायन : बाइसवीं सदी (1924), विस्मृति के गर्भ में।
- डॉ. संपूर्णानंद : पृथ्वी से सप्तर्षि मंडल (1953)। इसे ही आधुनिक हिंदी विज्ञान उपन्यास विधा का आरंभ माना जाता है।
- डॉ. ओमप्रकाश शर्मा : मंगल यात्रा (1956) एक बड़ा उपन्यास : समीक्षकों ने इसे विदेशी लेखकों की श्रेणी का उपन्यास माना है। उनके ऐसे ही अन्य उपन्यास हैं- जीवन और मानव, पांच यमदूत, समय के स्वामी।

- डॉ. रमेशचंद्र शर्मा : प्रयोगशाला में उगते प्राण (ज्ञानोदय 1967), हरा मानव (1981), हंसोड़ जीव (विज्ञान प्रगति), धान की कहानी : यह अंतर्राष्ट्रीय धान अनुसंधान केंद्र मनिला (फिजी) में किये उनके अनुसंधान पर आधारित है। इसे नॅशनल बुक ट्रस्ट ने प्रकाशित किया है।
- विष्णुदत्त शर्मा : (1950) : प्रतिध्वनि, आकर्षण आदि कहानियाँ।
- रमेश वर्मा : अंतरिक्ष स्पर्श (1963), सिंदूरी ग्रह की यात्रा, अंतरिक्ष के किड़े।
- केलाश शहा : मृत्युंजयी: कथा संग्रह(1976), उपन्यास : दानवों का देश, अंतरिक्ष के पास, मकड़ी का जाल आदि।
- प्रेमानंद चंदोला : कथासंग्रह : चिखती टप-टप खामोश आहट, द सायलेंट स्प्रिंग का हिन्दी अनुवाद (नवनीत में), बंगला से सत्यजीत राय की 13 कहानियों का हिंदी अनुवाद।
- राजेश्वर गंगवार : शिशियों में बंद दिमाग, केसर ग्रह, साढ़े सैंतीस वर्ष, सप्तबाहु आदि कथाएँ।
- समीर गांगुली : बाल वैज्ञानिक उपन्यास (मेला पत्रिका)- जेड जुड़ंग की डायरी।
- समर जीनकर : एक यंत्र की खातीर (धर्मयुग, 1980)
- डॉ. जयंत नारळीकर : अक्स, धूमकेतु ये कहानियाँ, अंतरिक्ष में विस्फोट : धरावाहिक उपन्यास (धर्मयुग)
- अरुण साधु : एक आदमी के उड़ने की कहानी (धर्मयुग, 1988), विस्फोटक : मराठी से हिंदी अनुवाद (सारिका : सितम्बर 85)
- डॉ. बाळ फोंडके : तख्ती टूट गयी, अनोखा खून (पराग), अन्य (विज्ञान प्रगति)।
- दिलीप साळवी : अंग्रेज़ी कहानियों के हिंदी अनुवाद पराग में, रोबोट चालाक होते जा रहे हैं, रोबोट डिंगमार होते हैं।
- देवेन्द्र मेवाड़ी : वैज्ञानिक उपन्यासिका क्रायोबायोलॉजी पर(साप्ता. हिंदुस्तान: 1979)
- अरविन्द मिश्र : गुरुदक्षिणा(अमृत प्रभात 1985), मिस रोबिनो, एक और कौंचवध (धर्मयुग 1989), देहदान (जनसत्ता 1989)
- शैलेन्द्र चव्हाण: ज्ञान का तबादला(वैज्ञानिक जुलाई 86), डाल-डाल पांत-पांत (वैज्ञानिक), पत्नी की मुसीबत, रोबोटों की दुनिया(जिज्ञासा जुलाई-दिसम्बर 1988), प्रदुषण महात्म्यं (वैज्ञानिक जन.-मार्च 1982), वरदान (विज्ञान : नवम्बर 84/85)
- राजेश जैन : अंधा सपना, प्रोग्रॅमिंग (वागर्थ.ऊर्जा.कॉम), मन मोबाईल (ज्ञानोदय), निद्राखोर (हंस), अंधीं रोषनी(धर्मयुग), स्वर्ण पुरुष (हंस), रिमोट कंट्रोल, महामशीन आदि।
- आनंद प्रकाश जैन : चांद का मुन्ना।

- राममूर्ति : हरे जीवों के चंगुल में।
- मोहनलाल वर्मा : कालभैरव का कोप।
- शुकदेव प्रसाद : रोबो मेरा दोस्त।
- मोहन संजीवन : मैं मरना चाहता हूँ (तमिल)
- जितेंद्र भाटिया : प्राौद्यौगिकी को आधार बनाकर स्तरीय वैचारिक वैज्ञानिक लेखन।

जहांतक अति आधुनिक तकनीकों का सवाल है -डिपफेक

अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में मराठी में विज्ञान कथाओं का प्रवाह जोरदार है।

(वैसे १९१३ में श्री. बा. रानडे द्वारा लिखित, ' तारयाचे हास्य ' (तारिका की हंसी) को मराठी की प्रथम विज्ञान कथा माना जाता है)

डिपफेक इस संकल्पना का उपयोग आजकल सायबर गुनाहों के लिये किया जा रहा है। लेकिन जब यह संकल्पना एकदम अपनी बाल्यावस्था में थी तब उसी कल्पना पर उज्ज्वल राणे की ' शिवोऽहम्-शिवोऽहम् ', डॉ. बाळ फोंडके की ' इकडे आड तिकडे विहीर ' सुबोध जावड़ेकर की ' चक्षुर्वै सत्यम् ' आदि कहानियाँ लिखी गयीं। मेघश्री दळवी की ' जाल ', दिवस सातवाँ? ये कहानियाँ भी ' कृत्रिम बुद्धिमत्ता ' पर आधारित हैं।

प्रकरण ६

मराठी विज्ञान कथाएँ

मराठी विज्ञान कथाओं की चर्चा अलग से करने का कारण यह है कि भारत की अन्य भाषाओं की तुलना में मराठी में विज्ञान कथाओं का संग्रह काफी समृद्ध है। यह इसीसे स्पष्ट होता है कि पिछली सदी के अन्त में नॅशनल बुक ट्रस्ट ने 'इट हेपन्ड टुमारो' नाम से भारतीय विज्ञान कथाओं का एक संग्रह प्रकाशित किया था। उन कथाओं में आधी से अधिक कथाएँ मराठी भाषा की थीं। हाँ, आजकल हिन्दी तथा बंगाली भाषाओं में इस दिशा में संख्यात्मक तथा गुणात्मक दोनों दृष्टियों से वृद्धि हुई है।

तीसरे दशक के आरंभ में लक्ष्मण लोंढे महोदय की स्मृति में एक विज्ञानकथा स्पर्धा आयोजित की गयी थी। उसमें नब्बे नवोदित कथा लेखकों ने हिस्सा लिया था। प्रथम पारितोषिक प्राप्त किया था श्री. असीम चाफळकर ने। उनकी कथाओं को अन्यत्र भी सराहा गया है।

मराठी में प्रथम विज्ञान फिक्शन लिखा गया सन् 1900 में, लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि उसका प्रकाशन महाराष्ट्र में नहीं तो केरल के कोचीन से प्रकाशित होनेवाली 'केरळ कोकीळ' इस मराठी नियतकालिक में हुआ था। किताब थी ज्यूल व्हर्न के उपन्यास 'फ्रॉम अर्थ टु मून' का कृष्णाजी आठवले द्वारा किया गया अनुवाद। वैसे श्रीपाद रानडे की 1913 में प्रकाशित 'तारयाचे हास्य' इसे मराठी की पहली विज्ञान कथा माना जाता है।

अगले लगभग पचास वर्षों में वामन मल्हार जोशी, श्रीपाद रानडे आदि लेखकों ने विज्ञान को स्पर्श करनेवाली इनीगिनी कहानियाँ लिखीं। लेकिन उन्हें शुद्ध विज्ञान कहानियों के वर्ग में नहीं रखा जा सकता। अन्य बात यानी वे अधिकतर अनुवादित थीं।

1960 के दरम्यान दि.बा.मोकाशी महोदय ने इस दिशा में सफल यात्रा की। उनके कहानी संग्रह 'बालचंद्र', 'अंतरिक्ष यात्रा' प्रसिद्ध हुए। इस दृष्टि से उन्हें ही मराठी विज्ञानकथाओं का अगुवा माना जाना चाहिए।

1970 से मराठी विज्ञान परिषद् ने, विज्ञान कथा लेखन की प्रतिस्पर्धा लेनी शुरू की। उनमें 1974 में प्रथम पारितोषिक मिला डॉ. जयंत नारळीकर को। लेकिन जयंत जी की, विज्ञान कथाओं के पीछे भूमिका थी विज्ञान प्रसार की। अतः इस विधा को साहित्यिक विधा या कला माने या न माने इसपर समीक्षकों में मतभेद उभरे। 1983 में इस विषय पर मुंबई विद्यापीठ और विज्ञान परिषद् ने संयुक्त रूप से एक चर्चासत्र भी आयोजित किया था।

आजकल मराठी नियतकालिकों में बड़े पैमाने पर विज्ञान कथाओं को स्थान दिया जा रहा है, खास कर दिपावली विशेषांकों में।

मराठी में विज्ञान साहित्य को पुरी तहत समर्पित नियतकालिक हैं, 'कल्पविश्व', 'विज्ञानकथा', 'विज्ञान संप्रेषण' ।

आजकल तो महाविद्यालयीन पाठ्यक्रमों में भी विज्ञानकथाओं का अंतर्भाव किया जाने लगा है।

विज्ञान लेखक डॉ. जयंत नारळीकर के जन्मदिन 19 जुलाई को 'राष्ट्रीय विज्ञान कथा दिन' मनाने का निर्णय मराठी विज्ञान परिषद् ने घोषित किया है।

प्रकरण ७

हिंदी कहानी

आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा लिखित ' हिन्दी साहित्य का इतिहास ' को हिन्दी साहित्य का प्रथम प्रामाणिक इतिहास माना गया है। इसमें ' गद्य साहित्य का प्रसार ' नामक अध्याय है। उसका एक उपशीर्षक है ' छोटी कहानियाँ '। यह एक महत्वपूर्ण दस्तावेज़ है। उसके अनुसार—

कहानियों का चलन, सभ्य-असभ्य सब जातियों में चला आ रहा है। पुराने जमाने से कहानी के दो स्थूल भेद हैं। घटना प्रधान और मार्मिक (और इनका मिश्रण भी)।

बृहत्कथा, वैताल पच्चीसी, सिंहासन बत्तीसी आदि, घटनाक्रम में रमनेवाली कथाओं की पुरानी पोथियाँ हैं।

कादंबरी, माधवानल कामकंदला, सीतवसंत इत्यादि वृत्त-वैचित्र्यपूर्ण होते हुए भी, कथा के मार्मिक स्थलों में रमानेवाले भावप्रधान आख्यान हैं।

दोनों में महत्वपूर्ण भेद यह है कि, प्रथम में इतिवृत्त का प्रवाह मात्र अपेक्षित है, तो दूसरी कोटि की कहानियों में भिन्न-भिन्न स्थितियों का चित्रण या प्रत्यक्षीकरण भी पाया जाता है।

आधुनिक ढंग के उपन्यासों और कहानियों के स्वरूप का विकास इस भेद के आधार पर क्रमशः हुआ है। स्वरूप के विकास में कुछ चीजें नाटकों से ली गईं, जैसे कथोपकथन, घटनाओं का विन्यास, वैचित्र्य, बाह्य और आभ्यन्तर परिस्थिति का चित्रण, तथा उसके अनुरूप भावव्यंजना।

इतिवृत्त का प्रवाह तो उसका मूलरूप था ही। वह तो बना रहेगा ही। पुराने ढंग की कथा-कहानियों में, कथा प्रवाह अखंड गति से, एक ओर चलता था, जिसमें घटनाएँ पूर्वापार जुड़ती सीधी चली जाती थीं।

प्रथम अलगाव

लेकिन बाद में एक नये ढंग के कथानक का उदय हुआ जिसे ' नॉवेल ' नाम दिया गया। वही स्वरूप जब भारत में और वह भी सर्वप्रथम बंग भाषा में आया तो ' उपन्यास ' कहलाया (मराठी में कादंबरी)। इसमें कथा के भीतर की कोई भी परिस्थिति आरंभ में रखकर चल सकते हैं और उनमें घटनाओं की श्रृंखला लगातार सीधी न जाकर इधर-उधर और श्रृंखलाओं से गुंफित होती चलती है और अंत में जाकर सबका समाहार हो जाता है। घटनाओं के विन्यास की यही वक्रता या वैचित्र्य उपन्यासों और आधुनिक कहानियों की प्रत्यक्ष विशेषता है, जो उन्हें पुराने ढंग की कथा-कहानियों से अलग करती है।

इस आधार पर ' इंशा ' की ' रानी केतकी ', ' एक बड़ी कहानी ', तथा राजा शिवप्रसाद का ' राजा भोज का सपना ' तथा ' वीरसिंह का वृत्तान्त ' लिखी गयीं। लेकिन उन्हें आधुनिक उपन्यास या आधुनिक कहानी की कोटि में नहीं माना जाता।

शुरू में छोटी-छोटी आख्यायिकाएं या कहानियाँ (अंग्रेज़ी पत्रिकाओं की तरह ही) की रचना 'गल्प' के नाम से बंग भाषा में चल पड़ी थीं। ये कहानियाँ जीवन के बड़े मार्मिक और भावव्यंजक खंड चित्रों के रूप में होती थीं।

द्वितीय उत्थान

फिर 'सरस्वती' पत्रिका (प्रथम वर्ष संवत् 1957/ सन् 1900) में छोटी-छोटी कहानियों के दर्शन होने लगे। लेकिन वे अधिकतर बंग भाषा से हिंदी में अनुदित या उनकी छाया के रूप में ही थीं। अनुवादकों में उल्लेखनीय नाम है ' गिरिजाकुमार घोष ' (इंडियन एक्सप्रेस के मॅनेजर)। लेकिन वे हिन्दी कहानियों में अपना नाम ' लाला पार्वतीनंदन ' देते थे। वैसे रविन्द्रनाथ टैगोर की बड़ी बहन स्वर्णकुमारी देवी को भारत की पहली महिला पत्रकार, संपादक और उपन्यासकार माना जाता है।

(भारत की, भारतीय भाषा में प्रकाशित पहली पत्रिका थी ' बंगाल गजट ' (1780 सन) तो पहला समाचार पत्र इसी नाम से प्रकाशित हुआ था, जिसके संपादक थे गंगाधर भट्टाचार्य। वैसे 30-05-1826 को कलकत्ता में प्रकाशित ' उदंत मार्तंड ' पत्रिका को हिंदी का प्रथम समाचार पत्र माना जाता है। इसे पंडित जुगलकिशोर ने प्रकाशित किया था।)

कहानियों का आरंभ कहाँ से मानना चाहिए, यह देखने के लिए, सरस्वती में प्रकाशित कुछ मौलिक कहानियों के नाम वर्ष क्रम से इस प्रकार दिये जाते हैं-

इंदूमति (किशोरीलाल गोस्वामी) सन् 1900 । इसे ही हिन्दी की पहली मौलिक कहानी माना जाता है।

गुलबहार(") सन् 1902 ।

प्लेग की चुड़ैल (मास्टर भगवानदास, मिर्जापुर) सन् 1902 ।

ग्यारह वर्ष का समय (रामचन्द्र शुक्ल) सन् 1903 ।

पंडित और पंडितानी (गिरिजादत्त बाजपेयी) सन् 1903 ।

दुलाईवाली (बंग महिला) सन् 1907 ।

मार्मिकता की दृष्टि से, इनमें क्रमवार ' इंदुमती ', ' ग्यारह वर्ष का समय ' और फिर ' दुलाईवाली ' मानी जाती हैं। फिर ऐसी कहानियाँ कई पत्र-पत्रिकाओं में आने लगीं।

तृतीय उत्थान

सन् 1911 में कल्पना और भावुकता के धनी जयशंकर प्रसाद जी की ' ग्राम ' नाम की कहानी, उनकी मासिक पत्रिका ' इंदू ' में आयी और उसके बाद तो उन्हींकी, आकाशदीप, बिसाती, प्रतिध्वनि, स्वर्ग के खंडहर, चित्रमंदिर आदि कहानियाँ आती रहीं। ये तृतीय उत्थान के अंदर आती हैं।

हास्यरस की कहानियाँ लिखनेवाले जी.पी. श्रीवास्तव की पहली कहानी भी ' इंदू में ' 1901 ' में ही छपी थी।

- इसी दरम्यान विश्वंभरनाथ शर्मा ' कौशिक ' की प्रथम कहानी ' रक्षाबंधन 1913 में सरस्वती में छपी थी।
- ' कानों की कंगना ; सन् 1913 में इंदू में आयी (सूर्यपूर के राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, हिंदी के एक अत्यंत भावुक और भाषा पर अद्भुत अधिकार वाले लेखक)
- पंडित ज्वालादत्त शर्मा : 1914 में, सरस्वती में प्रथम कहानी।
- इसी वर्ष चतुरसेन शास्त्री का लेखन शुरू हुआ।
- संस्कृत और हिंदी के प्रकांड विद्वान श्री. चंद्रधर शर्मा ' गुलेरी ' की अद्वितीय कहानी ' उसने कहा था ' सन् 1915 में सरस्वती में छपी थी। इसमें पक्के यथार्थवाद के बीच, सुरुचि की चरम मर्यादा के भीतर, भावुकता का चरम उत्कर्ष दृष्टीगोचर होता है। घटना की वास्तवता के बीच प्रेम का एक स्वर्गीय स्वरूप झांक रहा है। कहीं प्रेम की निर्लज्जता, वेदना का बिभत्स प्रकटीकरण नहीं है। इसमें पात्रों के स्थान पर घटनाएँ ही बोलती हैं। (गुलेरी जी का उदय 1904 में जयपुर के ' समालोचक ' के माध्यम से हुआ था। गुलेरी जी पर एक शोधग्रंथ (दो खंडों में) उपलब्ध है: श्री.चंद्रधर शर्मा गुलेरी : व्यक्तित्व और कृतित्व : लेखक-डॉ. पियुष गुलेरी।
- और फिर उसके पीछे-पीछे तुरन्त 1916 से प्रेमचंद जी की लेखनी आकार लेने लगती है।

रामचंद्र शुक्ल जी द्वारा किया गया कहानियों का वर्गीकरण

- १) सादे ढंग से केवल कुछ अत्यंत व्यंजक घटनाएँ और थोड़ी बातचीत सामने लाकर क्षिप्र गति से किसी एक गंभीर संवेदना या मनोभाव में व्यक्त होनेवाली। उदा.- गुलेरी जी की ' उसने कहा था ' , पंडित भगवतीप्रसाद बाजपेयी की ' निंदिया ' और ' पँसिल स्केच '। ऐसी कहानियों में परिस्थिति की मार्मिकता अपने वर्णन या व्याख्या द्वारा हृदयंगम कराने का प्रयत्न लेखक नहीं करता। उसका अनुभव वह पाठक पर छोड़ देता है।
- २) परिस्थितियों के विशद मार्मिक एवं कभी-कभी रमणीय और अलंकृत वर्णनों और व्याख्याओं के साथ मंद, मधुर गति से चलकर किसी एक मार्मिक परिस्थिति में परिणत होनेवाली। उदा. स्व.चंडीप्रसाद हृदयेश ' उन्मादिनी ' , ' शांति निकेतन ' ऐसी कहानियों में परिस्थिति के अंतर्गत प्रकृति का चित्रण भी प्रायः रहता है।
- ३) उक्त दोनों के बीच की प्रवृत्ति ग्रहण करके चलनेवाली, जिसमें घटनाओं की व्यंजकता और पाठकों की अनुभूति पर पूरा भरोसा न करके लेखक भी कुछ मार्मिक व्याख्या करता चलता है। उदा. प्रेमचंद जी की कहानियाँ, पं.विश्वंभरनाथ शर्मा ' कौशिक ' , पं.ज्वालादत्त शर्मा, श्री. जैनेन्द्रकुमार, पं. विनोदशंकर व्यास, श्री. सुदर्शन, पं.जनार्दन प्रसाद झा ' द्विज ' आदि।

४) घटना और संवाद दोनों में, गूढ़ व्यंजना और रमणीय कल्पना का सुंदर समन्वय। उदा. प्रसाद जी तथा रायकृष्ण दास जी की कहानियाँ।

५) किसी तथ्य का प्रतीक खड़ा करनेवाली, लाक्षणिक कहानी। जैसे पांडेय बेचन शर्मा की ' भुनगा '।

वस्तु समष्टि के स्वरूप से भी कई वर्ग किये जा सकते हैं—

- 1) सामान्यतः जीवन के किसी स्वरूप की मार्मिकता सामने लानेवाली अधिकतर कहानियाँ।
- 2) भिन्न-भिन्न वर्गों के संस्कारों का स्वरूप उपस्थित करनेवाली। उदा. प्रेमचंद जी की ' शतरंज के खिलाड़ी ' और हृषभ भरण जैन जी की ' दान '।
- 3) किसी मधुर या मार्मिक प्रसंग, कल्पना के सहारे किसी ऐतिहासिक काल का खंड-चित्र दिखानेवाली। उदा. रायकृष्णदास जी की ' गहूला ' और जयशंकर प्रसाद जी की ' आकाशदीप '।
- 4) देश की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था से पीड़ित जनसमूह की दुर्दशा सामने लानेवाली। जैसे श्री. भगवती प्रसाद बाजपेयी की ' निंदिया लागीं ', हृदयगति ', तथा श्री. जैनेन्द्रकुमार की ' अपना-अपना भाग्य '।
- 5) राजनैतिक आंदोलन में सम्मिलित नवयुवकों के स्वदेश प्रेम, त्याग, साहस और जीवनोत्सर्ग का चित्र खड़ा करनेवाली। उदा. पांडेय बेचन शर्मा ' उग्र ' की ' उसकी माँ ' नाम की कहानी।
- 6) समाज के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के बीच, धर्म, समाज सुधार, व्यापार, व्यवसाय, सरकारी काम, नयी सभ्यता आदि की ओट में होनेवाले पाखंड पूर्ण पापाचार के चटकिले चित्र सामने लानेवाली कहानियाँ। जैसी उग्र जी की कहानियाँ।
- 7) सभ्यता और संस्कृति की किसी व्यवस्था के विकास का आदिम रूप झलकाने वाली। जैसी रायकृष्णदास जी की ' अंतःपुर का आरंभ ', श्रीमंत संमत की ' चंदेली की कली ', जैनेन्द्रकुमार की ' बाहुबली '।
- 8) अतीत के किसी पौराणिक या ऐतिहासिक कालखंड के बीच अत्यंत मार्मिक और रमणीय प्रसंग का अवस्थान करनेवाली। जैसे बिंदु ब्रह्मचारी और श्रीमंत संमत(पं.विनायक) की कहानियाँ। ये कहानियाँ ' कथामुखी ' नाम की मासिक पत्रिका में सन् 1920-21 में छपी थीं—वनभागिनी, कृतिका, हेरम्या और बाहुमान, कनकप्रभा, श्वेतद्वीप का तोता क्या पढता था आदि।

इनमें से कुछ कहानियों में एशिया के भिन्न-भिन्न भागों में(ईरान, तुर्की, आर्मीनिया, चीज, सुमात्रा आदि) भारतीय संस्कृति और प्रभाव का प्रसार(ग्रेटर इंडिया) दिखानेवाले प्रसंगों की अनुठी उद्भावना पायी जाती है। जैसे ' हेरम्या और बाहुमान '। ऐसी कहानियों में भिन्न-भिन्न देशों की प्राचीन संस्कृति के अध्ययन की त्रुटि अवश्य कहीं-कहीं खटकती है जैसे हेरम्या और बाहुमान में आर्य, पारसिक और सामी, अरब सभ्यता का घपला है। एशिया के भिन्न-भिन्न भागों में, भारतीय संस्कृति और प्रभाव की झलक जयशंकर प्रसाद जी के ' आकाशदीप ' में भी है।

9) हास्य-विनोद द्वारा अनुरंजन करनेवाली-उदा. श्री.जी.पी.श्रीवास्तव, अन्नपूर्णानंद और कान्तानाथ पांडेय ' चोंच ' की कहानियाँ। हाँ, इनमें शिष्ट हास-परिहास की मात्रा कम-ज्यादा हो सकती है।

(छोटी कहानी : सारिका : अंक 391 सौजन्य से)

उपन्यास (डॉ. कृष्णलाल हंस)

1882 में प्रकाशित ' परीक्षा गुरु ' हिंदी का प्रथम उपन्यास था। रचनाकार थे लाला श्रीनिवास दास। यहीं से आधुनिक उपन्यासों की रचना आरंभ होती है। लगभग इसी समय श्री.रत्नचंद्र का ' नूतन चरित्र', देवकीनन्दन खत्री का ' चंद्रकान्ता सन्तती ' प्रकाशित हुए। चंद्रकान्ता सन्तती काफी लोकप्रिय हुआ। यह एक आश्चर्यकारक घटनाओं से पूर्ण काल्पनिक उपन्यास था। यह आकर्षक और मनोरंजक शैली में लिखा गया है।

- किशोरीलाल गोस्वामी ने ' उपन्यास ' नामक पत्रिका शुरू की। उसमें 65 सामाजिक उपन्यास प्रकाशित हुए। लेकिन उसमें प्रेम के नाम पर विलासिता का चित्रण ही अधिक था।
- श्री.गोपालराम गहमरी ने ' जासूस ' नामक पत्रिका निकाली। उसमें लगभग 60 जासूसी उपन्यास प्रकाशित हुए। इनमें से अधिकतर अंग्रेज़ी जासूसी उपन्यासों पर आधारित थे।
- भारतेंदू काल के उल्लेखनीय लेखक और उनके उपन्यास—

बालकृष्ण भट्ट : नूतन ब्रह्मचारी, सौ अजान एक सुजान

राधचरण गोस्वामी : विधवा विपत्ति

राधाकृष्ण दास : निःसहाय हिंदू

कार्तिक प्रसाद खत्री : जया

बालकृष्ण गुप्त : कामिनी

- द्विवेदी काल: इस काल में उपन्यास साहित्य का विकास हुआ। कई भाषाओं के उपन्यास अनुवादित हुए। विशेषतः बंगला के बंकिमचन्द्र और शरतचन्द्र के।

बाबू गजाधर सिंह (बंग विजेता, दुर्गेश नंदिनी), राधकृष्ण दास (स्वर्णलता), प्रताप नारायण मिश्र(राज्यश्री, इंद्रा, राधारानी), राधाचरण गोस्वामी(विरजा, मृण्मयी)—ये सभी बंगला के उपन्यास हिंदी में लाये गये।

प्रथम श्रेणी : चतुरसेन शास्त्री (गोली, हृदय की प्यास), विश्वंभरनाथ शर्मा ' कौशिक ' (माँ, भिखारिनी),

जयशंकर प्रसाद (तितली, कंकाल), उपेंद्रनाथ अशक (गिरती दीवारें), पांडेय बेचन शर्मा

(दिल्ली का दलाल, बुधवा की बेटी)

दूसरी श्रेणी : मनोवैज्ञानिक चरित्र चित्रण अधिक रहा।

जैनेन्द्रकुमार (सुनीता, परख, विवर्त, त्यागपत्र, सुखदा), भगवतीचरण वर्मा (तीन वर्ष, चित्रलेखा, टेढ़े-मेढ़े रास्ते, आखिरी दांव), इलाचंद्र जोशी (पर्दे की रानी, सन्यासी, प्रेत और छाया, सुबह के भूले, मुक्तिपथ), वात्स्यायन ' अज्ञेय ' (नदी के द्वीप, शेखर एक जीवनी), उषादेवी मित्रा।

साम्यवादी रचनाकार: राहुल सांकृत्यायन (सिंह सेनापति, व्होल्गा से गंगा), यशपाल (दादा कॉमरेड, देशद्रोही, मनुष्य के रूप)

चौथे प्रकार के उपन्यास : चतुरसेन शास्त्री का ' वैशाली की नगरवधू ', यशपाल की ' दिव्या,; वृंदावनलाल वर्मा की ' गढ़ कुंडाल', विराटा की पद्मिनी, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, भुवन विक्रम, मृगनयनी।

वाल्मिकी त्रिपाठी के जय-विजय, दुरभिसंधि, सत्ता और संघर्ष,; हजारीप्रसाद द्विवेदी का बाणभट्ट की आत्मकथा।

- आजादी के पश्चात प्रकाशित हुए उपन्यासों के उपन्यासकार :

देवेन्द्र सत्यार्थी, यज्ञदत्त शर्मा, धर्मवीर भारती, फणीश्वरनाथ रेणु, अमृतलाल नागर, लक्ष्मीनारायण लाल, अंचल, गुरुदत्त, नागार्जुन, यादवेन्द्रनाथ, अनंत गोपाल शेवडे, भगवतीप्रसाद बाजपेयी, मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, वाल्मिकी त्रिपाठी, गिरीराज किशोर, महेन्द्र भल्ला, शिवदानसिंह, कृष्णा सोबती, अमृता प्रीतम, मन्नु भंडारी।

इस दरम्यान कुछ कहानीकार सामने आये जिन्हें प्रयोगवादी कहा जाता है।

कहानी

भारतेंदु काल

- प्रथम कहानी : किशोरीलाल गोस्वामी द्वारा लिखित, सन् 1900 में प्रकाशित ' इंदुमती ' आधुनिक ढंग की पहली मौलिक कहानी है। दूसरी बंग महिला की ' दुलाईवाली '।
- (डॉ. भटनागर सन् 1911 में प्रकाशित प्रसाद जी की ' ग्राम ' कहानी को आधुनिक ढंग की प्रथम कहानी मानते हैं और प्रसाद जी को आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य का प्रवर्तक मानते हैं।)
- लेकिन इतना मानना पड़ेगा कि हिंदी कहानी क्षेत्र में पहले-पहले जिन कहानियाँ ने प्रवेश किया वे मूलतः बंगला और अंग्रेज़ी से अनुदित थीं। ये कहानियाँ ' सरस्वती ' और ' इंदू ' में छपी थीं।
- इसी काल में गोपालराम गहमरी जी ने अंग्रेज़ी जासूसी कहानियाँ अनुदित कर हिन्दी में लायीं। तो श्री. पार्वतीनंदन और बंग महिला ने बंगला से।

इस तरह यह हिन्दी कथा साहित्य का केवल आरंभ ही था।

- अगले काल को तीन खंडों में विभाजित किया जाता है-

1) **प्रसाद युग** : काव्यमय शैली, नाटकीय कथोपकथन और संस्कृत प्रचुर भाषा, प्रसाद की कहानियों की विशेषता।

नानसेन, छाया, प्रतिध्वनि, आँधी, मधु पुरस्कार, विसाती, इंद्रजाल, आकाशदीप आदि

इंदू पत्रिका में प्रसाद जी के अलावा सर्वश्री चंद्रधर शर्मा ' गुलेरी ', जी.पी.श्रीवास्तव(हास्य रस), विश्वंभरनाथ शर्मा ' कौशिक, ज्वालादत्त शर्मा, पं.सुदर्शन, चण्डीप्रसाद ' हृदयेश ', रायकृष्ण दास, राधारमणा सिंह (कानों में कंगना), प्रेमचंद।

आदर्शवादी कहानीकार : जयशंकर प्रसाद, हृदयेश, रायकृष्ण दास, राधारमण प्रसाद सिंह

यथार्थवादी कहानीकार : प्रेमचंद, सुदर्शन, कौशिक (रक्षाबंधन, ताई), ज्वालादत्त शर्मा, गुलेरी जी (उसने कहा था, सुखमय जीवन)

2) प्रेमचंद (धनपतराय) युग -

इलाचंद्र जोशी (मानव मनोभावों का सूक्ष्म चित्रण), जैनेन्द्रकुमार (मानव हृदय के कथाकार), पांडेय बेचन शर्मा ' उग्र ' (सामाजिक), भगवती प्रसाद बाजपेयी, पं. सुदर्शन, शिवपुजन सहाय, धनीराम प्रेम, चंडीप्रसाद ' हृदयेश ', चतुरसेन शास्त्री।

3) नवयुग -

सर्वश्री यशपाल, अज्ञेय, पहाड़ी, अशक, चंद्रगुप्त विद्यालंकार, अन्नपूर्णानंद, सियारामशरण गुप्त, भगवतीचरण वर्मा, अनंत गोपाल शेवड़े, निराला, अमृतलाल नागर, बेढब बनारसी, जहूर बख्श, श्रीराम शर्मा, शंभुनाथ सिंह। देवीदयाल चतुर्वेदी, रामेश्वर शुक्ल आदि।

इस समय सेक्स समस्या से लेकर लोक-कल्याण और जन-उत्थान की भावनाओं से पूर्ण कहानियाँ लिखी जा रही थीं।

हमारे ये कहानीकार अलग-अलग वादों में विभक्त हैं। समाजवाद, साम्यवाद, प्रगतिवाद, गांधीवाद आदि।

महिला कहानीकार : शिवरानी, उषादेवी मित्रा, महादेवी वर्मा, सुभद्राकुमारी चौहान, कमला चौधरी, हेमवती देवी, तेजरानी पाठक, सत्यवती मलिक, चंद्रकिरण सोनरेक्सा आदि।

मार्क्सवाद का प्रभाव : यशपाल (सबसे अधिक योगदान), रांगेय राघव, राहूल सांकृत्यायन, अमृतलाल नागर, अमृत राय, नरेन्द्र शर्मा, राजेंद्र यादव, विष्णु प्रभाकर, आदि

विचारप्रधान कहानी लेखक : सियारामशरण गुप्त, कन्हैयालाल मिश्र, भगवतीचरण वर्मा।

नयी पीढ़ी : धर्मवीर भारती, मोहन राकेश, हरिशंकर परसाई, मार्कंडेय, राजेन्द्र यादव, मन्नु भंडारी, रमेश बक्शी, राजेन्द्र अवस्थी, देवेंद्र सत्यार्थी, मन्मननाथ गुप्त।

जहाँ तक हिन्दी कहानी के युवावस्था का संबंध है, इन दो महानुभावों के विवेचनों में महत्वपूर्ण पूरा इतिहास आ जाता है।

सारिका

बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में, कहानी विधा को समर्पित थी टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन की पत्रिका 'सारिका'। यह शुरू में मासिक तो बाद में पाक्षिक तौर पर नियमित निकलती थी। इसके प्रकाशन का कालावधि लगभग 1961 से लेकर तो नव दशक के उत्तरार्ध तक रहा है। इसने समय-समय पर भिन्न-भिन्न संदर्भों से जुड़ी कहानियों के विशेषांक भी निकाले थे। इन विशेषांकों की संख्या लगभग सौ हैं। मुझे उपलब्ध हुई जानकारी के अनुसार सारिका का अंतिम प्रकाशित अंक क्रमांक 454 होना चाहिए। वेबसाइट पर काफी खोज करने पर भी इसके केवल 54 अंक वेबसाइट 'हिंदवी' पर उपलब्ध हैं। उनमें भी विशेषांक केवल आठ हैं।

सारिका के विशेषांक--

वास्तव में यह एक जगह उपलब्ध सारा साहित्य अमूल्य धरोहर है। (मेरे पास 70 विशेषांक उपलब्ध हैं, लेकिन इन सबको वेबसाइट पर उपलब्ध कराना मेरे अकेले के क्षमता के बाहर की बात है।) ये अंक टाइम्स के कई खोजियों की कड़ी मेहनत का परिणाम है।

जहाँ तक हिन्दी कहानियों के वर्गीकरण का सवाल है, उन्हें लेखकों की पीढ़ियों के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। सारिका ने पांच पीढ़ियों के पांच और दो संयुक्त पीढ़ी विशेषांक प्रकाशित किए थे। तथा इनमें इन कहानियों पर विशेष भाष्य भी दिये हैं। इन कहानियों की विशेषताओं की इससे अच्छी व्याख्या हो नहीं सकती। यह साहित्य कुछ हद तक टाइम्स प्रकाशन के सौजन्य से उसके इन्हीं प्रयासों पर आधारित है।

सारिका के विशेषांकों से संबंधित कुछ जानकारी इस प्रकार है— प्रकरण के अंत में।

प्रेमचंद

“ जीवन को देश और समाज से जोड़ो, तो सारे दरवाजे खुल जाते हैं।”

“ भारत में ही नहीं, अन्यत्र भी ग्रामीण जीवन पर केन्द्रित उपन्यास, महाकाव्यात्मक उंचाई हासिल कर सके हैं।”

-- बिशन टण्डन

प्रेमचंद जी ने जब लिखना शुरू किया, तब वह उनके लेखन का ही नहीं, भारतीय राजनीतिक चेतना के भी विकास का प्रारंभिक दौर था।

राजनीतिक स्वतंत्रता की पहली स्वाभाविक परिणति थी आर्थिक स्वतंत्रता और दूसरी थी सामाजिक।-सुरेन्द्र धींगड़ा

प्रेमचंद के संबंध में मुख्य बात यह है कि उन्होंने गाँव और किसान को साहित्य में प्रतिष्ठित कर, भारतीय साहित्य को एक नया मोड़ दिया। उनसे पहले किसी साहित्यकार ने गाँव या किसान के अवसाद, उत्पीड़न या व्यथा को साहित्यिक सृजन का आधार नहीं बनाया था। साहित्य को सामंती, महाजनी और मध्यमवर्गीय आस्थाओं की सीमाओं से बाहर निकाल कर उसे भारतीय जनजीवन से जोड़कर प्रेमचंद ने साहित्यिक सृजनात्मकता के एक नये युग का सूत्रपात किया।

प्रेमचंद के ऊर्जास्त्रोत : यह सच है कि स्वतंत्रता संग्राम का सीधा चित्रण प्रेमचंद में नहीं मिलता। लेकिन उन्होंने हमारे पराधिनता के विभिन्न पक्षों से अपने कथा संसार का निर्माण किया। किसान और लगान बंदी आंदोलन, अच्छुतों की सामाजिक समस्याएं, साम्प्रदायिक सद्भावना, समाज में नारी की दयनीय स्थिति, स्वदेशी आंदोलन, नशाबंदी आदि केवल आर्थिक और सामाजिक कार्यक्रम न रहकर स्वतंत्रता संग्राम के अभिन्न अंग बन गये और इन सबका प्रेमचंद में काफी प्रखर चित्रण है। साथ ही साथ चल रहा था विदेशी शासन का कठोर दमनचक्र। उसका प्रभावकारी चित्रण प्रेमचंद ने किया है, सरकारी संस्थाओं, पुलिस-अदालत, शिक्षण संस्थाओं आदि के कार्यकलापों पर प्रेमचंद ने प्रचंड प्रहार किया। जिस समाज का चित्रण प्रेमचंद में मिलता है- वह समाज अपने सामाजिक और राजनीतिक स्वाधीनता के लिए भीषण संघर्ष में जुटा था।

प्रेमचंद के साहित्य की सृजनात्मकता का दूसरा स्त्रोत है मध्यम वर्गीय समाज। प्रेमचंद स्वयं इस वर्ग के सदस्य थे। उन्होंने इस वर्ग के विश्वास और पारंपारिक वैदिक मान्यताओं को, रूढ़िवादी धारणाओं को, अंतर्विरोधों और असंगतियों को अपने साहित्य में कलात्मक और प्रामाणिक ढंग से प्रस्तुत किया। सेवासदन, निर्मला, गबन और कर्मभूमि खासतौर से इसी लिए चर्चित हैं। समकालीन यथार्थ को उन्होंने कलात्मक रूप दिया।

सच तो यह है कि गोदान भारतीय किसान की कहानी है। ग्रामीण जीवन की विवशता और विपन्नता का सूक्ष्म दृष्टि और सहानुभूति से किया गया इतना यथार्थ और मार्मिक चित्रण भारतीय साहित्य में अन्यत्र नहीं मिलता। गोदान तक पहुंचते-पहुंचते प्रेमचंद का समाज दर्शन भी एक लम्बी यात्रा तय कर चुका था। आरंभ में प्रेमचंद जी ने वर्ग समन्वय के स्वप्न देखे थे। 'प्रेमाश्रम' के अंत में भूस्वामी के हृदय परिवर्तन, रामराज्य की स्थापना का स्वप्न था। लेकिन अपने संवेदनशील अंतर्दृष्टि से जिस यथार्थ की निर्ममता को उन्होंने होरी की असहायता और निर्धनता में देखा, उसके बाद उनके पुराने स्वप्नों को विनष्ट होने के अतिरिक्त कोई भविष्य नहीं था।

हां, शिल्प की दृष्टि से उनकी कोई विशेष देन नहीं है। उन्होंने कथा लेखन की प्रचलित प्राविधि को ही अपनाया। जैसे रविंद्रनाथ, बंकिमचंद्र, शरतचन्द्र। प्रेमचंद की विशेषता यह है कि ठोस यथार्थ के प्रामाणिक प्रस्तुतिकरण और संवेदनपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए प्राविधि की विभिन्न संवेदनाओं का उपयोग कर उसे एक नये विषयवस्तु के अनुरूप बना लिया।

प्रेमचंद का रचना संसार पढ़ने पर आन्तराष्ट्रीय स्तर पर नज़र जाती है टॉलस्टॉय की रचनाओं पर। वे भी भूस्वामी वर्ग में पैदा हुए थे। लेकिन वे अपने वर्ग के विश्व दृष्टि के यथार्थ को छोड़कर किसान समाज

के दुःख, दारिद्र्य, उत्पीड़न और आक्रोश को मुखर करने लगे। उनके महानता का स्त्रोत, उनकी विचारधारा या समाज दर्शन में नहीं है। साहित्यिक सृजनात्मकता की प्रतिभा से देखे गये सत्य के समक्ष अपने विचारजन्य दर्शन को उन्होंने ढह जाने दिया।

“प्रेमचंद की रचनाओं में हवाई आदर्शवाद, गांधीवादी मानवीयता, और भावुक सहानुभूति, हिंदी कहानी से बिदा लेते हैं। उसकी जगह स्थापित होते हैं, चीजों और संबंधों को देखने और जांचने का वर्गीय दृष्टिकोण, तर्कसंगत वैज्ञानिक चिंतन, निर्मम तथा बारिक भाषा। बाद की रचनाओं तक आते-आते मनुष्य के प्रति उनके सारोकार सघन और स्पष्ट होते हैं, रवैया यथार्थवादी होता है और चिंतन लगभग मार्क्सवादी। विचारधारा के स्तर पर गांधीवाद से चलकर बोल्शेविक वसूलों पर जा पहुँचने का उनका संघर्ष और निर्णय हिन्दी कहानी का संघर्ष और निर्णय स्थल है। यह खुशी की बात है कि प्रेमचंद अब एक बड़े लेखक का नाम नहीं बल्कि हिन्दी कहानी की स्वरूप और यथार्थवादी दृष्टि और प्रवृत्ति के प्रतीक के तौर पर स्विकृत है।”---धीरेन्द्र अस्थाना

“मार्क्सवाद ने प्रेमचंद को दृष्टि दी थी, उनकी दृष्टि को अंधा नहीं कर दिया था।”

“प्रेमचंद का परिवेश जरूर ग्रामीण था लेकिन उनका महत्व उनके द्वारा ग्रामीण यथार्थ को व्यक्त करने तक सीमित नहीं है। उनका महत्व है उस वर्गीय और वैज्ञानिक दृष्टिकोण में जो अपने सर्वश्रेष्ठ रूप में ‘कफन’ और ‘गोदान’ में आकार लेता है।”

(सारिका अंक 391 से सौजन्य के साथ)

अगली पीढ़ी

प्रेमचंद जी के इस विरासत को लेकर कहानीकारों की अगली पीढ़ी ने कहानी को कहां तक पहुंचाया इसपर एक परिचर्चा आयोजित थी, उसके कुछ अंश—

“प्रेमचंद जी के साथ या तुरन्त बाद आनेवाले लेखकों को पहली कथा पीढ़ी के रूप में मान्यता भी मिली। जैनेन्द्रकुमार, अज्ञेय, अमृतलाल नागर, उपेंद्रनाथ अशक, यशपाल, फणीश्वरनाथ रेणु, भैरवप्रसाद गुप्त, रांगेय राघव, विष्णु प्रभाकर, मार्कंडेय, द्विजेंद्रनाथ मिश्र ‘निर्गुण’, आदि अनेक लेखक इस पहली कथा पीढ़ी के प्रतिनिधि हैं।”-धीरेन्द्र अस्थाना

“प्रेमचंद की परंपरा का उत्तरोत्तर विकास हुआ है। प्रेमचंद के बाद उनके परवर्ती कथाकारों ने उनकी उपलब्धियों का लाभ उठाते हुए उनकी परंपरा को आगे बढ़ाया और आज तक कथा साहित्य की मुख्य धारा प्रेमचंद की यथार्थवादी परंपरा का ही प्रक्षेपण है। जैनेन्द्र, यशपाल, अज्ञेय, अमृतलाल नागर, प.सुदर्शन, कौशिक, रमाप्रसाद घिल्डियाल, पहाड़ी, चतुरसेन शास्त्री, रांगेय राघव, राहुल सांकृत्यायन, भैरवप्रसाद गुप्त, फणीश्वरनाथ रेणु, आदि प्रेमचंद के ही दिखाये रास्ते पर आगे बढ़े।

पर इनमें से कुछ अपनी आंतरिक कमजोरियों और दृष्टि की सीमा के कारण साम्राज्यवाद और भारतीय पुंजीवाद-सामन्तवाद गठजोड़ के आगे घुटने टेककर अपने रचनात्मक अवसान की तरफ मुड़ गये। ये बाकायदा साम्राज्यवाद और पुंजीवाद के प्रवक्ता बन बैठे और उनकी रचनात्मक ऊर्जा समाप्त हो गयी।

इसके विपरीत यशपाल, अमृतलाल नागर, रांगेय राघव, राहुल सांकृत्यायन(हांलाकि इन्होंने कहानियाँ कम, उपन्यास अधिक लिखे), भैरवप्रसाद गुप्त, और रेणु लगातार पैनी नजरवाली, कालजयी रचनाएँ देते रहे। उसका मुख्य कारण था, देश के बहुसंख्यक किसान-मजदूर वर्ग के प्रति इनकी सहानुभूति और पुंजीवाद, साम्राज्यवाद के प्रति इनकी आंतरिक घृणा, जिससे इनकी रचनाओं में प्रखर वर्गदृष्टि, मार्मिकता और प्रेमचंद की विरासत का उत्तरोत्तर विकास दिखता है।”- डॉ. माहेश्वर

“ प्रेमचंद की विरासत तो आज भी जारी है। जब कोई सूर्य साहित्यिकों में उदित होता है तो आनेवाली पीढ़ी या तो उसके अनुकरण में धूमिल होने लगती है या उसके विराट व्यक्तित्व के नीचे दब जाती है। लेकिन हिन्दी कथा साहित्य के साथ ऐसी दुर्घटना घटित नहीं हुई। प्रेमचंद के बाद एक सशक्त कथा पीढ़ी ने जन्म लिया। प्रेमचंद के कथा व्यक्तित्व ने अगली पीढ़ी को प्रेरित किया आतंकित नहीं।

परंतु यह तथ्य है कि प्रेमचंद ने अपने साहित्य के माध्यम से जो कथादृष्टि दी उसकी वैचारिक पृष्ठभूमि न तो आयातित थी और न ही मशीनी अपितु वह नितान्त भारतीय जनमानस की समस्याओं की सहज उपज थी। परंतु प्रेमचंद के बाद आयातित विचारों से आक्रांत कथा साहित्य का भी जन्म हुआ। कुछ कथाकार दार्शनिक की गहरी मुद्रा धारण करके फ्रायड और मार्क्स की कार्बन कॉपियां, साहित्य के लिए तैयार करने में व्यस्त हो गये। लेकिन उनके बाद की कथा पीढ़ी के कुछ सजग चिंतनशील, साहित्यकारों ने उसे धूमिल नहीं होने दिया। उन्होंने प्रेमचंद का अनुकरण नहीं किया अपितु उनकी सोच में मौलिक योगदान देकर उसे आगे बढ़ावा। उन्होंने भारतीय समाज की विसंगतियों को यहाँ के जनमानस की जमीन पर खड़े होकर देखा-परखा न कि फॉर्मूलाबद्ध सोंच की धूँध में।”----प्रेम जनमेजय

“यथार्थवादी कहानी नित नये रूप परिधान में सामने आ रही है। संघर्ष की आंच मद्धीम पडने पर यथार्थवादी धारा यानी प्रेमचंद की विरासत को धक्का लगाना स्वाभाविक था। इसके शिकार जनैंद्र, अज्ञेय तो थे ही-----।” चंचल चौहान।

“ हमारी सदी में हिन्दी कथा साहित्य का विकास एक तरह से द्विमुखी विकास है, जिसमें एक धारा का प्रतिनिधित्व प्रेमचंद करते और दूसरी का जयशंकर प्रसाद। पहली धारा की जान किस्सागोई का, वह तत्व है, जो पारंपरिक भारतीय कथा कला से जुड़ा हुआ है। इन कहानियों में कथानक के घटनाक्रम पर उसके समकालीन चिंतन और इतिहास की स्पष्ट परछाई होती है और उनके कथानक के विकास का क्रम, सहज रैखिक और आदि-मध्य-अन्त से युक्त रहता है।

दूसरी धारा, जिसे मोटे तौर से काव्यमय अन्तर्दृष्टि की धारा कहा जा सकता है, न कि कहानियाँ। इतिहास के साथ-साथ कदमताल करने के बजाय कविता की तरह अमृत शब्दों, बिंबों द्वारा मानव नियति और काल के रहस्यमय भीतरी संबंधों को जांचती है और एक आड़ी-तिरछी गति में लगभग एक ही बिंदु के चारों ओर घूमती दिखाई पड़ती है। उपरी तौर से इन कहानियों को जांचनेवाले अक्सर इनपर आक्षेप लगा

सकते हैं कि इन कहानियों का फलक छोटा है। इनमें सामाजिक चेतना प्रतिबद्धता नहीं है, पर यह सच नहीं है।

प्रेमचंद की सीधी विरासत की जो विचारधारा है, उसकी सीधी रैखिक गति और इतिवृत्तात्मकता के गुण तो स्पष्ट हैं, पर उसके कुछ खतरे भी हैं। पहला खतरा तो इस बात का है कि अपने कमजोर क्षणों में सामाजिक आदर्शवाद से निकली एक तरह की भावुकता या अखबारी खबरों की चुस्त फिकरेबाजी उसके कलेवर पर हावी होने लगती है। गो ऐसे सुधी आलोचकों की कमी नहीं, जो इस भावुकता या खबर प्रधानता को प्रतिबद्धता और संवेदनशीलता का पर्याय मानते हैं, लेकिन इसमें शक नहीं कि पिछले कुछ सालों में इस बात ने अच्छी हिंदी कहानी का बहुत कबाड़ा किया है।

एक दूसरा खतरा यह भी है कि, इस तरह के लेखन में कई बार सरलता की जगह एक तरह का मसिहाई मुद्रावाला सामान्यीकरण आता है। इससे दोहराव और एकरसता की भरमार होने लगती है।”---मृणाल पांडे

दूसरी पीढ़ी

“स्वाधीनता के बाद लोकतंत्र एक नयी सुगंध लेकर आया। अन्य देशवासियों की भांति लेखकों ने भी ‘ अपना देश अपनी सरकार ‘ के सपने संजोए, मान्यताएं बनायीं और अपनी रचनाधर्मिता में नये जीवन को रेखांकित किया। (पर वह सब कुछ नहीं हुआ, जिसकी आशा थी। अतः परिवेश में निराशा सी पनपने लगी। आजादी से जुड़ी आशाओं की मृगतृष्णा सहसा मोहभंग की स्थिति में बदलने लगी।) फिर भी--

आजादी के बाद स्थापित हुई दूसरी जीवन पीढ़ी--

ये वे रचनाकार हैं, जिन्होंने चिंतन, मानसिकता नयी मान्यताओं और नये मूल्यों के आधार पर हिंदी कहानी को नया मोड़ दिया और उसे नये आजाद भारत की कल्पना के साथ जोड़ा था। इन्होंने कहा था कि अब परिस्थितियां बदल गयी हैं। जिन्दगी के अर्थ बदल रहे हैं। नये आदर्शों की परिकल्पना शुरू हो गयी है। इसलिए कहानी को भी बदलना चाहिए।----हिन्दी कहानी को पहली बार एक व्यापक और सार्थक आंदोलन मिला था जिसे नाम मिला ‘ नई कहानी आंदोलन ‘। आज की कहानी जहाँ भी खड़ी है वह अपनी नींव के रूप में उस आंदोलन को नकार नहीं सकती। हिन्दी कहानी का वह एक ऐसा दौर था जिसे ऐतिहासिक शब्दावली में स्वर्णयुग भी कह सकते हैं। इस युग की कहानियों को कहानी जगत भूल नहीं सकता।

इसी दौर की अन्य भारतीय भाषाओं की कहानियाँ भी इसी रंग में रंगी हुई मिलेंगी। इस अर्थ में प्रेमचंद जैसे अग्रज कहानीकारों का महत्व कम हुआ ऐसा नहीं। नींव तो उन्होंने ही रखी है। और इस दौर के कहानीकारों ने भी उनके ऋण को नकारा नहीं। इन लोगों ने प्रेमचंद की विरासत को न केवल सुरक्षित रखा बल्कि समृद्ध भी किया।

मेरा व्यक्तिगत विचार है कि हिंदी कहानी को वही एक ऐसा आंदोलन मिला, जिसमें कहानी लेखन के लिये किसी भी तरह के फॉर्मूले नहीं बने थे। यही कारण है कि कथ्य और शिल्प के धरातल पर जितनी

विविधता उस समय की कहानियों में दिखाई देती है उतनी बाद के आंदोलनों से जुड़ी कहानियों में नहीं दिखाई देती।

इसी दौर में कथाकारों ने कहानी-समीक्षा भी शुरू कर दी थी।”

(सारिका: संपादकीय: अंक 392 अपनी बात अवध नारायण मुद्गल)

गदल(रांगेय राघव), मलबे का मालिक(मोहन राकेश), यही सच है(मन्नु भंडारी), जहाँ लक्ष्मी कैद है(राजेन्द्र यादव), परिंदे(निर्मल वर्मा), कोसी का घटवार(शेखर जोशी), गुल की बन्नो(डॉ.धर्मवीर भारती), तीसरी कसम उर्फ मारे गये गुलफाम(फणीश्वरनाथ रेणू), डिप्टी कलेक्टरी(अमरकांत), चीफ की दावत(भिष्म सहानी), वापसी(उषा प्रियवंदा) आदि। ये कहानियाँ और उनके रचनाकार कहानी जगत की अमूल्य धरोहर हैं।

तृतीय पीढ़ी

डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल के शब्दों में, “सन् 1947 की राजनीतिक आजादी के बाद, जो सपने थे, वे खिले कम, जले अधिक”।

इसके कई कारण हो सकते हैं। एक तो संसाधनों की कमी, हो सकता है। दूसरा, हमने लोकतंत्र तो अपना लिया लेकिन उसको सुचारु रूप से चलाने के लिए जितनी परिपक्वता पूरे समाज में आवश्यक थी, उस स्तर तक हम शायद नहीं उठ पाये थे। परिणामतः धीरे-धीरे छिना-झपटी का परिवेश आकार लेने लगा। आदर्श के प्रति निष्ठाएं परिवेश से लुप्त होने लगीं। समाज मोहभंग की स्थिति में पहुंच गया। तब के महौल में मूल्यहीनता, बेचैनी का भाव मिलता है। तो समाज कुंठाओं और संत्रासों का शिकार होना ही था। पूरे परिवेश में एक तरह का अमानवीयकरण, विद्रुपता व्याप्त हो गयी। स्वाभाविक था कि यह सब साहित्य में, या जहाँतक हमारा संबंध है, हिंदी कहानी में व्यक्त हो।

दरम्यान लेखन में भी कुछ प्रयोग होते रहे। तृतीय पीढ़ी को बीच की पीढ़ी माना जाता है और कुछ कहानी आंदोलनों का दौर भी कहा जाता है।

इसमें जो एक बदलाव आया वह था वक्तव्यबाजी का। कहानी में खुबसुरत मुहावरे अंतर्भूत होने लगे। वस्तुतत्त्व के स्थान पर रूप तत्त्व हावी होने लगा। छायावादी संस्कार फिर स्थान बनाने लगे। उदा. निर्मल वर्मा का कथा साहित्य। प्रेमचंद जी ने स्थापित की कड़वे यथार्थ की धारा कुछ धीमी हो गयी।

दुनिया के साथ संपर्क बढ़ने से देश और काल की व्याप्ति बढ़ी, जो कहानियों में व्यक्त हुई। लेकिन इसके साथ ही एक तरफ तो आधुनिकता के लगाव के कारण पश्चिमी सभ्यता ओढ़ने का आकर्षण था तो दूसरी ओर गांवों के उत्थान के प्रति तडप के कारण उदासी और बेचैनी थी। वैचारिक व्यापकता ने कुछ, वैचारिक अराजकता का रूप ले लिया था। विकल्पों का द्वंद्व था। इस द्वंद्व में तीसरी पीढ़ी व्यर्थता बोध से ग्रस्त हो गयी।

व्यापक सामाजिक पीड़ा का स्थान व्यक्तिगत पीड़ा के प्रस्तुतीकरण ने ले लिया।

यह पीढ़ी स्त्री-पुरुष संबंधों के उधेड़बुन में उलझ कर रह गयी। लेकिन यहाँ सृजन की जगह सेक्स का आतंक ही अधिक देखने मिलता है। इन दैहिक संबंधों की कहानी को निर्मल वर्मा की ' वे दिन ', दूधनाथ सिंह की ' रक्तपात ', सपाट चेहरे वाला आदमी ', रविन्द्र कालिया की ' पत्नी ', गिरिराज किशोर की ' यात्राएं ' आदि में देखा जा सकता है। लेकिन इस पीढ़ी की महिला कथाकारों ने इस विषय को केवल स्पर्श किया है। वे उस हद तक नहीं गयीं जिस हद तक पुरुष कथाकार। शायद पूर्व संस्कार इसके लिए कारण हो सकता है। उदा. ममता कालिया, मन्नु भंडारी, उषा प्रियवंदा।

कहानियों के इस दौर में अज्ञेय और इलाचंद्र जोशी आदि ने विशुद्ध मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों की कहानियों की रचना की।

इस दौर में कुछ लम्बी कहानियाँ भी लिखी गयीं। उदा. कृष्णा सोबती की ' मित्रो मरजानी ', रेणु की ' तीसरी कसम'।

इस पीढ़ी के लेखक और उनकी प्रातिनिधिक कहानियाँ—

यशपाल : मक्रील, खच्चर और आदमी

गजानन माधव मुक्तीबोध : काठ का सपना

भैरवनाथ गुप्त : खलनायक

कमलेश्वर : मांस का दरिया

विष्णु प्रभाकर : धरती अब भी घूम रही है

अज्ञेय : जयदोल, ये तेरे प्रतिरूप

अमृतराय : इतिहास, लाल धरती, कठघरे

अमरकांत : जिंदगी और जोंक

श्रीकान्त वर्मा : शवयात्रा, कैद, घर, छाया

गिरिराज किशोर : चार मोती बेआब

रांघेय राघव : गदल

गोविन्द मिश्र : वह अपना चेहरा

भैरवप्रसाद गुप्त : सपने का अन्त

शिवप्रसाद सिंह : हत्या और आत्महत्या

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना : लपटें

धर्मवीर भारती : बंद गली का मकान, मुन्शी गाथा लिख दी

राजेन्द्र यादव : देवताओं की मूर्तियाँ, खेल-खिलौने, टूटना, जहाँ लक्ष्मी कैद है

मोहन राकेश : इंसान के खंडहर, नये बादल, एक और जिंदगी, जानवर और जानवर

भीष्म साहनी : चीफ की दावत, खून का रिश्ता, सिफारिशी चिट्ठी, कुछ और साल, माता-विमाता, बात की बात, यादें।

कृष्णा सोबती : मित्रों मरजानी, यारों की यार

मन्नु भंडारी : यही सच है, मैं हार गयी

“ नयी कहानी आंदोलन के बाद की कहानियों का दौर, मोहभंग की स्थिति का दौर रहा। आजादी के दस साल बाद उभरनेवाली कथापीढ़ी को अर्थहीनता और मूल्यहीनता की विषैली स्थितियों में सांस लेने को मजबूर होना पड़ा। इन विषैली हवाओं ने आदमी को छोटा कर दिया। साथ ही उसे एक घूटन, टूटन और संत्रास झेलने के लिये भी मजबूर होना पड़ा। इसी स्थितियों में लघु मानव का जन्म हुआ।

देश में शहरीकरण और औद्योगीकरण का दौर शुरू हो चुका था और अपनी जड़ें फैलाने लगा था। भारतीय शहरीकरण और औद्योगीकरण के लिए नयी तकनीक का आयात हुआ और उस आयात के साथ ही बाहर के विचार और आंदोलन भी हमारे यहाँ आये। अस्तित्ववाद, नवसमाजवाद, भूखी पीढ़ी, बीट पीढ़ी आदि की विचारधाराएं बेरोक-टोक भारतीय रचनाकारों के पास आ गयीं। इन विचारधाराओं ने ही हिन्दी कहानी को महानगरबोध, लघुमानववाद और अकथावाद या अकहानीवाद जैसी चीजें दीं।

शहरीकरण के साथ ही, रिश्तों के टूटने का सिलसिला भी शुरू हुआ। ‘पिता और रक्तपात’ जैसी कहानियाँ इस बात का प्रमाण हैं। पीढ़ियों के अंतराल का सिलसिला भी इसी दौर से शुरू हो गया था। इसका मुख्य कारण संस्कार और संस्कृति का वर्णसंकरत्व था। ऐसा वर्णसंकरत्व भी शहरीकरण की ही देन है। क्योंकि गाँव या कस्बे से महानगर में आये हुए लोग दोनों ही जगह विस्थापित होने की स्थिति झेलते रहे। दरअसल वे लोग आधुनिक होने का वहम् पालकर गावों और कस्बों से कटते रहे और महानगरों से जुड़ नहीं पाये। हर जगह और हर क्षेत्र में यह त्रिशंकु जैसी स्थिति ही संत्रास को जन्म देती रही है। और इस पीढ़ी के संत्रास का कारण भी कमोबेश ऐसी स्थिति का पैदा होना ही था।

इन तमाम स्थितियों ने उस दौर के रचनाकार को नये यथार्थ के दर्शन कराये थे। दरअसल वह दौर यथार्थ के व्यापक होने का दौर ही था। यह यथार्थ की पारंपरिक अवधारणा से अलग था। कुछ लोग इस दौर को कहानी के संदर्भ में रिक्तता और शून्य का दौर भले ही कह दें लेकिन वे उस कालखंड को हिन्दी कहानी के इतिहास से खारिज नहीं कर सकते। वह कहानी की विकास यात्रा का एक जरूरी पड़ाव था। उस दौर में बहुत ही सशक्त और महत्वपूर्ण रचनाकारों की अपेक्षा कुछ अधिक ही थी।

जानरंजन, दूधनाथ सिंह, काशीनाथ सिंह, रविन्द्र कालिया, ममता कालिया, गंगाप्रसाद विमल, से.रा.यात्री, मधुकर सिंह, महेंद्र भल्ला, गिरिराज किशोर, कामतानाथ, मेहरुन्निसा परवेज, नरेन्द्र कोहली, रमेश उपाध्याय

आदि नामों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। भले ही यह दौर मिश्रित संस्कृतियों और विचारधाराओं का रहा हो लेकिन इस दौर के रचनाकारों ने, आनेवाली कहानी को नव्य यथार्थ की जमीन जरूर दे दी।

इस दौर की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि उन्होंने अपने बीच किसी भी स्वयंभू चौधरी को नहीं पनपने दिया।”

--अवध नारायण दुग्गल, संपादक, सारिका अंक क्र.393

चौथी पीढ़ी

“महंगाई, बेरोजगारी के बीच कुछ करने-मरने की ललक ने चौथी पीढ़ी को मोहभंग की स्थिति से उबारकर, जीवन के यथार्थ से परिचित कराया-----और कहानी ने एक नया मोड़ हासिल किया। लेखन जो व्यक्तिवाद का शिकार हो रहा था, फिर से समाज और समष्टि की ओर उन्मुख हुआ। आंखों देखें सच और जीवन के सच के सवाल मुखर हुए। परंतु परिस्थितियां सदा एक जैसी नहीं रहतीं। राजनीतिक आपाधापी, किसान-मजदूर आंदोलन, सशस्त्र क्रांति, आपात स्थिति आदि, इन निरंतर घटनाक्रमों का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा। चौथी पीढ़ी ने इसे रेखांकित किया।

अनायकवाद और अकथावाद के दौर को देखकर कुछ समीक्षकों को लगा था कि कहानी समाप्त हो गयी है। वे अपने औज़ार संभालकर कविता की वापसी की राह पर खड़े हो गये थे। लेकिन कहानी मरी नहीं। उसने अपने लिए एक नया रास्ता तलाश किया। यह नया रास्ता दरअसल नई कहानी का ही बायपास था। उसे ‘समांतर आंदोलन’ नाम दिया गया। इस आंदोलन ने कहानी को जिंदा रखने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। लेकिन धीरे-धीरे इसका स्वरूप जड़ होता गया। इसकी समाप्ति भी नारेबाज़ी और फॉर्मूलेबाजी में ही हुई। हालांकि इस आंदोलन का उद्देश्य बहुत अच्छा था। कहानी में आयी हुई जड़ता टूटने के आसार नजर आने लगे थे। वह जड़ता किसी सीमा तक टूटी भी। लेकिन इससे जिस नई चेतना की उम्मीद थी वह पूरी नहीं हो सकी। इस आंदोलन द्वारा उछाला गया ‘आम आदमी’ कुछ कदम चल कर ही ‘विशिष्ट आदमी’ बन गया।

यह सही है कि हिन्दी कथाकारों की चौथी पीढ़ी विचारों की धरातल पर काफी साफ़ है। इसके रास्ते और रास्तों के मोड़ उलझे हुए नहीं हैं। जहाँ तक प्रतिबद्धता का सवाल है, वहाँ उन्हें दो स्थितियाँ दिखाई दे सकती हैं। एक वे लोग हैं जो किसी खास राजनैतिक विचारधारा से जुड़े हुए हैं। दूसरी ओर वे हैं जो केवल अपने लेखन के प्रति प्रतिबद्ध हैं। लेकिन सामाजिक सरोकारों से जुड़े होने की बात दोनों ही ओर नजर आती है। यह एक ईमानदार और सही स्थिति है। आज के रचनाकार में संवेदना, सोच और अनुभूति का दायरा बढ़ा है। इसीलिए इस पीढ़ी में लेखन का क्षेत्र भी व्यापक हुआ है।

यही एक ऐसी पीढ़ी है जिसमें लेखिकाओं की संख्या सबसे अधिक है। इस पीढ़ी की सबसे बड़ी देन कुछ सशक्त लेखिकाएं ही हैं।

हर पीढ़ी की अपनी कुछ विशेषताएं होती हैं। ये विशेषताएं चाहे राजनीतिक उथल-पुथल या आंदोलनों के कारण हो या सांस्कृतिक और साहित्यिक आंदोलनों के द्वारा। हिन्दी की चौथी पीढ़ी के सामने ये दो ही स्थितियाँ रही हैं।

इस पीढ़ी के साथ ही 1971 की गौरवशाली और महान विजय जुड़ी है। साथ ही जुड़ी हैं आपातकालीन स्मृतियाँ और सत्ता की स्वार्थभरी खींचतान। इन तमाम बातों ने इस पीढ़ी को नयी ऊर्जा भी दी और एक नये किस्म की जागरूकता भी। यही ऊर्जा और जागरूकता इस पीढ़ी की सबसे बड़ी विशेषता है। संभवतः इन्हीं स्थितियों ने इस पीढ़ी के कंधों पर आर्थिक दबाव भी बढ़ाये हैं। इसीलिए इस पीढ़ी के रचनाकार को अनिश्चय और अनिर्णय की स्थितियों से भी गुजरना पड़ा। अक्सर ऐसी स्थितियों से गुजरने के कारण कोई भी पीढ़ी दिग्भ्रमित हो सकती है। लेकिन इस पीढ़ी ने अपने आपको दिग्भ्रमित होने से न सिर्फ बचाया ही है बल्कि ज्यादा चौकन्ना भी किया है। यही कारण है कि आनेवाली पीढ़ी को विरासत में कुंठाएं नहीं मिलीं। कुंठामुक्त रहना अपने आपमें काफी महत्वपूर्ण बात है।”

(सौजन्य से: अपनी बात : संपादकीय : सारिका अंक 394 : अवध नारायण मुद्गल)

पांचवीं पीढ़ी

कहानीकारों की पांचवीं पीढ़ी का, पूर्व पीढ़ियों से विलगाव बताने के लिए, इस पीढ़ी के विशेष बिंदु, कुछ पूर्वतिहास के साथ इस प्रकार उद्धृत किये गये हैं : -

- 1) 1950 के बाद नई कहानी, सचेतन कहानी, अकहानी के आंदोलन दीर्घजीवी नहीं हुए।
- 2) 1970 के बाद के दौर समांतर कहानी, जनकहानी, जनवादी कहानी, चोटधर्मी कहानी, टकरावभरी कहानी के रहे।
- 3) आठवें दशक की कहानी की विशिष्टता यह है कि कहानी का सांचा और ढांचा पश्चिमी कहानियों की अनुकृति और प्रतिकृति नहीं रही।
- 4) पहले जो बात छिपाकर, संकेतात्मक ढंग से कही जाती थी, वह आठवें दशक में उजागर तौर पर कहीं जाने लगी।

(पूर्व पीढ़ी की महिला कहानीकार लैंगिक मामलों में, खुलकर बातें नहीं करती थीं। अधिक से अधिक उस विषय को स्पर्श करती थीं। लेकिन वे अब खुलकर वर्णित करती हैं।

समकालीन दाम्पत्य जीवन, पारिवारिक जीवन में जो दरार आयी है, उनके कारणों को आठवें दशक की कहानियाँ पूरी तार्किकता से उजागर करती हैं।)

- 5) यह देखकर अच्छा लगता है कि आठवें दशक का कहानीकार आत्मकेंद्रित लेखन से बाहर आना चाहता है और बृहत सामाजिकता का अंग बनकर वह दुख में परास्त होना नहीं चाहता। अपने परिवेश से जुझते आदमी का यह संसार, उसकी जययात्रा का भरोसा देता है।

6) आठवीं दशक की कहानी ने यह मिथ भी खंडित कर दिया कि सार्थक सृजनात्मकता के लिए, इस या उस विचारधारा के प्रति प्रतिबद्धता अनिवार्य होती है। विचारधारा, सृजनात्मकता को सही ज्ञान, दिशा और दृष्टि दे सकती है। पर सभी लेखकों को दे ही, यह जरूरी नहीं। एक विशेष राजनीति से प्रेरित सृजनात्मकता का जरूरत से ज्यादा कसाव रचनात्मकता को नष्ट कर देता है।

रचना सामाजिक, राजनीतिक विचारधारा से नहीं बनती। रचनाकार के, सांस्कृतिक भट्टी में तपकर, गलकर नये रूपाकार में निर्मित होती है। सामूहिक और वैयक्तिक मिलकर रचनाकार को शक्ति देते हैं।

7) नई कहानी का व्यक्तिवादी रुझान सामाजिक, राजनीतिक संघर्ष के आड़े आता था। और मजेदार बात यह थी कि बदलते परिवेश में यह संघर्ष तेज हो रहा था।-----इन कहानियों में समाज की वह तस्वीर है जिसे सामाजिक, राजनैतिक विसंगतियों ने पैदा किया है।

8) आठवें दशक की कहानियाँ, पहले जैसी अति नाटकीयता, अति भावुकता, अति यांत्रिकता और अति सरलीकरण से मुक्त प्रतीत होती हैं।

9) छठे-सातवें दशक का कहानीकार, मोहभंग से उत्पन्न समस्याओं के नीचे दबा कहानीकार है। किन्तु आठवें दशक का कहानीकार समस्याओं से टकराता है। यहाँ आदमी समस्याओं से पीड़ित है लेकिन खंडित नहीं है। समस्याएं कितनी भी बड़ी, जटिल, भयप्रद, तनावप्रद क्यों न हों, वे जीवन से बड़ी नहीं हैं। व्यक्तिगत वैफल्य और निराशा की तीव्र संवेदनाएं आदमी को छुकर निकल जाती हैं। उसका कुछ बिगाड़ नहीं पाती।-----वह बौद्धिक अनुशासन से जीवन की जटिलता को उधेड़ने में व्यस्त है।

छठे-सातवें दशक की कहानी में अभिव्यक्ति के स्तर पर जो ठहराव आ गया था, तो आठवें दशक के कहानीकारों ने सृजनात्मक संभावनाओं के लिए नयी दिशा और दृष्टि का भरोसा पैदा किया है।

-----सारिका अंक 395 के आधार पर साभार

1984 की कहानियों पर प्रेम जनमेजय की टिप्पणी-

‘वर्तमान भारतीय राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था ने ईमानदार आदमी को इतना अधिक आतंकित कर दिया है कि वह संघर्ष के स्थान पर अपने बचाव का रास्ता ढुंढता दिखाई देता है। न्याय और सदाचार पर टिकी उसकी आस्था अप्रासंगिक और व्यर्थ दिखाई देने लगी है। शोषण एवं भ्रष्टाचार का कसता हुआ शिकंजा व्यक्ति को अकेला कर रहा है। तथाकथित मनोरंजन के साधन उसे समाज से काटने का भयानक षडयंत्र रच रहे हैं। और यही कारण है कि अन्याय और शोषण के विरुद्ध उसके मन में आतंक जन्म ले रहा है। इस आतंक को युवा कहानीकारों की कहानियों में श्री कन्हैयालाल नंदन ने महसूस किया है। सारिका सर्वभाषा कहानी प्रतियोगिता: 1983 की कहानियों पर टिप्पणी करते हुए वे लिखते हैं, “मुझे कहीं न कहीं ये सारी कहानियाँ प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से आतंकबोध की कहानियाँ लगती हैं। -----इन कहानियों को पढ़कर मेरे मन में युवा लेखन के प्रति आस्था और भी अधिक बढ़ गयी है। आतंक के बीच जीते रहने की जद्दोजहद अपने आपमें कम उपलब्धि नहीं मानी जा सकती।”

यह सही है कि आतंक को मात्र चित्रित करके रह जानेवाला यथार्थवादी रचनाकार उस आतंक को बढ़ाता है। व्यक्ति की संघर्षमय चेतना को कुंद करता है। ऐसी रचनाएँ आदमी की आस्था को तोड़ती हैं। परंतु हिन्दी कहानी में किसी भी प्रकार के व्यवस्थाजनक आतंक को फैलाने की कोशिश बहुत कम है। अधिकांश कहानियाँ आदमी की संघर्षमयी चेतना को जागृत करती हैं।

यह माहौल व्यक्ति को कायर बना रहा है और इसका कारण है व्यक्ति का व्यक्तिवादी होना। किन्तु आशा की जानी चाहिए कि कहानीकारों की सोच पाठक को इस आतंक से संघर्ष करने की प्रेरणा देगी। '

सब कुछ पाकर भी खालीपन की अनुभूति के स्थान पर किसी सकारात्मकता को चित्रित करने की ललक पैदा करेगी।

“ एक के बाद दूसरी पीढ़ी कोई व्योम से जन्म नहीं लेती। उसके पास एक विरासत होती है और विरासत का यह सिलसिला अटूट होता है।

पिछले सात अंकों में पीछे के पचास वर्षों में स्थापित हुए लगभग 100 लेखकों की हिस्सादारी को प्रस्तुत करने का यत्न किया गया है।”-----संपादक सारिका

कहानीकारों की पीढ़ियों के अनुसार प्रतिनिधि कहानीकार और उनकी प्रतिनिधि कहानियाँ

सारिका कथा पीढ़ी विशेषांक एक : अंक संख्या : 391

कहानी क्र.	कहानी शीर्षक	लेखक	क्र.	शीर्षक	लेखक
1)	कंठी	भैरवप्रसाद गुप्त	6)	एक्कहवा पांडे	रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'
2)	प्रियेजी	उपेंद्रनाथ अशक	7)	प्रतिवाद	छेदीलाल गुप्त
3)	अस्थिर	शिवानी	8)	कोई लेखक लाओ	हर्षनाथ
4)	असत्य	द्विजेंद्रनाथ मिश्र 'निर्गुण'	9)	आबार ऐशो	नरेश मेहता
(इन्हें आंसु निचोड़ कहानी लेखक कहा जाता है)			(संगीत लहरियों का सुप्रभाव)		
5)	अतिथि	अमृत राय	10)	अधमरा कलकत्ता	प्रभाकर माचवे

इस पहले विशेषांक को पहली पीढ़ी के उन कथा मनिषियों की रचनाओं से संजोया गया है जो स्वाधिनता से पूर्व न केवल लिखना आरंभ कर चुके थे अपितु उन्होंने हिन्दी कथा साहित्य को बेहतर और सकारात्मक दिशा भी प्रदान की। उन आदरणीय कथाकारों में से जो आज हमारे बीच न रहे, यह अंक उन्हींकी स्मृति में समर्पित है।

इस अंक में जिन उत्कृष्ट कहानियों का उल्लेख मिलता है, उनमें चित्रा मुदगल की 'मामला बड़ेगा आगे', अशोक सक्सेना की 'ओव्हर एज' तथा भैरवप्रसाद गुप्त 'मूँह अंधरे' हैं।

कथा पीढ़ी विशेषांक दो : सारिका अंक संख्या 392

1) लोक-परलोक	अमरकांत	6) राजपूत और राजपूत	ठाकूरप्रसाद सिंह
2) भाग गया	राजेंद्र यादव	7) अफवाहें	हृदयेश
3) दंगा	श्रीलाल शुक्ल	8) कुश्ती	मुद्राराक्षस
4) देवेन	भीष्म सहानी	9) दमरी की खोज में	विवेकी राय
5) संधि	कुंवर नारायण	10) नाजायज कब्जा	यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र'
11) वह औरत	रामदरश मिश्र	12) दिल्ली कहां है	महीपसिंह

ज्ञानपीठ द्वारा आयोजित, उभरते लेखकों की प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार प्राप्त लेखिका ' ऋता शुक्ल ' और कथासंग्रह था ' क्रौंचवध ' जिसे ज्ञानपीठ ने प्रकाशित किया। अन्य उल्लेखनीय कहानीसंग्रह 'कुहासा'।

विशेषांक क्रमांक तीन : अंक संख्या 393

1) जांच अभी जारी है	ममता कालिया		
2) किला	विजय मोहन सिंह		
3) चीख	गिरिराज किशोर	9) पहचान	नरेन्द्र कोहली
4) इस वक्त भालेराव	रमेशचंद्र शहा	10) सफाइयां	रमेश उपाध्याय
5) घटनासूत्र	से.रा. यात्री	11) जन्म लेता हुआ डर	मधुकर सिंह
6) सारी रात	कामतानाथ	12) भागमनी	रमाकांत
7) अनसुनी चीख	नीलकांत	13) पमेरियन	धर्मेन्द्र गुप्त
8) ढहता कुतुबमीनार मेहरुन्निसा परवेज		14) ब्लॉक होल	योगेश गुप्त
		15) मुक्तियुद्ध	रॉबिन शॉ पुष्प

कथा पीढ़ी विशेषांक चार : सारिका अंक क्र. 394

1) माइकेल लोबो	गोविंद मिश्र	7) चिडिया ऐसे मरती है	अशोक अग्रवाल
2) अकालग्रस्त	राकेश वत्स	8) राख	सूर्यबाला
3) चीं घोड़ी	स्वयं प्रकाश	9) यात्रा मुक्त	राजी सेठ
4) एक थी हंसमुख दे	मृणाल पांडे	10) सर्वशक्तिमान	बटरोही
5) पिल्ला इंद्रधनुष्य	ब्रजेश्वर मदान	11) किरजों पर सजा	
6) विलोम पन्त	गर्ग	12) घर	सुभाष
13) चीरहरण के बाद:	आलमशाह खान	14) गुमनाम	बीर राजा
		15) पहचान	जितेंद्र भाटिया

संयुक्त पीढ़ी विशेषांक एक : सारिका अंक क्र. 396

1) वह नाचीज नहीं था	हंसराज रहबर	8) सांझ का सूरज	उषा किरण खान
2) तपस्या	हिमांशु जोशी	9) गाँव	हेतु भारद्वाज
3) अपने-अपने कटघरे	राजेंद्र राव	10) एक लड़की अकली	स्नेह मोहनीश
4) मोहभंग	मालती जोशी	11) डायन	श्रवणकुमार
5) इक्कीसवीं सदी की ओर	वल्लभ सिद्धार्थ	12) दो आखर	अरुण सीतेश
6) शुभ-अशुभ	मंजुल भगत	13) भेड़िये	सुरेन्द्र अरोड़ा
7) कतार	अभय	14) ठंडा चुल्हा	पृथ्वीराज मोंगा
		15) चेहरे	उदयन बाजपेयी

संयुक्त पीढ़ी विशेषांक दो : सारिका अंक क्र. 397

1) हसब-नसब	बदउज्जमा	9) रेगिस्तान में धुंधलका	रमेश गुप्त
2) ये छोटे महायुद्ध	शशिप्रभा शास्त्री	10) राजपथ का मॅनहोल	प्रदीप पन्त
3) उमंग	विरेन्द्र मेहंदीरता	11) अपने लोग	घनश्याम अस्थाना
4) ठठरिया	कृष्णा अग्निहोत्री	12) बिरादरी	कुंदनसिंह परिहार
5) ब्लेड	चित्रा मुदगल	13) प्रेम नहीं	सिद्धेश
6) अपने लोगों के बीच	आशीष सिन्हा	14) सीमाएं	प्रभाकर द्विवेदी
7) डॉ.डी.पी.सिंह की डिस्पेन्सरी	डॉ. माहेश्वर	15) धांधलेश्वर	गोपाल चतुर्वेदी
8) दुलारीदास	सच्चिदानंद धूमकेतु		

संक्षेप में

हिन्दी कहानी

प्रेमचंद और उनके बाद की पीढ़ियाँ

प्रेमचंद जी ने सामाजिक प्रश्न और चिन्ताएं इनके प्रति राह बतायी।

पीढ़ी क्रमांक एक : 1) आजादी के लिए संघर्ष का समय।

2) आदर्श तथा संघर्षशील मूल्य थे।

इस दौर के लेखक : जैनेन्द्रकुमार, अज्ञेय, अमृतलाल नागर, उपेन्द्रनाथ अशक, यशपाल, फणीश्वरनाथ रेणू, भैरवप्रसाद गुप्त, रांगेय राघव, विष्णु प्रभाकर, द्विजेंद्रनाथ मिश्र, मार्कंडेय।

पीढ़ी क्र. दो : आजादी के बाद की पीढ़ी। नयी उषा के सपने। अपना देश, अपनी सरकार के सपने।

1965 के पूर्व : नयी कहानी आंदोलन, सचेतन कहानी : कहानी का सबसे समृद्ध समय, फॉर्मूले से मुक्त कहानी, विविधा से युक्त, मानवीय संबंधों से युक्त कहानियाँ।

इस दौर के कहानीकार : रांगेय राघव(गदल), मोहन राकेश(मलवे का मालिक), मन्नु भंडारी(यही सच है), राजेंद्र यादव(जहां लक्ष्मी कैद है), निर्मल वर्मा(परिदे), शेखर जोशी(कोसी का घटवार), डॉ. धर्मवीर भारती(गुल की बन्नो), फणीश्वरनाथ रेणू(तीसरी कसम), भीष्म सहानी(चीफ की दावत), अमरकांत(डिप्टी कलेक्टरी), प्रियवंदा(वापसी)।

पीढ़ी क्रमांक तीन :

आजादी के सपने पूरे नहीं हुए। मोहभंग की स्थिति। कुंठाएं, संत्रासों की शिकार पीढ़ी, राह से भटकता देश, समाज और आदमी। गहरा असंतोष, मूल्यहीनता की स्थिति, विद्रुप स्थितियाँ, अमानवीयकरण, अजनबीपन घूटन, टूटन से भरा माहौल। वैचारिक अराजकता, सैद्धान्तिक अस्थिरता, पीढ़ियों का अलगाव व्याप्त।

औद्योगीकरण/शहरीकरण : देहात का आदमी शहर आया लेकिन उसके लिए दोनों जगह विस्थापित की स्थिति, त्रिशंकु अवस्था।

तकनीक के साथ विचारों का भी आयात हुआ। संस्कृति और संस्कारों का संकर।

इस दरम्यान स्त्री-पुरुष के दैहिक संबंधों की कहानियाँ की भरमार लेकिन स्त्री लेखिकाओं द्वारा इस मुद्दे को केवल हल्का सा स्पर्श। अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी द्वारा विशुद्ध मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों का शब्दांकन। वस्तुतत्त्व से कलातत्त्व की भरमार। व्यक्तिगत पीड़ा तत्त्व को प्रायिकता।

इसकी शुरुआत छठे दशक के अन्त में ही हो चुकी थी। समय प्रमुखता से सातवाँ दशक। 1965 के बाद समकालीन कहानी, अकथावाद, अकहानीवाद, अनायकवाद आदि

इस पीढ़ी प्रतिनिधि लेखक—

ज्ञानरंजन, रघुनाथ सिंह, काशीनाथ सिंह, रविन्द्र कालिया, ममता कालिया, गंगाप्रसाद विमल, से.रा.यात्री, मधुकर सिंह, महेन्द्र भल्ला, गिरिराज किशोर, कामतानाथ, मेहरुन्निसा परवेज, रमेश उपाध्याय, नरेंद्र कोहली आदि।

चौथी पीढ़ी—

मोहभंग की स्थिति से उबरकर फिर जीवन के यथार्थ से साक्षात्कार करनेवाली पीढ़ी। व्यष्टि से निकलकर फिर समष्टि से जुड़नेवाली पीढ़ी। राजकीय, सामाजिक विसंगतियों की ओर मुखातिब। राजकीय, सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक आंदोलनों के कारण उथल-पुथल। समांतर कहानी में आम आदमी का अस्तित्व।

1) विचारधाराओं से जुड़े लेखक

2) विचारधाराओं से न जुड़े लेखक। लेकिन पीढ़ी की दृष्टि साफ़, नयी ऊर्जा और जागरूकता से युक्त। लेकिन परिणति कुछ हदतक नारेबाज़ी और फॉर्मूलेबाजी में।

इस पीढ़ी में संख्या की दृष्टि से तथा व्यक्त होने की दृष्टि से सशक्त सबसे अधिक महिला कहानीकार उभरीं।

“ पीढ़ी कुंठा मुक्त रही यही इस पीढ़ी की विशेषता है।”----अवध नारायण मुदगल

पांचवीं पीढ़ी---

भूतकाल से मुक्त होकर भविष्य की ओर निहारने वाली पीढ़ी।

मोटे तौर पर आठवां दशक और आगे। जन कहानी, जनवादी कहानी, चोटधर्मी कहानी, टकराव भी कहानी।

यह पीढ़ी मानती है कि---

- साहित्य का सांस्कृतिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक के बीच एक संश्लिष्ट व्यापार है, जिसे चेतना नियंत्रित नहीं करतीं, परिस्थितियां निर्धारित करती हैं।
- यह व्यक्तिवादी रुझान से बाहर आकर, सामाजिकता का अंग बनकर जुझना जानती है, परास्त होना नहीं।
- आदमी समस्याओं से पीड़ित है लेकिन खंडित नहीं। बौद्धिक अनुशासन से जटिलताओं को उधेड़ने में व्यस्त है। रचनात्मकता, विचार और संवेदना का संतुलन चाहती है। वैचारिक तार्किकता स्पष्ट होनी चाहिए।

- पहले जो बात छिपाकर, संकेतात्मक ढंग से कही जाती थी वह आठवें दशक में उजागर तौर पर कही जाने लगी।

आगे---

नववें दशक के उत्तरार्ध में, प्रकाशित होनेवाले हिन्दी के नियतकालिक एक के बाद एक बंद होते गये। और हिन्दी कहानियाँ और अन्य साहित्य प्रकाशित होने के और वे पाठकों के लिए उपलब्ध होने के आसान रास्ते भी लुप्त होते गये।

सारिका विशेषांक-

अंक क्रमांक	विषय		
166	समांतर कहानी विशेषांक	190	संघर्षशील फिलीस्तीनी साहित्य
196	आत्महत्या करनेवाले लेखकों की कहानियाँ	243	मण्टों विशेषांक
252	चुनाव विशेषांक	253	पुरस्कार अंक(1000 कहानियों में से)
254	चेखव विशेषांक	263	फ्रेंज काफ्का विशेषांक
264	हेमिंग्वे विशेषांक	265	प्रेमचंद विशेषांक
276	प्रेमकथा विशेषांक (1)	277	प्रेमकथा विशेषांक (2)
281	हास्य-व्यंग्य विशेषांक	283	संस्मरण विशेषांक
285	ईरानी क्रांति कथा	288	जब्तशुदा कहानियाँ (1)
289	जब्तशुदा कहानियाँ (2)	291	पड़ोसी देशों की कहानियाँ
293	लु-शून जन्म शताब्दी विशेषांक	299	दॉस्तोव्स्की विशेषांक
300	संस्मरण विशेषांक	304	हास्य- व्यंग्य विशेषांक
306	पत्र विशेषांक	315	देह व्यापार “ (1)
316	देह व्यापार विशेषांक (2)	317	“ (3)
318	नोबेल पुरस्कार प्राप्त लेखक (1)	319	नोबेल पुरस्कार प्राप्त लेखक (2)
320	खेल कथा (1)	321	खेल कथा (2)
322	नारी यातना विशेषांक(1)	323	नारी यातना (2)
328	जब्तशुदा कहानियाँ (3)	329	जब्तशुदा कहानियाँ (4)
330	सर्वभाषा कहानी प्रतियोगिता(1)	331	सर्वभाषा कहानी प्रतियोगिता(2)

334	अपराध कथा (1)	335	अपराध कथा (2)
340	देह व्यापार विशेषांक (4)	341	देह व्यापार विशेषांक (5)
342	समाज संदर्भ की कहानियाँ	344	महिला कथाकार अंक
346	गुप्तचरी की कहानियाँ (1)	347	गुप्तचरी की कहानियाँ (2)
352	लघुकथा विशेषांक	359	नवांकुर विशेषांक
361	पीढियाँ आमने-सामने	362	इराक विशेषांक
364	लोककथा विशेषांक(1)	365	लोककथा विशेषांक (2)
370	कहानियाँ : संदर्भ आम आदमी	372	ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता लेखक(1)
373	ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता (2)	375	फिल्म कथा साहित्य विशेषांक
376	सत्ता संघर्ष कथा	377	व्यंग्य कथा विशेषांक
378	महाविनाश की कहानियाँ	379	स्त्री-पुरुष संबंधों की कहानियाँ
380	विचित्र कथा विशेषांक	381	भावावेग की कहानियाँ
382	संस्मरण विशेषांक	383	सर्वभाषा कहानी एवं लघुकथा प्रतियोगिता
384	प्रतिनायक कहानी अंक	385	अपराध और जासूस कथा विशेषांक
386	साम्प्रदायिक सद्भावना की कहानियाँ	387	अमृतलाल नागर विशेषांक
388	विज्ञान कथाएँ	389	युद्ध कथा
390	मिथकीय कहानियाँ	391	हिंदी कथा पीढ़ी विशेषांक(1)
392	हिंदी कथा पीढ़ी विशेषांक (2)	393	“ (3)
394	“ (4)	395	“ (5)
396	हिंदी कथा संयुक्त पीढ़ी विशेषांक(1)	397	संयुक्त पीढ़ी(2)
401	लघु-व्यंग्य विशेषांक	425	विश्व आतंकवाद के विरुद्ध
424	मुक्ति संघर्ष कथा	434	विश्व साहित्य में विषकन्याएं(1)
435	विश्व साहित्य में विषकन्याएं(2)	436	युवा प्रेम कथा
447	विभाजन की कहानियाँ	438	अपराध और आत्मस्विकृति

इसके अतिरिक्त स्टॉलस्टॉय, सार्त्र, दुष्यंतकुमार, यशपाल, मोहन राकेश, रेणु, राजेंद्रसिंह बेदी इनपर भी विशेषांक निकाले हैं। इन सब अकों में मिलाकर, 1200 हस्ताक्षरों की 1500 के ऊपर कहानियाँ मिलेगीं। और वह भी सर्वोत्तम। सारिका के कमलेश्वर, कन्हैयालाल नंदन, अवधनारायण मुद्गल संपादक रहे हैं। उपसंपादकों में रमेश बत्तरा, सुरेश उनियाल, अरुण वर्धन बलराम आदि रहे हैं। सारिका में कहानियों के अतिरिक्त उपन्यास अंश, परिचर्चाएं और बातचीत, लघु रचनाएँ, स्थायी स्तंभ, साहित्य क्षेत्र की समकालीन गतिविधियाँ छपती रही हैं।

हिन्दी कहानी आंदोलन क्या है ?

जब दो व्यक्तियों के बीच संप्रेषण होता है तो वास्तव में एक की दूसरे को कहानी कहने की ही मन्शा होती है, किसी व्यक्ति की, किसी घटना की, किसी प्रक्रिया की, किसी अनुभव की, रहस्य की मालिका को खोलने की, जानकारी अहाते में से घुमाकर लाने की, स्मृतियों के प्रदेश में रममाण करवाने की, विचार प्रवृत्त करने की, तो बेचैन करके छोड़ने की, अनामिक प्रेरणा का स्रोत होने की, चर्चा या विवाद का स्फूर्लिंग छोड़ने की। सभी कुछ तुम्हें समृद्ध करनेवाला।

लेकिन हमारे इर्द-गिर्द कई बातें होते रहती हैं। और आज का पाठक कल्पना के स्थान पर इन वास्तविक बातों से उठाई कथाओं को प्राधान्य देता है। प्रत्यक्ष मनुष्य जीवन से नाट्य को उठाना, जिसमें रसमयता हो, यही कहानी कहने की कला है।

1950 से ' नई कहानी ' आंदोलन का आरंभ माना जाता है। यह आंदोलनों के वर्ग में प्रथम आंदोलन समझा जाता है। वैसे तो इस धारा के लेखकों में सर्वश्री कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश महत्वपूर्ण माने जाते हैं। कृष्णा सोबती, मनु भंडारी, उषा प्रियवंदा, फणीश्वरनाथ रेणू आदि भी महत्वपूर्ण रहे।

कहानी लेखन का सिलसिला तो लगातार चलता आ रहा है। ऐसा कहना कि इस कहानी आंदोलन का आरंभ इस विशिष्ट साल से हुआ, इतना ठीक नहीं। फिर भी हर आंदोलन के इतिहास में एक विशिष्ट काल या वर्ष सबसे महत्वपूर्ण होता है। उसे हम प्रवर्तक वर्ष कह सकते हैं।

नई कहानी की विशेषताएं(1956)---

A) इसमें भोगे हुए यथार्थ को व्यक्त किया गया था।

B) पहले कहानी में घटनाओं की एक निश्चित श्रृंखला होती थी। लेकिन नई कहानी में ऐसा कुछ नहीं रहता।

C) इस दौर में कहानी लेखन की नई शैलियाँ आदि विकसित हुईं। जैसी डायरी लेखन आदि। नये बिंब, प्रतीकों का प्रयोग होने लगा।

D) मानव जीवन को महत्वपूर्ण मानकर उसे अर्थपूर्ण दृष्टि प्रदान की गयी। जीवन की प्रत्येक अनुभूति को इसमें स्थान मिला। अर्थात् यथार्थवादी दृष्टिकोण इसकी विशेषता रही।

कुंठा, संत्रास, मृत्युबोध, भूख, गरीबी, बेरोजगारी जैसी सामाजिक समस्याओं का चित्रण, विविध विषय इसमें देखने को मिलते हैं।

नई कहानी आजादी के बाद का प्रमुख कहानी आंदोलन है। यह आजाद भारत की आकांक्षाओं और सपनों के साथ ही आगे बढ़ा और उसने नयी अभिव्यक्तियों को व्यक्त किया। नये-पुराने के बीच का संघर्ष, बदलते नारी-पुरुष संबंध, शहरी परिवेश, मध्यम वर्गीय परिवार, ग्रामीण से शहरी परिवेश में विस्थापन आदि विषय इसमें उभरे। नारी को विशेष स्थान मिला।

समकालीन कहानी---

‘ नई कहानी ’ आंदोलन के बाद की कहानी को सामान्यतः ‘ समकालीन कहानी ’ कहा जाता है। इसके अंतर्गत छोटे या बड़े कई कहानी आंदोलन उभरे।

‘ अकहानी आंदोलन ’ (गंगाप्रसाद विमल : 1960)

सठोत्तरी की कहानी की यह एक प्रमुख धारा रही। यह 1960 में फ्रांस में उभरे ‘ एन्टी स्टोरी ’ मुव्हमेंट से प्रभावित है। इन कहानियों में जीवन के प्रति अजनबीपन का भाव, जीवन के प्रति अस्विकार, निर्थरकता बोध, परंपराओं का पूर्ण अस्विकार, शिल्प की दृष्टि से अमूर्तत्व, उन्मुख यौन व्यवहार आदि तत्वों का दर्शन होता है। इस कहानी के उदाहरण के तौर पर प्रस्तुत की जाती है, दूधनाथसिंह की कहानी ‘ रीछ ’ और रविंद्र कालिया की ‘ नौ साल छोटी पत्नी ’।

समानांतर कहानी---

आम आदर्श को केंद्र में रखकर इस कहानी ने सामन्तवादी, पूंजीवादी और साम्प्रदायिक शक्तियों के खोखले चरित्रों को उजागर किया। इस कहानी में लेखक दो या अधिक अलग-अलग कहानियों को शामिल करता है। वे कहानियाँ आम तौर पर एक सामान्य चरित्र, घटना से जुड़ी होती हैं। कमलेश्वर (धर्मयुग, सारिका) को इस विधा का प्रवर्तक माना जाता है। और 1972 को प्रवर्तक वर्ष। अन्य उल्लेखनीय लेखक हैं कामतानाथ, इब्राहिम शरीफ आदि।

जनवादी कहानी आंदोलन---

ये कहानियाँ सर्वहारा के किये जा रहे शोषण का विरोध करती हैं। असगर वसाहत, सूरज पालिवन प्रमुख कथाकार हैं।

सचेतन कहानी, सहज कहानी, सक्रिय कहानी आदि-----

साठोत्तर कहानी के अंतर्गत उपरोक्त धाराओं की कहानियों की चर्चा की जा सकती है। इन कहानियों में स्वातंत्र्योत्तर और वैश्विक भारत के सामाजिक, आर्थिक यथार्थ को प्रस्तुत किया गया है (1982)। सक्रिय कहानी के प्रतिनिधि के तौर पर राकेश वत्स को माना जाता है (1979)। सहज कहानी प्रवर्तक-अमृत राय (1968)। सचेतन कहानी-महीपसिंह (1964)।

दलित कहानी आंदोलन---

इसके केंद्र में दलित जाति के अंतर्गत शामिल मनुष्य के अनुभवों, कष्टों, संघर्षों को स्वर देने की कोशिश की गयी है। बिहारीलाल हरित, ओमप्रकाश वाल्मिकी, मोहनदास नैमिशराय, जयप्रकाश कर्दम, डॉ. कंवल भारती, सुरजपाल चौहान, शौराज सिंह ' बेचैन ', डॉ. कुसुम वियोगी, रजनी तिलक, इस धारा के प्रमुख कहानी लेखक हैं।

दलित साहित्य आंदोलन के प्रवर्तक : आंबेडकरवादी प्रखर विद्वान डॉ. म.ना. वानखड़े

इनका जन्म महाराष्ट्र के अमरावती जिले के थुगाव नामक छोटे कस्बे में हुआ। उनके अनुसार, " अगर निग्रो अपना स्वयं का साहित्य और संस्कृति निर्माण कर सकते हैं तो भारत के दलित क्यों नहीं?"

वे, यह विचार प्रस्तुत करनेवाले पहले व्यक्ति थे। 1966 में ही उन्होंने उद्घोष किया था कि, " दलितों विद्रोही वाड.मय लिखें।"

दलित साहित्य का बीजारोपण, संस्थात्मक संरचना और साहित्य आंदोलन का आरंभ औरंगाबाद के मिलिंद महाविद्यालय में हुआ। उन्होंने दलित साहित्य पर पहली चर्चा आयोजित की थी। उसका विषय था ' महाराष्ट्र का विद्यमान और भविष्यकालीन सांस्कृतिक संघर्ष और समस्या '। और यही दलित साहित्य की प्रेरणा बनी।

" मैं किसके लिए लिख रहा हूं, यह स्पष्ट हुआ तो लेखक के लिए यह भी साफ हो जाता है की उसे क्या लिखना है और कैसे लिखना है।"

" विद्रोह अर्थात् बगावत। दलित लेखन को विद्रोही होना चाहिए। प्रस्थापित साहित्यिक और नैतिक मूल्यों के विरुद्ध, कला के लिए कला इस मापदंड के विरुद्ध, सनातन रुढ़ियाँ, परंपराएं, जातियता इनके विरुद्ध। लेकिन यह विद्रोह समाजामुख होगा, द्वेष पर आधारित नहीं।"

- कुछ समीक्षक कथा और कहानी में अंतर करते हैं-

कथा और कहानी दोनों की प्रकृति एक ही होती है। लेकिन कथा शिक्षाप्रद होती है तो कहानी संदेशप्रद।-----अजेयसिंह ' नीरज '

कथा किसी सत्य घटना के आधार पर पौराणिक, धार्मिक महत्व की होती है, जबकि कहानी कल्पना के आधार पर, काल्पनिक तथ्यों पर केवल मनोरंजन के लिए होती है।--सुरेश रावल।

- हिन्दी की प्रथम कहानी के बारे में और कुछ मत -

किशोरीलाल गोस्वामी द्वारा लिखी ' इन्दुमती '।

माधवराव सप्रे जी द्वारा लिखित और ' छत्तीसगढ़ मित्र ' नामक पत्रिका में अप्रैल 1901 के अंक में छपी कहानी ' एक टोकरी मिट्टी ' ----ज्वाला प्रसाद

सैयद इंशा अल्लाह खान की ' रानी केतकी की कहानी।

- 1) उसने कहा था—चंद्रधर शर्मा ‘ गुलेरी ’।
 - 2) हार कि जीत—सुदर्शन
 - 3) सद्गति—प्रेमचंद
 - 4) कफन----- “
 - 5) टोबा टेकसिंह—सआदत हसन मण्टो
 - 6) तीसरी कसम ऊर्फ मारें गए गुलफाम—फणीश्वरनाथ रेणु
 - 7) पक्षी और दीमक—गजानन माध्यम मुक्तिबोध
 - 8) चीफ की दावत— भीष्म सहानी
- दुनिया की संभवतः पहली कहानी : ‘ नूह की नांव की कहानी ’ । यह प्राचीन सुमेरिया के गिलगमेश काव्य जो मूल रूप से क्यूनिफॉर्म लिपि में मिट्टी की बारा पट्टियों पर लिखा मिला है, से है।
 - दुनिया की पहली पुस्तक—ऋग्वेद
 - सबसे अधिक बिकी गयी पुस्तक—बायबल (390 करोड़ कापियाँ)
 - सॉफ्टवेयर इंजिनियर लियोनिड टेचर के 2010 के अनुमान के अनुसार दुनिया में उपलब्ध किताबें 12,९८,64,880।
 - दुनिया का सबसे बड़ा पुस्तकालय : अमेरिका की लायब्रेरी ऑफ कॉंग्रेस : 16.2 करोड़ किताबें।
 - -----“-----दूसरा सबसे बड़ा पुस्तकालय : ब्रिटिश लायब्रेरी : 15 करोड़ किताबें
 - अलीपुर (बेल्बेडेरे इस्टेट्स पर) में भारत का सबसे बड़ा और भारत का सार्वजनिक रिकॉर्ड का पुस्तकालय है। यह भारत का राष्ट्रीय पुस्तकालय है।
 - भारत में सबसे पुराना पुस्तकालय तिरुवनंतपुरम के मध्य में है। यह राज्य केन्द्रीय पुस्तकालय है। इसे प्रसिद्ध संगीतकार राजा स्वाति तिरुनल के शासनकाल के दौरान 1829 में बनाया गया था।

प्रकरण ८

कहानी समीक्षा शास्त्र की दृष्टिकोण से

उपन्यास-

उपन्यास का शाब्दिक अर्थ है सामने रखना। संस्कृत के प्राचीन साहित्य में ' उपन्यास ' शब्द मिलता है। लेकिन वहाँ उसका अर्थ है ' प्रसन्न करने का एक साधन '।

एक अन्य स्थान पर उपन्यास की परिभाषा दी गयी है- " किसी भी अर्थ को व्यवस्थित रूप से उपस्थित करना "।

संस्कृत में (जिसे हम उपन्यास कहते हैं) ' उपन्यास के लिये ' कादम्बरी ' शब्द मिलता है। उसका अर्थ है ' बृहत् कथा '। मराठी में भी ' कादम्बरी ' शब्द ही है।

उपन्यास से संबंधित कुछ मनिषियों के विचार-

" मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा " -डॉ. श्यामसुंदर दास

" उपन्यास मानव चरित्र का चित्र है " -प्रेमचंद

" उपन्यास कार्य-कारण श्रृंखला से बंधा हुआ, वह गद्य कथानक है, जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचिदगी के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करनेवाले व्यक्तियों से संबंधित वास्तविक और काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव जीवन के सत्य का रसात्मक रूप से उद्घाटन किया जाता है। " -----बाबू गुलाबराय

" उपन्यास यह खाली मस्तिष्क और खाली समय के लिए मनोरंजन का एक साधन है "।

-----एच. जी. वेल्स

(मनोरंजन यह उपन्यास का एक पक्ष अवश्य है लेकिन आज कोई भी उपन्यास केवल इस उद्देश्य से नहीं, तो मानवीय चेतना के विकास के उद्देश्य से लिखा जाता है।)

" उपन्यास का क्षेत्र व्यापक है। इसमें साहित्य के सभी विषय किसी न किसी रूप में आ जाते हैं। उपन्यास का क्षेत्र गद्य है लेकिन फिर भी इसमें काव्य का प्रमाण कम नहीं होता "।

---डॉ. कृष्णलाल हंस।

(इसीलिए कहा जाता है कि, उपन्यास एक ओर जीवनचरित्र तो दूसरी ओर कविता है।)

फिर भी कहा जाता है कि जीवनचरित्र में घटनाओं और तिथियों का क्रम होने से, उसमें काव्य की सुंदरता नहीं आ पाती। तो दूसरी ओर उपन्यास में जीवन चरित्रों की अपेक्षा अधिक रोचकता दिखाई देती है।

उपन्यास के प्रकार ---विभाजन दो प्रकार से किया जाता है---

- 1) **विषय अनुसार** : घटना प्रधान, चरित्र प्रधान, सामाजिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक आदि।
- 2) **दूसरी दृष्टि** : कथावस्तु प्रधान, चरित्र प्रधान, कथोपकथन प्रधान, वातावरण प्रधान, शैली प्रधान, उद्देश्य प्रधान, रस प्रधान।

- अ) **कथावस्तु प्रधान**—ऐसे उपन्यासों में कथावस्तु को इस तरह प्रस्तुत किया जाता है कि उसमें प्रदर्शित आश्चर्यजनक परिस्थितियों में उलझे मानव जीवन का उतार-चढ़ाव ही पाठक के पूर्व आकर्षण का विषय बन जाता है और वह उन घटनाओं के सत्यासत्य अथवा पात्रों के चरित्र-चित्रण की ओर दृष्टि ही नहीं डाल पाता। उदाहरण---भारतेंदु कालीन जासूसी और तिलिस्मी उपन्यास।
- आ) **चरित्र प्रधान** : इस प्रकार के उपन्यासों में पात्रों के चरित्र का महत्व कथावस्तु से अधिक होता है। पात्रों का निर्माण परिस्थितियाँ नहीं करतीं वरन् पात्र ही परिस्थितियों के निर्माता होते हैं। घटनाएँ केवल पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालने के लिए ही होती हैं। ऐसे उपन्यास मानव जीवन के विभिन्न आदर्शों को प्रदर्शित करते हैं। उदा. प्रेमचंद का ' गबन ' उपन्यास। पाण्डेय बेचैन शर्मा ' उग्र ', चतुरसेन शास्त्री, जैनेन्द्र आदि के कुछ उपन्यास।
- इ) **कथोपकथन प्रधान** : इन उपन्यासों में कथावस्तु और पात्र दोनों महत्व के साथ आगे बढ़ते जाते हैं। पात्रों के कथाकथन से उनकी विचारधारा, गतिविधि एवम् चरित्र स्पष्ट होता जाता है। इन उपन्यासों में नाट्य तत्व की प्रधानता दिखाई देती है। ये उपन्यास अधिक कलापूर्ण, सुन्दर और प्रभावशाली होते हैं। प्रेमचंद के अधिकांश उपन्यास इसी कोटि के हैं।
- ई) **वातावरण प्रधान** : इस प्रकार के उपन्यासों में पात्र और घटनाओं के सन्तुलन के साथ ही देशकाल अथवा उस वातावरण का भी चित्रण होता है जिसमें कथावस्तु का विकास होता है। इस तरह इन उपन्यासों में इतिहासों के तथ्यों तथा लेखक की अपनी कल्पना का समन्वय स्वाभाविक रूप से दिखाई देता है। बाबू वृंदावनलाल वर्मा तथा चतुरसेन शास्त्री के उपन्यास इसी कोटि के हैं।
- उ) **शैली प्रधान** : आज का कोई भी उपन्यास निश्चित रूप से इस कोटि के अंतर्गत नहीं रखा जा सकता। वास्तव में ऐसा उपन्यास हो भी नहीं सकता जिसमें कथावस्तु, पात्र, चरित्र चित्रण आदि से अधिक महत्व उपन्यासकार की शैली को हो।
- ऊ) **उद्देश्य प्रधान**: ये उपन्यास अपने पाठकों के सामने एक निश्चित आदर्श उपस्थित करते हैं। प्रेमचंद, विश्वंभरनाथ शर्मा ' कौशिक ', भगवतीचरण वर्मा आदि के उपन्यास।
- ऋ) **रस प्रधान** : अविरल रसोद्रेक ही उपन्यासकार का प्रधान लक्ष्य होता है। किशोरीलाल गोस्वामी, देवकीनन्दन खत्री इनके उपन्यास इसी प्रकार के हैं।

उपन्यास के छह तत्व---

- 1) **कथावस्तु** : अच्छे उपन्यास का महत्व इसी में है कि वह मनुष्य की इन स्थितियों का स्वाभाविक चित्र उपस्थित करे। उपन्यास में उन्हीं बातों पर अधिक बल देना चाहिए जो जीवन को उत्साहपूर्ण, उद्योगी तथा प्रगतिशील बनाने में सहायक हो।

अ) उसमें जीवन से सम्बन्धित कोई आवश्यक बात छुट न सके और परस्पर विरोधी बातों को भी स्थान न मिले।

आ) उपन्यास के सब अंग एक श्रृंखला में सुंदरता से आबद्ध हो।

इ) घटनाओं का क्रम ऐसा हो, जिससे वे अस्वाभाविक और असंगत न जान पड़े।

ई) घटनाओं का विकास भी स्वाभाविक रूप से होता चले।

उ) कथानक का आधार वास्तविक जीवन हो, न कि कुछ घटनाओं का संकलन।

ऊ) उसका अन्त वर्णित घटनाओं के अनुकूल और सुखद हो।

ऋ) कथावस्तु के विकास की दृष्टि से मुख्य कथानक के साथ प्रासंगिक कथानक को भी स्थान दिया जा सकता है, किन्तु प्रासंगिक कथानक का मूल कथानक के विकास में सहायक होना आवश्यक है।

लृ) उपन्यास की कथावस्तु में रोचकता, स्वाभाविकता और एक अविरल प्रवाह हो।

2) **पात्र** : उपन्यास के पात्र ऐसे हो, जिनका चरित्र हमें लौकिक और स्वाभाविक दिखाई दे।

.....उपन्यासकार अपने पात्रों का इस प्रकार चरित्र-चित्रण करने में कभी स्वयं विश्लेषण करता और कभी अभिनय शैली से काम लेता है। पहले प्रकार में उपन्यासकार अपने पात्रों का चरित्र-चित्रण स्वयं के शब्दों में करता है। वह पात्रों के भावों, विचारों, स्वभावों और राग-द्वेषों को समझता, उनकी व्याख्या करता और उनके कारण बतलाता है। दूसरे प्रकार में लेखक अलग खड़ा होकर पात्रों को अपने कथोपकथन और व्यापार से, अपने संबंध में, दूसरे पात्रों की टिका-टिप्पणी से अपना चरित्र-चित्रण करने को स्वतंत्र छोड़ देता है।

उपन्यास की कथा कहने के तीन ढंग हैं---

1) अन्य पुरुष वाचक, उत्तम पुरुष वाचक और पत्रात्मक।

कथावस्तु और पात्रों का संबंध-----

उपन्यास मुख्य रूप से दो तरह के होते हैं—एक तो वे जिनमें पात्रों की प्रधानता होती है और कार्य व्यापार की श्रृंखला का स्थान गौण होता है। दूसरे वे जिनमें व्यापार की श्रृंखला का स्थान प्रधान होता है। पात्रों का उपयोग घटनाचक्र को सुचारु रूप से चलाने के लिए किया जाता है। जहाँ कथावस्तु का अधिक ध्यान रखा जाता है, वहाँ पात्रों से कथावस्तु के अनुसार काम लेना आवश्यक हो जाता है, जिससे चरित्र-चित्रण में असंगतता आ जाती है। जहाँ चरित्र-चित्रण का ही ध्यान रखा जाता है, वहाँ चरित्र के क्रमशः विकसित होने और तदनुसार घटनाचक्र के आगे बढ़ने से कथावस्तु का सामंजस्य बिगड़ जाता है। अतः दोनों का संतुलन ही उचित है। जबतक कथावस्तु और चरित्र-चित्रण एकदूसरे के आश्रित होकर चलेंगे तबतक वे अपने उद्देश्य की पूर्ति में सफल नहीं हो सकेंगे।

3) **कथोपकथन** : यद्यपि कथोपकथन का उद्देश्य कथावस्तु का विकास माना जाता है, पर कथोपकथन के द्वारा पात्रों के हर्ष-विषाद, राग-द्वेष प्रवृत्ति आदि का स्पष्टीकरण किया जाता है। कथोपकथन के द्वारा ही चरित्र का विश्लेषण और व्याख्या की जाती है और इसकी सफलता पर ही उपन्यास के उद्देश्य की सफलता अवलंबित है।

4) **रस** : कहानीकार जिस रस का संचार करना चाहता है, उसका प्रभाव उसे, उस रस की एक निश्चित सीमा का ध्यान रखकर ही करना चाहिए। उदा. हास्य रस का प्रयोग, उपन्यास का आकर्षण और सुंदरता बढ़ा देता है पर यदि वह अश्लीलता की सीमा तक पहुँच जाएं तो घृणित भी हो सकता है। अतः उपन्यासकार को यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि वह उपयुक्त अवसर, स्थिति तथा मनोवांछित प्रभाव के अनुकूल हो। प्रत्येक उपन्यास में किसी एक रस की प्रधानता होती है। जैसे प्रेमचंद जी के 'निर्मला' और 'गोदान' में करुण रस की, वृंदावनलाल वर्मा के 'मृगनयनी' उपन्यास में वीर रस की और इलाचन्द्र जोशी के 'सन्यासी' में श्रृंगार रस की प्रधानता दिखाई देती है।

5) **देशकाल अथवा वातावरण** : उपन्यास के वातावरण से तात्पर्य उसमें वर्णित आचार-विचार, रहन-सहन, रीति-रिवाज और परिस्थिति आदि से है। इसे दो भागों में विभाजित कर सकते हैं- सामाजिक और ऐतिहासिक। ऐतिहासिक उपन्यासों में सामाजिक उपन्यासों की अपेक्षा वातावरण अथवा देशकाल का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। श्री. वृंदावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यास, ऐतिहासिक कथावस्तु के आधार पर ही लिखे गये हैं।

6) **उद्देश्य** : उद्देश्य से तात्पर्य जीवन की व्याख्या अथवा आलोचना से है। कुछ लोगों का मत है कि उपन्यास लेखन का उद्देश्य मनोरंजन है। अतः उसमें जीवन संबंधी तथ्यों को ढूँढना व्यर्थ है। लेकिन मनोरंजन यह उपन्यास का गौण उद्देश्य है, प्रमुख उद्देश्य तो जीवन की व्याख्या करना है।

उपन्यास में नीति का भी स्थान है, पर वास्तविकता के पश्चात् अच्छा उपन्यासकार नैतिक शिक्षा देने के लिए, विचारक या उपदेशक का रूप धारण नहीं करता। वह मानव जीवन की व्याख्या द्वारा ही विभिन्न जीवन-चित्रों की सहायता से अपने उपन्यास में नैतिक शिक्षा का अंतर्भाव कर देता है।

कहानी

कहानी एक निश्चित उद्देश्य से पूर्ण होने के कारण उसकी उपन्यास से अलग अपनी एक स्वतंत्र शैली बन गयी है।

“ कहानी एक ऐसा व्याख्यान है, जो एक ही बैठक में पढ़ा जा सके।”

(पाश्चात्य कहानी साहित्य के जन्मदाता—एडगर एलन पो)

“कहानी वही है, जो एक घंटे में पढ़ी जा सके।”—एच. जी. वेल्स

“ आख्यायिका, एक निश्चित लक्ष्य को सामने रखकर लिखा गया नाटकीय आख्यान है।”-----बाबू शामसुंदर दास

“ कहानी एक रचना है, जिसमें जीवन के किसी एक अंग या किसी एक मनोभाव को प्रदर्शित करना ही उसके लेखक का उद्देश्य रहता है। उसके चरित्र, शैली और कथा विन्यास, सब उसी एक भाव को पुष्ट करते हैं। वह एक ऐसा गमला है, जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है।

वर्तमान आख्यायिका का आधार ही मनोवैज्ञानिक है। घटनाएँ और पात्र, उसी मनोवैज्ञानिक सत्य को स्थिर करने के लिए लाये जाते हैं। उनका स्थान बिल्कुल गौण है.....प्रेमचंद

“ आख्यायिकाओं में बड़ी शक्ति है। वे समाज की प्रवृत्तियों को जहाँ व्यक्त करती हैं, वहाँ उनके ठीक विन्यास सुधार अथवा निराकरण की प्रवृत्ति भी उत्पन्न कर सकती है। इसलिए कहानी में नंगापन या फुहड़पन, कहानी कला की कोई सेवा नहीं कर सकता।”.....आचार्य रामचंद्र शुक्ल

कुछ लोग कहानी को उपन्यास का संक्षिप्त रूप समझते हैं।

“ कहानी जीवन की प्रतिछाया है।”----अज्ञेय

“ एक ऐसी भूख, जो निरन्तर समाधान पाने की कोशिश करती रहती है।”... (जैनेन्द्र)

“ घटनात्मक इकहरे चित्रण का नाम ही कहानी है।”- चंद्रगुप्त विद्यालंकार

कहानी की समग्र परिभाषा-----

“ कहानी, कहानी होनी चाहिए अर्थात् एक तो उसमें घटित घटना का कोई जीवनव्यापी महत्व होना चाहिए। दूसरे वह घटना आकस्मिक होनी चाहिए। उसका विकास तीव्र गति से इस प्रकार होना चाहिए कि वह एक कौतुहल के साथ चरम बिंदु तक पहुँच जाये।”.....सर ह्यूग वालपोल

“ कहानी मानव जीवन के पक्ष विशेष अथवा समस्या विशेष पर आधारित एक ऐसी स्वयंपूर्ण रचना है, जिसमें एक तथ्य विशेष का उद्घाटन करनेवाली घटना का चित्रण, उसके पात्रों के जीवन के चढ़ाव-उतार के साथ किया गया हो।..... डॉ. कृष्णलाल हंस

“ लेखन का पहला उद्देश्य :

मैंने यह कभी नहीं कहा कि लेखन का एकमात्र उद्देश्य मनोरंजन है। लेकिन मनोरंजन, लेखन का पहला उद्देश्य है। किसी रेस्तरां के बारे में पहली बात जो प्रभावित करती है, वह है उसका खाना। इसके बाद ध्यान जाता है कि वह साफ़-सुथरा है, बैरे नम्र स्वभाव के हैं या नहीं। मनोरंजन कम से कम और अवश्य मिलनेवाली वस्तु होनी चाहिए। संदेश उतना आवश्यक नहीं। वे कहानियाँ सिर्फ कमजोर कहानियाँ होती हैं, जो किसी संदेश का सहारा लेकर ऊपर चढ़ने की कोशिश करती हैं.....इसाक सिंगर

- पहले कुछ लोग कहानी में तीन हजार से बारह हजार शब्दों का होना आवश्यक मानते थे। लेकिन अब शब्दों की संख्या का कोई बंधन नहीं है। वह सौ शब्दों की हो सकती है या पंधरा हजार शब्दों की भी।

- आज का कहानी लेखक, पाठक के सामने खड़ा होकर उससे प्रत्यक्ष बातें करता सा मालूम होता है। उसकी शैली पाठक के अंतरंग मित्र सी होती है। उसकी यह शैली, प्रत्यक्ष शैली अथवा व्यक्तिप्रधान शैली कही जा सकती है।
- प्रत्येक कहानी में कोई न कोई संघर्ष अवश्य होता है। यह संघर्ष ही कहानी को प्राणमयी बनाता है।

कहानी के तत्व

1) **कथावस्तु** : इसके पांच अंग होते हैं।

अ) शीर्षक : इसे देखकर ही पाठक के मन में उस कहानी को पढ़ने की इच्छा पैदा होनी चाहिए।

आ) प्रस्तावना : इसमें कहानी के मुख्य पात्रों का संकेत होने के साथ ही कहानी का आरंभ भी हो।

इ) मुख्य भाग : इसमें कहानी का संपूर्ण मुख्य भाग आ जाता है और वह क्रमशः विकास करता हुआ -

ई) चरम बिंदु पर पहुंचता है।

उ) अन्त : कहानी का अन्त इस ढंग से किया जाता है कि वह वह पाठक के हृदय पर स्थायी प्रभाव छोड़ सके और कहानीकार का उद्देश्य सफल हो सके।

2) **कथोपकथन** : कहानी का कथोपकथन, कहानी के कथातत्व का विकास करता, उसके पात्रों के चरित्र को स्पष्ट करता है। कथोपकथन के द्वारा ही पात्रों की मनोवैज्ञानिक स्थिति तथा सामाजिक स्थिति का पता लगता है। अतः कथोपकथन, कहानी का एक बहुत आवश्यक और महत्वपूर्ण अंग है।

3) **चरित्र-चित्रण** : कहानी में पात्रों की संख्या कम से कम होती है। कहानी के नायक और नायिका ही मुख्य पात्र होते हैं। कहानी में उपन्यास की तरह पात्रों के चरित्रों का व्यापक विकास नहीं दिखाया जा सकता, किन्तु पात्रों के चरित्र की एक स्पष्ट झलक अवश्य दिखाई जा सकती है। इसी झलक के आधार पर उस पात्र के संपूर्ण चरित्र का अनुमान हो जाता है। अतः पात्रों के चरित्र-चित्रण में कहानीकार को बहुत सतर्क रहना पड़ता है। चरित्र-चित्रण, वर्णन द्वारा, संकेत द्वारा, वार्तालाप द्वारा और घटनाओं द्वारा किया जाता है। इसमें वास्तविकता, संक्षिप्तता, स्वाभाविकता और आंशिकता का ध्यान रखना आवश्यक है।

4) **देशकाल** : आवश्यक है कि देशकाल अथवा वातावरण का चित्रण, पात्रों के वास्तविक मानसिक स्थिति के अनुरूप आकर्षक किन्तु संक्षिप्त हो।

5) **भाषा-शैली** : वर्णन की सुंदरता ही कहानी के प्रवाह का आधार है। प्रत्येक व्यक्ति का कहानी कहने का अपना ढंग होता है। कहानी में शैली का बहुत महत्व है। शैलियाँ अनेक हैं। आत्मकथा शैली, इतिहास शैली, पत्रात्मक शैली, डायरी शैली। कहानी चाहे जिस शैली में लिखी जाये, किन्तु उसकी भाषा प्रभावशाली, सरस, सरल, प्रवाहपूर्ण तथा विविध भावों को स्पष्टता के साथ प्रकट करने की होनी चाहिए। आजकल हिंदी में चार भाषा-शैलियाँ प्रचलित हैं- एक प्रसाद जी की शुद्ध संस्कृत-प्रचुर भाषाशैली, दूसरी प्रेमचंद जी की तरल, सरस

और पात्रानुकूल भाषाशैली, तीसरी उग्र जी की लाक्षणिक शैली और चौथी यशपाल जी की माधुर्य गुणयुक्त भाषाशैली।

6) **उद्देश्य** : यह पहले ही कहा जा चुका है कि प्रत्येक कहानी का एक उद्देश्य होता है। केवल मनोरंजन के लिए लिखी गयी उद्देश्यहीन कहानी को कहानी कहना ही व्यर्थ है। पहले की कहानियों का उद्देश्य पाठकों को कोई शिक्षा अथवा उपदेश देना होता था। किन्तु कहानी का उद्देश्य आज गौण बन गया है। आज की कहानी का उद्देश्य पाठकों में जागृति, स्फूर्ति, साहस अथवा किसी एक रस विशेष की चेतना को जन्म देना है। यही कारण है कि वर्तमान कहानी का उद्देश्य संवेदनात्मक अधिक और उपदेशात्मक कम होता है।

कहानीकार अपनी कहानी के द्वारा समाज को स्वस्थ, उन्नत और प्रगतिशील बनाने का प्रयत्न करता है। वह अन्धविश्वासों, सामाजिक रुढ़ियों और कमजोरियों पर प्रहार करता और इस प्रकार एक आदर्श समाज की रचना में सहायक होता है।

कहानी का विकास इस ढंग से होना चाहिए कि उसके विकास की प्रत्येक सीढ़ी पर पहुँचते ही पाठक आगे की बात जानने को उत्सुक दिखाई दे और उसका चरम विकास पाठकों के मन पर आकस्मिक तथा चमत्कारपूर्ण प्रभाव डाल सके।

(समीक्षा शास्त्र : डॉ. कृष्णलाल हंस)

लघुकथा

“ लघुकथा का यथार्थ से सीधा सारोकार है। ”

भूमिका में संपादक ने स्वयं स्वीकारा है कि इसका इतिहास लगभग 90 वर्ष पुराना है। उन्होंने भारतेन्दु बाबू को लघुकथा का जनक न मानते हुए, माखनलाल चतुर्वेदी जी को स्वीकार किया है।

बात ठीक भी है, क्योंकि यदि भारतेन्दु बाबू कृत ‘ परिहासिन ’ को हम आदि लघुकथा का उत्स मान लेंगे तो फिर हमें लघुकथा की संजिदगी चुटकुलों जैसी हल्की परंपरा में खोजनी पड़ेगी और यह लघुकथा का दुर्भाग्य होगा। यदि खोजपरक नजरिये को हम गंभीरता में इस्तेमाल करें तो लघुकथा के बिंदु, पुराण साहित्य से भी आगे वैदिक साहित्य में भी मिलेंगे। उपनिषद् काल में तो सभी ब्रह्मवादी तत्व चिंतनपरक व्याख्याएं किसी न किसी लघुकथात्मक तत्व से ही प्रारंभ होती हैं। जहनी तौर पर ऐतिहासिकता की दृष्टि से भले ही स्वीकार किया जाए कि लघुकथा की परंपरा हजारों वर्ष पुरानी है, मगर सच तो यह है कि हमें इसकी वास्तविक जमीन बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दौर में ही खोजनी पड़ेगी। इसका बाल्यकाल शताब्दी के प्रारंभ में देखा जा सकता है। मगर सही मानों में यह परवान तब चढ़ी, जब छठवें दशक में नयी कहानी के आंदोलन ने जोर पकड़ा।

(हिन्दी लघुकथा कोश : संपादक : बलराम)

- कम समय चुकाकर पाठक अपने समय की विसंगतियों से रू-ब-रू हो ले, ऐसी विधा सिर्फ लघुकथा ही प्रदान कर सकती है।
- एक गहन अनुभूति, एक विस्तृत भाषा को, चंद सार्थक शब्दों में संघनित कर देती है।
- लघुकथा का विकास इस भेद के आधार पर क्रमशः हुआ है। स्वरूप के विकास में कुछ चीजें नाटकों से ली गयीं। जैसे कथोपकथन, घटनाओं का विन्यास, वैचित्र्य पूर्ण बाह्य और आभ्यन्तर परिस्थिति का चित्रण तथा उसके अनुरूप भावव्यंजना।

प्रकरण ९

विचित्र कहानियाँ

जीवन में कई बार हमारा विचित्रताओं से सामना होता है। हम उन्हें विचित्रताएं नाम इसलिए देते हैं क्योंकि उनका तार्किक सीधा सा स्पष्टीकरण हमें तत्काल नहीं मिलता। यह बात बीते जमाने में भी होती थी और आज भी होती है। पहले ज्ञान के साधनों की कमी थी, ज्ञान की व्याप्ति भी मर्यादित थी। परिणामतः विचित्र लगनेवाली बात का संबंध अंधविश्वास के साथ जुड़ जाता था।

लेकिन आज हर चीज विज्ञान के दायरे में आ गयी है। फिर भी आदमी सर्वज्ञ नहीं बना है। इस कारण कुछ चीजें उसे आज भी विचित्र लग सकती हैं। अंतर इतना आया है कि अब वह धीरे-धीरे अंधविश्वास का पल्लू थामने की जगह बुद्धि, तर्क इनका उपयोग कर वैज्ञानिक सोच की दिशा में बढ़ने लगा है। फिर भी हमने देखा कि विज्ञान कथाओं के संदर्भ में भी दो वर्ग किये गये हैं। 1) विज्ञान फिक्शन(जिनके पीछे कोई वास्तवता से जुड़ा तर्क हो) 2) विज्ञान फंतासी(कल्पनाएँ जिनके पीछे कोई वास्तव तर्क हो यह आवश्यक नहीं)। कल्पनाएँ करना यह तो मानव बुद्धि का सामान्य व्यापार है।

साहित्यकार जानी-पहचानी बातों के सहारे ही विचित्रताओं भरी कल्पनालोक की सृष्टि भर करता है। इस वर्ग के साहित्य का जीवन सत्य से अलग, मात्र मानसिक या काल्पनिक सत्य ही होता है। मनोजगत और प्रत्यक्ष जगत में जो अंतर होता है वही अंतर इन दोनों की सृष्टि में होता है। एक सृष्टि केवल मनोरंजन देती है तो दूसरी जीवन को ठोस आधार। दोनों का अपनी-अपनी जगह महत्व है।

आज भी सामान्य आदमी तंत्र-मंत्र, भूल-प्रेत, टोना-टोटका, साधु-सन्यासी, ओझा-औलीया, जिन्न, उड़न तश्तरी आदि की कहानियाँ सुनता-सुनाता तो है लेकिन उनकी वास्तविकता के बारे में जानता बहुत कम है। ऐसे में वह या तो अविश्वास, अति विश्वास या धोखेबाजी का शिकार हो जाता है।

तो बड़े-बड़े साहित्यिक ऐसी विचित्रताओं में नये अर्थ ढूँढने की या उन्हें देने की कोशिश करते हैं। ऐसे ही कुछ साहित्यकारों की विश्व प्रसिद्ध रचनाओं की ओर हम दृष्टि डालेंगे— (सारिका अंक 380 के सौजन्य से--)

आश्चर्य वृत्तान्त : पं.अम्बिकादत्त व्यास : संक्षिप्तीकरण-लक्ष्मीचंद्र गुप्त

हिन्दी उपन्यास लेखन के आदि पुरषों में पं. अंबिकादत्त व्यास, गोपालराम गहमरी, देवकीनंदन खत्री और किशोरीलाल गोस्वामी आदि महत्वपूर्ण रचनाकार हैं। स्वस्थ मनोरंजन हेतु, अद्भुत कल्पनालोक की सैर कराने के उद्देश्य से, सौ-डेढ़ सौ साल पहले लिखी गयीं प्रमुख शुरुआती रचनाओं में यह उपन्यास आता है।

रत्नप्रभा की कथा : सोमदेव भट्ट : प्रस्तुति : हिमा कौल

वह कैसा जमाना रहा होगा और कैसे लोग जिनके जप-तप से, इनके हर संकट में देवी-देवता स्वयं उपस्थित होकर 'तथास्तु' कहते हुए, उन्हें हर संकट से उबार लेते थे।- सोमदेव भट्ट कृत ग्रंथ 'कथा

सरित्सागर ' इसी प्रकार के विचित्र घटनाक्रमों की कथाओं और अवांतर कथाओं का अथाह कोष है। इसमें कुल अठारह लंबक हैं। उपरोक्त कथा सप्तम लंबक का संक्षिप्त रूप है।

कंकाल : रविन्द्रनाथ टागोर : अनुवाद : पुरबी पंवार

साहित्य में अद्भुत कल्पनालोक का सिलसिला बहुत पुराना है। बंगला में भी ऐसा साहित्य काफी लिखा गया है। बंगला के आदि मौलिक कवि रविन्द्रनाथ टागोर से लेकर तो सत्यजित रे तक यह सिलसिला चला आ रहा है। यह रविन्द्र बाबू की प्रारंभिक कहानियों में से एक ऐसे ही सिलसिले की कहानी है।

बरेनिस : एडगर एलन पो : अनुवाद : स.उ.

एडगर एलन पो को विचित्र तथा रहस्य कथाओं का जनक माना जाता है। उनकी कहानियों की सबसे बड़ी खुबी यह है कि पूरी रहस्यमयता के बावजूद पाठक को कोई भी घटना या स्थिति अविश्वसनीय नहीं लगती और वह स्वयं ही, उस रहस्य लोक में जैसे प्रविष्ट हो जाता है। उन्हीं की एक कहानी—

डॉ. जॅकिल अँड मि. हाईड : रॉबर्ट लुई स्टिवेंसन

क्या ऐसा हो सकता है कि एक आदमी सचमुच अपने दो रूप बना ले। एक रूप सड़क पर चलता-फिरता रहे और दूसरा आलमारी में बंद खामोशी से बैठा रहे----? यहाँ प्रस्तुत है विख्यात अंग्रेज़ी कथाकार की हैरतअंगेज कहानी जिसके प्रकाशित होते ही पाठकों में खलबली मच गयी थी।

काया कल्प : फ्रेंज़ काफ़्का : संक्षिप्त रूपान्तर : स. उ.

दो विश्व युद्धों के बीच के काल का यूरोपीय समाज जिन आर्थिक और सामाजिक विसंगतियों से गुजर रहा था, वे हमारी आज की स्थिति से बहुत अधिक भिन्न नहीं थीं। काफ़्का उस दौर का एक महत्वपूर्ण लेखक था और उसकी सबसे विख्यात लम्बी कहानी है ' मेटमॉर्फोसिस ' । यह उस युग की सर्वाधिक चर्चित कहानियों में से एक है। उसी जर्मन कहानी का संक्षिप्त रूपान्तर सारिका के इस अंक में आपको मिलेगा।

भयकथा

भय यह सजिवों की आदीम भावना है। भय कहते ही सहसा हमारे सामने आती है हमपर चढ़कर आनेवाली, काली, सुनसान रात, बरगद की डरावनी जटाएं, आधी गिरी हुई दीवारें, निर्जन बाड़ा, किरस-किरस करता हुआ खुलता-बंद होता जीर्ण दरवाज़ा, सफेद साड़ी में धुंधली सी दिखनेवाली और तुरंत लुप्त होनेवाली औरत की आकृति, बिखरे बालोंवाली स्थिर आंखों से टकटकी लगाकर देखनेवाली डरावनी बुढ़िया ऐसा ही कुछ याद आने लगता है। क्योंकि यह हमने कहानियों में पढ़ा, सुना और सिनेमा में देखा होता है।

लेकिन इसके अतिरिक्त किसीको ऊचाई से, तो किसीको पानी से तो किसीको आग से डर लगता है। संस्कारों और धर्म का, जनमानस पर डर तो है ही। संत्रास, ऐसा डर है जिसका कोई चेहरा या कारण नहीं होता। हरेक का अपना-अपना अलग अनुभव है। भय इस अनुभूति की कई मितियाँ हैं। काल्पनिक से लेकर तो फोबिया तक। भय के कारण बुद्धि सुन्न हो जाती है। अंधा भय, प्यारा सा भय, अज्ञात का भय, व्यक्तिगत भय, सामुहिक भय।

डर लगा कि दिमाग उसे पहचानता है, मज्जासंस्था को आगाह करता है। भय के प्रति प्रतिक्रिया स्वरूप Adremalin और Cortisol जैसे संप्रेरकों का स्राव होने लगता है। उस कारण श्वास की गति बढ़ती है। खून का दबाव बढ़ता है। रक्तप्रवाह हृदय से दूर हाथ-पांव की ओर जाने लगता है। चूंकि अब या तो संघर्ष के लिए अन्यथा पलायन के लिए, हाथ-पांव को शक्ति पहुंचाना जरूरी हो जाता है।

ऐसा कहा जाता है, मानव की उत्क्रांती में भय तथा उसके कारण अपना बचाव इसकी बहुत बड़ी भूमिका है। शिकार, खेती, घर आदि का बनाना इनमें भय की भूमिका होनी चाहिए। भय के सकारात्मक परिणाम के कारण ही प्राणि अपना बचाव करता है, चाहे फिर वह संघर्ष के रूप में हो या पलायन के रूप में।

अंग्रेजी साहित्य में एडगर एलन पो से लेकर शुरू हुई भयकथाओं की परंपरा में आगे एच.पी.लवहक्राफ्ट, मेरी शेली, आर्थर मशेन, रामसे कॅपबेल, रिचर्ड मथेसन, रे ब्रॅडबरी प्रमुख लेखक हैं। वर्तमान में डॅमन सिमन्स, टॉप पिक्रिली, स्कॉट स्मिथ, नॉर्मन पॅट्रीज, नील गेमन, पोल जी. ट्रिंबले आदि हैं।

“वैसे तो अनैसर्गिक, अति मानवी या अमानवी शक्ति की मनुष्य के जीवन में घुसपैठ होने लगी है इस कल्पना के आधार पर और वह हमें भारी नुकसान पहुंचा सकती है जिससे बचने का हमारे कोई रास्ता नहीं है, यह कल्पना ही हमें भयाक्रांत कर देती है। इस कल्पना के आधार पर जो कहानी रची जाएगी वह भयकथा होगी। अमानवी घटकों द्वारा मनुष्य को आक्रांत या बाधित किया जाना यह पारंपारिक भयकथा का चहेता विषय है। लेकिन समय के साथ लेखकों ने नवगुढ़ कथाओं में वास्तववाद और प्रतिकात्मक पद्धति का उपयोग शुरू किया।

भयकथा निर्मिती के लिए जिन आधारों की सहायता ली जाती हैं वे इस तरह के हो सकते हैं—

- 1) पारलौकिक जगत की कल्पनाएँ। वे केवल कल्पनाएँ ही होती हैं।
 - 2) विज्ञान विषयक काल्पनिकाएँ।
 - 3) तंत्रज्ञान के अनुत्तरदायित्वपूर्ण उपयोग के कारण उत्पन्न होनेवाले अटल और अजेय संकट।
 - 4) मनुष्य को आज तक भी ज्ञात न हुए ब्रह्माण्ड के विविध रूप तथा उनके मनुष्य जीवन में संभाव्य हस्तक्षेप के कारण उत्पन्न होनेवाली अनिश्चितता।
 - 5) कहानी को अविश्वसनीय मोड़ न देते हुए भी, धक्कातंत्र की निर्मिति की जा सकती है। वाचक के मन में गुढ़, भय, अद्भुत जैसे विविध भाव पैदा किये जा सकते हैं।
 - 6) मनुष्य की रोजाना की जिन्दगी में आनेवाले अनअपेक्षित व्यवहार से भी भय पैदा किया जा सकता है।
- यहाँ कुछ प्रश्न मन में उभर सकते हैं—

- भय यह कुछ सुखद अनुभूति नहीं है। फिर भी भयपटों के लिए दर्शकों में या भयकथाओं के लिए वाचकों में इतनी उत्सुकता क्यों रहती है? कृत्रिम क्रौर्य, भूताटकी पैदा करके, पैसे का भूगतान कर के भी मनुष्य भय की अनुभूति से क्यों गुजरना चाहता है? चूंकि कुछ लोग उसमें भी सुखानुभूति का अनुभव करते हैं। मानस विज्ञान के अनुसार, ऐसे समय भय के कारण भी उनके दिमाग में डोपामाइन हार्मोन पैदा होकर, उन्हें उन्मनी अवस्था में पहुँचाकर सुखानुभूति देता है। मनोरंजन देता है।
- भयकथा में कभी सभी कुछ सच लगनेवाली तो कभी कुछ-कुछ बेचैन करनेवाली तो कभी अधुरा सा होने की अनुभूति होती है।
- भयकथाओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाव होता है, अस्तित्व कायम बनाये रखने का। पात्रों के नियति की यह यात्रा एक भयचकित करनेवाले अन्त की ओर चलते रहती है।
- भय और अद्भुत साहित्य निर्मिती के लिये भी अत्यंत सन्मानपूर्ण समझे जानेवाले ब्रॅम स्टोकर और फैंटेसी परस्कार हैं।
- गॉथिक भयकथा : अठारहवीं सदी के हॅरिस वॉलपोल लिखित ' द कैसल ऑफ अंत्रातो ' यह इस प्रकार का प्रथम उपन्यास माना जाता है। ऐसे कहानियों के स्थल आम तौर पर पुराने किले, पुराने परित्यक्त बड़े मकान आदि होते हैं। इन वास्तुओं के गॉथिक स्थापत्य के साथ होनेवाले संबंधों के कारण इसे यह नाम दिया गया है। इस प्रकार की भयकथा में होनेवाला एक अन्य घटक यानी भूतकाल का वर्तमान पर होनेवाला वर्चस्व।

भूतकथा

मृत व्यक्ति की आत्मा का या प्रभाव का, अतृप्त वासना तृप्त करने या बदला लेने के उद्देश्य से मानवी व्यवहार में प्रवेश हुआ, इस कल्पना के आधार पर जो कहानी बुनी जाएगी वह है भूतकथा।

प्रकरण १०

हास्य-व्यंग्य भरी कहानियाँ

हास्य-व्यंग्य कहानियों से हम सब बहुत अच्छी तरह परिचित हैं। अतः इसके विषय में अवांतर बातें करने के स्थान पर इन कहानियों की विशेषताओं या अपेक्षित विशेषताओं के विषय में विद्वानों के विचार जानना अधिक उपयुक्त होगा।

भद्र हास्य या व्यंग्य रचनाएँ—

“ वस्तुतः हास्य और व्यंग्य दोनों ही विसंगति के कारण उत्पन्न होते हैं। वही दोनों का मूल है। अंतर प्रभाव का है। यदि विसंगति मात्र हंसाकर रह जाए तो वह हास्य कहलाता है। परंतु विसंगति चित्रण का प्रभाव आक्रमक और लेखक का दृष्टिकोण प्रहारात्मक हो और रचना कचोट तथा तिलमिलाहट उत्पन्न करे तो व्यंग्य की सृष्टि होती है। कई बार विसंगति चित्रण हास्य और व्यंग्य, दोनों की सृष्टि करता है। परंतु व्यंग्य में हास्य का अतिरेक, व्यंग्य प्रभाव को प्रायः कुंद भी कर देता है।”

“ व्यंग्य जब भी बुद्धि विलास की चीज बना तभी समाज से कट गया। और जब उसने काटना शुरू किया तब वह द्वेष के नजदीक जा बैठा। ये दोनों भी स्थितियाँ व्यंग्य के विकास के लिए न तो हितकर हैं और न स्वस्थ। ऐसे व्यंग्य को सृजनात्मक भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि सही व्यंग्यकार द्वेष की स्थिति से ऊपर उठा हुआ होता है। वह विकृति की सृष्टि नहीं करता। अपितु सृष्टि की विकृतियों को उजागर करके उनके सुधार की भूमिका तैयार करता है। एक अच्छे व्यंग्यकार में धार, तीखापन और पैनापन तो होता है लेकिन उसके पीछे व्यंग्यकार की सृजनशील भावना ही रहती है।”

“ असल में व्यंग्य, हास्य को समृद्ध करता है और हास्य व्यंग्य को जीवन्त और प्रेषणीय बनाता है। एक कुशल व्यंग्यकार रचना में व्यंग्य और हास्य का ऐसा संतुलन करता है कि व्यंग्य की तेज धार और हास का उल्लास, अपनी-अपनी छटा दिखाते रहें।”

“ हास्य साहित्य का एक रस है। जबकि व्यंग्य एक शक्ति। “व्यंगार्थ” शब्द का प्रयोग, संस्कृत में जगह-जगह दिखाई देता है। व्यंग्य लेखन या व्यंजना शक्ति का विकास एक स्वतंत्र कला के रूप में हुआ था। इस शक्ति को काव्य या साहित्य की तीसरी सबसे बड़ी और सबसे महत्वपूर्ण शक्ति माना गया है।”

- हास्य शुद्ध और शिष्ट होना चाहिए। उसमें फुहड़ता नहीं होनी चाहिए।
- व्यंग्यकार में आत्म-व्यंग्य करने की प्रवृत्ति होनी चाहिए।
- व्यंग्य में विकृति अशोभनीय है।
- व्यंग्य में आलोचना के बावजूद अपने समाज से गहरा लगाव होना चाहिए।

चुटकुले---

समाज में अपने आपकी आलोचना करने रहने की एक अंदरूनी बाध्यता होती है और इसीके तहत समाज में चुटकुलों की रचना होती रहती है। उसका आविष्कारकर्ता कौन है, यह कोई नहीं जानता। वे पुरे समाज की रचना और इतिहास की धरोहर होते हैं, भलेही उनका दायरा कितना ही छोटा क्यों न हो-----
मुद्राराक्षस

- हिन्दी साहित्य के पास अच्छे व्यंग्यकारों की कमी नहीं है। अमृतलाल नागर, हरिशंकर परसाई, श्रीलाल शुक्ल, शरद् जोड़ी, रविंद्रनाथ त्यागी आदि।

व्यंग्य-चित्र----

जिस तरह हास्य-व्यंग भरी कहानियाँ साहित्य की एक विधा है उसी तरह व्यंग्यचित्रों की भी अपनी एक दुनिया है। छोटे-बड़े नियतकालिक, समाचार पत्र इनके तो, व्यंग्यचित्र एक अति आवश्यक अंग ही बन गये हैं। हम, या तो समाचार पत्र खोलते ही या फिर पढ़ने के बाद उसे अलग करने से पहले उसमें अंतर्भूत व्यंग्यचित्रों पर एक नज़र अवश्य डालते हैं और हलके से मुस्करा देते हैं। या कभी जोरका ठहाका लगाने को भी दिल करता है। लम्बे गद्य का एक परिच्छेद जो बात कहने में जितना सफल नहीं होता उतना, एक व्यंग्यचित्र कह डालता है। किताबों के रूप में भी व्यंग्यचित्रों का प्रकाशन होता ही रहता है और कुछ व्यंग्यचित्रोंकार तो बड़े साहित्यकारों इतने ही विख्यात हुए हैं।

जानेमाने कार्टूनिस्ट आर.के. लक्ष्मण से साक्षात्कार के कुछ अंश—

- पहले तो यह बतला दूँ कि कार्टून यह कन्सैप्ट पश्चिम का है, हमारे देश का नहीं।
- कार्टून मेरे लिए सामाजिक असंगतियों पर व्यंग्य करने का एक माध्यम है।
- किसी के पर्सनल अफेयर्स को लेकर कार्टून बनाना गलत और अनैतिक बात है।
- मैं दूसरों के कार्टूनों पर अपना मत देना नहीं चाहता। मेरी दृष्टि में यह नैतिक नहीं है।
- कार्टून मुख्यतः एक व्यंग्यचित्र होता है, शब्दचित्र नहीं। इसलिए उसमें शब्द प्रयोग से अधिक चित्रांकन का महत्व है।

एक काल्पनिक इंटरव्यू के अंश आर.के.लक्ष्मण के साथ—

- सबसे अधिक, राजनीतिज्ञों ने हमारा काम बहुत आसान कर रखा है। इनका बोलना, इनकी हरकतें, सब ऐसी होती हैं, जैसे हर समय वे कार्टूनिस्टों के लिए मॉडलिंग का काम कर रहे हो।

मृत्यु गीत

ऊपर हमने हास्य-व्यंग्य से परिपूर्ण प्रति साहित्य/कहानियों के संदर्भ में समीक्षकों की टिप्पणियाँ देखीं लेकिन मनुष्य का जीवन केवल हास्य-व्यंग्य नहीं है। उसे जीवन में कितनी ही विपरीत परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। ऐसी स्थितियों में वह कभी उदास हो जाता है। फिर उठकर जीवन से जुड़ने लगता है। लेकिन कभी-कभी वह उदासी की चरम अवस्था तक भी पहुँच जाता है। जहाँ उसे जीवन को आगे ले जाना या तो निरर्थक या फिर असंभव लगता है। वह जीने से इन्कार कर देता है। आत्मघात कर लेता है। कभी उसे पता होता है कि वह दुनिया की जिन शक्तियों से टकराने जा रहा है, उस टकराने का परिणाम प्रत्यक्ष मृत्यु के सिवाय और कुछ नहीं हो सकता। फिर भी वह उन शक्तियों के सामने झुकने से इन्कार कर देता है। किसी आदर्श के लिए प्रत्यक्ष मृत्यु को गले लगाने तैयार रहता है।

और साहित्यिक तो अति संवेदनशील व्यक्ति होते हैं। ऐसी स्थिति में प्रत्यक्ष मृत्यु का वरण करते समय भी उनका अपना एक विचार होता है, दर्शन होता है।

उस दरम्यान जुनून भले ही वक्ती हो, जिसमें कुछ भी हो सकता है, मनुष्य कुछ भी कर सकता है। लेकिन महान लेखकों की कृतियों में कुछ भी वक्ती नहीं होता। इसलिए वे मरने से इन्कार कर देती हैं।...अमर बनीं रहतीं हैं।

एक उदास किताब—

ऐसा माना जाता है कि 'पैपिरस' नामक पौधे से, मिश्र में, प्राचीन काल में कागज बनाया जाता था। उसपर लिखे आलेख प्राप्त हुए हैं। वे अधिकतर धार्मिक स्वभाव के हैं। गद्य में और पद्य में भी हैं। उनमें एक छोटी सी कविता मिलती है। इसका शीर्षक है 'आदमी, जो जीवन से ऊब गया'। यह एक आदमी की आत्मघात से पूर्व अपने आपसे बातचित है—

आज मौत मेरे सामने प्रत्यक्ष है,

ऐसे, जैसे लम्बे अरसे का रोगी, निरोग होता है

और जैसे कोई बंदीखाने से छुटकर बाहर की ओर जाता है

आज मौत मेरे सामने प्रत्यक्ष है

जैसे कमल के फूलों से एक महक उठती है

और जैसे मदमस्त धरती के किनारे कोई बैठा है

आज मौत मेरे सामने प्रत्यक्ष है

आदमी जैसे अपने घर के लिए बेताब

और जिसने, बरसों पर बरस, एक कैद में गुजारे हैं।

जिंदगी का मोह, मनुष्य की बुनियादी चाह है। पर लगता है जिंदगी की ऊब भी ऐतिहासिक है। प्राचीन समय में, आत्महत्या की कल्पना का छोर पकड़ना संभव नहीं। पर यह कविता एक ऐतिहासिक संदर्भ है, जिससे मन की अति उदास स्थिति में मरनेवाले लोगों की आदि कविता कहा जा सकता है। ---अमृता प्रितम

लेखिका ऐसे कुछ साहित्यिकों से परिचित करा रही है, जिन्होंने जिंदगी से उपराम होकर इस दुनिया में जीने से इन्कार कर दिया। इन्हें जीवन से नफरत नहीं थी। लेकिन इनके लिए जीवन का अर्थ केवल जिन्दा रहना नहीं था। जीवन का अर्थ था कुछ मूल्य। इन मूल्यों की पैरवी उन्हें मृत्यु तक पहुँचा सकती है, यह वे जानते थे। फिर भी वे पीछे नहीं हटे। ऐसे लेखक जो या तो आक्रांताओं और सत्ताओं की गोलियों का शिकार बने या जलावतन किये गये या जिन्होंने स्वयं जलावतनी स्वीकार कर ली—

- निकोला वापत्सारोव(बंगारिया) : 23 जुलाई 1942 के दिन फासिस्ट सरकार ने इस कवि को गोली मार दी। इस कवि ने कहा था, “कल को यह जिन्दगी सयानी होगी, यह विश्वास मेरे सिने में

बैठा हुआ है और इस विश्वास को लगनेवाली गोली कहीं नहीं है।”

- अलेक्झांडर सर्गिविच पुश्किन : रूस-1799-1837 :

पुश्किन को आधुनिक रूसी साहित्य का प्रवर्तक माना जाता है।

उसकी माँ अब्राम हानिबाल की पोती थी। अब्राम को गुलाम के तौर पर खरीदा गया था। बाद में वह पीटर महान का साथी बना।

मई 1820 में पुश्किन को उसकी राजनीतिक कविताओं के कारण जलावतन कर दिया गया, मोल्दाविया के दक्षिण की ओर। इन दिनों की पुश्किन की चिट्ठियां बड़ी उदास हैं। बाद में जब ये पत्र प्रकाशित हुए तो उन्हें रूसी रचनात्मक लेखन का श्रेष्ठ नमूना माना गया।

बाद में पुश्किन की घरेलु जिन्दगी और दरबार की दफ्तरी जिंदगी दोनों ही उसके लिए बड़ी कठिन हो गयीं। दरबारी घरे में शक=सुबह बढ़ते गये। उसने इस्तिफा देने की अनुमति मांगी जो उसे नहीं मिली। आखिर 08-02-1937 के दिन उसे जबरदस्ती एक द्वंद युद्ध में फंसा दिया गया। यह उसके, प्रभाववाले शत्रुओं की चाल थी। इस द्वंद युद्ध में जख्मी हुए पुश्किन की दो दिन बाद यानी 10 फरवरी को मृत्यु हो गयी।

यह व्यक्ति की प्रतिभा और दूसरों की ईर्ष्या का बलि था।

- शांहोर पैतोफी : महान हंगेरियन कवि : हंगेरियन राष्ट्रगीत, ‘समुंदर जाग उठा ‘ का रचयिता

महान रचनाएँ: कविताएँ- झांडी कांपती है, कवि का स्वप्न, पेड़ों को छुती उदास पतझड़ की हवा, एक खयाल मुझे परेशान करता है, गाँव का हतौडा, नायक जॉन। अंताल वसादी के नाम पत्र.....आदि। जल्लाद की रस्सी (उपन्यास)। 31-07-1949 के दिन सरकारी फौज से लड़ते हुए आयु के 26 वे वर्ष में मारा गया। उसने ‘ दस का दल ‘ नाम का एक दल बनाया था।

- खरिस्तो बोतेफ(1848-1876) : बल्गारिया ; साम्यवादी : इसकी सारी कविताएँ एक क्रांति हैं। यही कारण है कि तमाम मुल्कों के संघर्ष के दौरान उन्हें पूजा-मंत्रों की तरह गाया गया।

फसल काटने के दिन हैं, गाओं गुलाम लड़कियों

दुखों के गीत गाओं, दिन चढ़ रहा है,

गुलामों के मुल्क पर सूरज सड़ रहा है,

और एक योद्धा को आज और मरना है।

ब्रात्सा देलाग की पहाड़ियों में यह व्यक्ति अपने साथियों के साथ लड़ा था। भयानक लड़ाई के बाद 02-06-1876 के दिन वह शहीद हो गया।

- आसिप मेंदल्सॉम(1891-1938) : पोलंड में पैदा हुआ यह रूसी कवि था। स्तालिन पर हास्य-व्यंग्य भरी कविताएँ लिखने के कारण उसे यातना-शिविर में डाल दिया गया था जहां उसकी मृत्यु हो गयी।
- गियोमिलवे(1895-1925) : बल्गेरियाई कवि : इनकी ' सितम्बर ' लम्बी कविता ने फासिज्म के चेहरे को बेनकाब किया था। इसलिए फॅसिस्ट पुलिस ने इनका गला घोटकर इन्हें सोफिया के पास एक खाई में फेंक दिया था।
- गार्सिया लोर्का फेड्रिको (1898-1936) : स्पेनी कवि और नाटककार : फॅसिस्टों की गोलियों का शिकार।
- बैंजामिन फंदोइयानू(1898-1944) रोमानियाई कवि: फ्रांसीसी सेना के साथ लड़ते हुए यह कवि नात्सियों के हाथ पड़ गया और इसे 1944 में गॅस चेंबर में मरना पड़ा।
- ज्यूलियस फ्यूचिक: चेकोस्लोव्हेकिया : 1903-1943) : आठ सितंबर 1943 के दिन नात्सियों द्वारा उसे गोलियों से भून डाला गया।
- यी-युक-सा (1905-1944) : यह कोरियाई कवि बिजिंग विश्व विद्यालय में समाजशास्त्र पढ़ाया करता था। वहीं पकड़ा गया और जपानी सैनिक पुलिस ने इसे यातनाएं दे-देकर मार डाला।
- तातार कवि मूसा जलील(1906-1944) : साम्यवादी : 1944 में ड्रेस्डेन की अदालत ने इसे मृत्युदंड सुनाया और बाद में इसे कत्ल कर दिया गया। इससे पहले कई यातना शिविरों से गुजरा। इसकी 115 कविताएँ उपलब्ध हैं।
- रादनोती मिकलोश : 1909-1944 : हंगेरी : यातना शिविरों से गुजरने के बाद नात्सियों की गोलियों का शिकार।

- निकोला वापत्सरोफ: 1909-1942) बुल्गारिया : 23-07-1942 को नात्सी ट्रिब्यूनल के आदेश पर उसे गोलियों से मृत्युदंड दिया गया-

बस जो हमारे बाद आये उनसे इतना ही कह देना
कि एक जिन्दगी, एक कल्पना, एक बूत हम गढते रहे
और रोशनी के वास्ते हम अंधकार में लड़ते रहे।

हाराकिरी की रियर्सल-

सुकियो मिशिमा(1925-1970)

हाराकिरी करने से पहले उसकी अंतिम पंक्ति, “मानवीय जीवन की एक सीमा है। लेकिन मैं सदा के लिए जीना चाहता हूँ।”

मिशिमा के जीवनीकार हेनरी स्कॉट स्टोक ने लिखा है, “1960 में मिशिमा ने एक कहानी लिखी ‘ देशभक्ति ’ जिसमें उसने हाराकिरी को अद्भुत मौत कहा। फिर पांच साल बाद एक फिल्म बनायी जिसमें नायक की भूमिका उसने स्वयं निबाही और उसमें उसने आत्मघात किया। फिर 1968 में एक उपन्यास लिखा, जिसका अतिवादी नायक हाराकिरी करता है। फिर एक साल बाद एक और फिल्म में काम किया जिसमें उसका पात्र छुरे से अपना पेट फाड़ डालता है। इस प्रकार मिशिमा लम्बे समय से अपने आत्मघात की रिहर्सलर कर रहा था।”

- आतिला योसफ(1905-1937) : हंगेरी : आखरी दिनों में लिखी कविता का अंश

“ दूध के दांतों से तुने चट्टानों को तोड़ना चाहा, मूर्ख।
सपने देखने के लिए क्या कोई रात ही काफी नहीं थी।।”

- व्लादिमीर मायकोवस्की :1893-1930 : भविष्यवाद, रूस की क्रांतिकारी कविता की वह लहर थी जो 1910 में बनी। इसमें मायकोवस्की का योगदान था। रूस के भविष्यवादी लेखक प्राचीन परंपराओं को आमूल उखाड़कर नई चेतना पैदा करना चाहते थे।

मायकोवस्की की रचनाएँ : पाजामे में बादल(1915), आदर्श(1918), युद्ध और शांति(1917) सभी कविताएँ। 1918 में ‘ रहस्यमय बूफो ‘ काव्य-नाटक लिखा जिसमें क्रांति की जीत दिखाई गयी। बाद में व्यंग्य-नाटक खटमल(1929), स्नानागार(1930) ।

लेकिन काल्पनिक स्वतंत्रता के अंमल में आये रूप से यह कवि निराश होता गया और 1930 में इसने आत्मघात कर लिया।

• मानवता—

जैक लंडन(1875-1916) : अमेरिकन : इसकी पैदाइश, इसकी माँ सड़कों पर आवास रूप में रहते हुए हुई। पति / प्रेमी को यह बच्चा नहीं चाहिए था।

जैक लण्डन ने एक समुद्री सफ़र के दौरान लिखा उपन्यास उसके दो साल बाद प्रकाशित हुआ-मार्टिन ऐडिन। इसे जैक का सर्वोत्तम उपन्यास माना जाता है। 'आयरन हील' जैक की वह पुस्तक थी, जिसके कारण अमेरिकी पूंजीवादी प्रेस उसके विरुद्ध हो गया। जब यह पुस्तक छपी तो उसे दुनिया में क्रांति का महान क्लासिक माना गया। 31 वर्ष की आयु तक उसकी 20 पुस्तकें छप चुकी थीं।

उसने एक पहाड़ी पर 23 कमरोंवाला घर बनाया। उसके आधे कमरे दुनिया के कलाकारों की मेहनतवाजी के लिए खुले थे। जैक जैसा खुले दिल का लेखक शायद ही कोई हुआ हो। काम मांगने आनेवाला कोई मजदूर उसके दरवाजे से खाली हाथ नहीं जाता था। न कोई भूखा रहता था।

जब उसके घर का निर्माण पूरा हुआ और वह उसमें रहने जानेवाला था उसी रात घर को आग लग गयी। कैसे लगी कोई नहीं जानता। ऐसा माना जाता है कि यह काम किसी द्वेषी व्यक्ति का होना चाहिए। लेकिन उस रात जैक के शब्द थे, "मैं वह आदमी ही होना चाहूंगा, जिसका घर जलाया गया, वह नहीं जिसने जलाया।"

जैक का सपना जल गया। इन्सानियत में विश्वास जल गया। जैक ने दो बार शादी की लेकिन दोनों असफल रहीं। और जिस रात उसने जहर खा लिया, उसकी आंखों में ना जाने किस सपने की लाश थी?

“ उपरामता वक्ती होती है और उसके खास पलों में कुछ भी हो सकता है लेकिन अच्छे कवियों/लेखकों की कृतियों में कुछ भी वक्ती नहीं होता, इसलिए उनकी रचनाओं ने मरने से इन्कार कर दिया।”....अमृता प्रीतम

(संयोग से आज ही अमृता जी का 19 वाँ स्मृति दिन है। उन्हें विनम्र श्रद्धांजलि के साथ-31-10-2024)
मृत्यु गुरुदेव रविन्द्रनाथ टॅगोर की दृष्टि में

“ गुरुदेव की माँ उनके बचपन में ही मर गयी थीं। पत्नी युवावस्था में चल बसी। पत्नी की मृत्यु के कुछ वर्ष बाद उनके किशोर पुत्र तथा दो विवाहित पुत्रियों ने भी अपनी जीवन लीला समाप्त कर ली। यद्यपि उन्हें अपने पुत्र-पुत्रियों से बड़ा लगाव था किन्तु बड़ी पुत्री की मृत्यु के बाद उनका शोक बाह्य रूप में देखा नहीं जा सका। वे किसी रूप में भी विचलित नहीं लगे। पुत्री के कमरे से नीचे उतरते हुए उन्होंने अपने मित्रों से शांति से कहा, 'बेला चली गयी'। और कुछ घंटे बाद एक पूर्व नियोजित सभा में भाषण भी दिया।

शोक के बीच भी वे जीवन के उल्लास और सौंदर्य के बारे में कविता रच सकते थे। जब उनकी एकमात्र पौत्री की जर्मनी में मृत्यु हो गयी तो उन्होंने स्वयं पर न तो दया दिखाई न रोये-धोये। हां पुत्रवधु की मृत्यु ने उन्हें दुःखी अवश्य बनाया लेकिन वे दुःख के सागर में डूबे नहीं बावजूद इसके कि वे उसे बेहद चाहते थे।

प्रकृति में ऐसा कुछ भी नहीं है जो कर्णकटु अथवा विद्वंसात्मक हो। जहाँ भी अंत आता है, प्रारंभ भी होता है। जीवन मृत्यु में ही निहित है।....मनुष्य का सबसे बड़ा भय होता है विनष्ट होने का लेकिन गुरुदेव ने उसे चुनौती देते हुए कहा कि, “मैं घोषणा करता हूँ कि मैं मृत्यु से श्रेष्ठ हूँ। मृत्यु का मेरे लिए कोई अस्तित्व नहीं है।”

गुरुदेव की हार्दिक इच्छा थी कि अंत भी उतना ही गरीमामय तथा अचेतन हो जितना कि जन्म।

.....प्रस्तुति : अलका सिंह

मराठी के मूर्धन्य लेखक, गांधीवादी, स्वातंत्र्य सैनिक पांडुरंग सदाशिव साने उर्फ साने गुरुजी ने मृत्यु के विषय में अपने विचार ‘ मृत्यु चे काव्य ’ इस लेख में व्यक्त किये हैं। उस लेख से कुछ अनुवादित उद्धरण—

- भारतीय संस्कृति में स्थान-स्थान पर मृत्यु संबंधी जो विचार व्यक्त किये हैं, वे कितने मधुर हैं, कितने भव्य हैं। भारतीय संस्कृति में मृत्यु की भीषणता नहीं है। जीवन और मृत्यु दोनों ही अत्यंत मंगल भाव हैं।
- जीवन में डूबने से जीवन प्राप्त होता है। जिस प्रकार व्यापारी हजारों धंधे करता है, लेकिन अंत में इस सरल सी बात को ही ध्यान में रखता है कि इतना लाभ हुआ या इतनी हानी हुई। यही हाल जीवन का है। मरण मानो जीवन के व्यापार में लाभ-हानी देखने का क्षण है। साठ-सत्तर वर्षों से दुकान चल रही है। उसके हिसाब-किताब देखने का क्षण ही मृत्यु है। उस क्षण तुम्हारे काम की कीमत आंकी जायेगी। जो मरते समय रोयेगा उसका जीवन रुदनपूर्ण ही समझना चाहिए। जो मरते समय हंसे उसका जीवन कृतार्थ समझो।
- यदि मृत्यु न होती तो संसार कुरूप दिखाई देता। मृत्यु के कारण ही संसार में सुंदरता है। मृत्यु के कारण ही संसार में प्रेम है। यदि हम अमर होते तो एक-दूसरे की बात भी नहीं पुछते। हम सब पत्थरों जैसे दूर-दूर पड़े रहते।....मृत्यु के कारण ही मनुष्य अपना व्यवहार मधुर बनाता है।
- मृत्यु उपकार करनेवाली है। जो काम जीवन से नहीं होता, वह कभी-कभी मृत्यु संभव बनाता है। संभाजी महाराज के जीवन काल में मराठों में फूट पड़ गयी लेकिन उनके महान मरण से मराठों में एकता स्थापित हो गयी। वह मृत्यु ही मानो अमृत सिद्ध हो गयी। ईसा के जीवन में जो नहीं हुआ, वह उनके सूली पर जाने से हो गया। मृत्यु में अत्यंत जीवन है।....संसार में इस प्रकार के कितने ही महाप्रस्थान हुए हैं।
- अपनी सारी आसक्ति, अपने शरीर की, मन की, इंद्रियों की, स्वार्थी वासनाओं को भूलना ही मानो मृत्यु है। इस मृत्यु का हम इस जीवन में भी अनुभव प्राप्त कर सकते हैं।
- जीवन से नफरत नहीं।

- जीवन के एक पड़ाव पर आदर्श के पुजारी साने गुरुजी ने निंद की अधिक गोलियों का सेवन कर अपनी जीवन लीला समाप्त कर ली थी।

सारिका द्वारा प्रातिनिधिक कहानियों का चयन---

- 1) मुक्ति के लिए संघर्ष : अर्नेस्ट हेमिंग्वे : हेमिंग्वे की जीवनी का एक अंश

हेमिंग्वे की आत्महत्या से पहले वे तथा उनका पूरा परिवार, जिन मानसिक तनावों से गुजर रहा था उसकी झांकी यहाँ हमें मिलती है।

- 2) आग : यूकियो मिशिमा : एक सच्ची घटना पर आधारित :

जीवन में स्नेह प्राप्ति से वंचित एक युवक विप्लवकारी बन जाता है और अंत में वह अपनी मानसिक वेदना और स्वयं को नष्ट करने के लिए पूरे समाज की धरोहर जो मंदिर था उसे आग लगा देता है।

- 3) वर्जिनिया वोलफ की डायरी के अंतिम कुछ पृष्ठ :

वर्जिनिया ने 1915 से डायरी लिखना शुरू कर दिया था और वे 1941 में अपनी आत्महत्या के चार दिन पहले तक लिखती रही।

- 4) ज्यां पॉल सार्त्र की आत्मकथा “ द वर्ड्स ” के कुछ अंश

इसमें उन्होंने मौत पर, दर्शन तथा संवेदना दोनों दृष्टि से अपने विचार व्यक्त किये हैं। (उन्होंने आत्महत्या नहीं की)

- 5) केसा और मोरिटा : अकुतागावा रयूनोसुके की चर्चित कहानी (जन्म-01-03-1892, आत्महत्या 24-07-1927)

उनकी आत्महत्या का सही कारण कोई नहीं जानता। शायद नितांत एकाकीपण की ऊब हो सकता है।

- 6) अनुभव : नंदनार

मलयालम के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार नंदनार के अंतिम उपन्यास ‘ अनुबावंगल ’ का पहला अध्याय उनकी आत्महत्या से पूर्व की मनःस्थिति को व्यक्त करता है। उनका वास्तविक नाम पी.सी.गोपालन था। उनका जन्म 05-07-1926 को उगादीपुरम में हुआ था। 1942 में वे सेना में भर्ती हो गये और 22 साल बाद वहाँ से सेवानिवृत्त। उन्होंने 20 से अधिक किताबें लिखीं। मई 1974 में उनकी आत्महत्या ने मलयालम साहित्य जगत में हलचल मचा दी थी।

- 7) शांति की वेदना : स्टीफेन ज्विग

स्टीफेन ज्विग और उनकी पत्नी ने 23-02-1942 को अपने ही हाथों अपने जीवन का अन्त पेट्रोपोलिस(ब्राज़ील) में कर लिया था। उनके अंतिम संदेश के कुछ अंश--

“ मैं जर्मन भाषा में सौचता था, लिखता था। पर मेरे खयाल, मेरे अहसास उन देशों से बंधे थे जो संसार के लिए स्वतंत्रता और शांति चाहते थे। इस युद्ध के बाद सब नये सिरे से शुरू होगा।...जिसकी मुझे सबसे अधिक चाह थी वहीं चीज दूषित हो गयी ।....मैंने मन से, आत्मा से, पूरी जिंदगी मानवीय एकता के लिए कड़ी मेहनत की थी। और इस घड़ी हमें एकता की ही जरूरत थी।

शायद अब हम ऑस्ट्रियावासियों को जर्मनवासी माना जायेगा। इंग्लैंड में अब हमपर भी वही बंधन लागू हो जाएंगे।...अब मैं इस देश में एक अजनबी नहीं था, एक अजनबी दुश्मन था। इस स्थिति से मेरे धड़कते दिल का कोई संबंध नहीं था। इंग्लैंड ने जर्मनी पर धावा बोल दिया था।

पर जीवन के साठ वर्ष पूरे करने के बाद नये सिरे से एक नये जीवन की स्थापना करने के लिए असाधारण शक्ति की जरूरत होती है। जो भी शक्ति मुझमें थी वह निर्वासित जीवन जीने में नष्ट हो चुकी है। मेरे विचार में अब मुझे मेरे जीवन का अन्त कर लेना चाहिए।.....

एक नया संसार बनाने के पहले कितने नरक, कितने पीड़ा स्थानों को लांघना पड़ता है।”

स्त्री लेखिकाएँ जिन्होंने आत्महत्याएं की—

- 1) वर्जिनिया वुल्फ : अंग्रेजी लेखिका : पानी में डूबकर आत्महत्या की। (25-01-1882 to 1941)
- 2) सिल्व्हिया प्लॅथ अमेरिकी कवियित्री, लेखिका : 27-10-1932 to 11-02-1963) 30 की आयु में खुद को जलाकर (by placing her head in the oven) आत्महत्या की। डिप्रेशन की शिकार।
- 3) इतिहासकार आयरिश चॅंग
- 4) चारलोटी परकिन्स गिलमन
- 5) कादंबरी लेखिका सनमाओ
- 6) कवियित्री एलिस कोवेन
- 7) डोरोथी डहनाक : 08-07-2005 को ड्रग्स का ओव्हरडोज लेकर न्यूयॉर्क में।
- 8) ड्रेक साथर : सिर में गनशॉट से 2004 में आयु के 44 वे वर्ष में आत्महत्या की।
- 9) डोरोथी पारकर (ये वास्तव में आत्महत्या से नहीं मरी लेकिन उन्होंने कई बार इसका प्रयास किया था।

आत्महत्या करनेवाले लेखकों की संख्या दर्जनों में है।

प्रकरण ११

प्रति नायक की कहानियाँ

हिन्दी साहित्य के दो रूप अगर लिये तो एक होगा काव्य और दूसरा होगा कथा साहित्य। काव्य में नायक की जो परिकल्पना की गयी है वह इस प्रकार हैं- नायक के चार भेद किये गये हैं-

- 1) धिरोदात्त : इस वर्ग में ' राम ' जैसे नायक आते हैं।
- 2) धीर ललित : जैसे दुष्यंत और पुरुरवा।
- 3) धीर प्रशान्त : जैसे युधिष्ठिर और विदुर ।
- 4) धिरोद्धत : रावण और कंस।

लेकिन ये सभी राजपुरुष थे। इनके हाथों में राजशक्ति या अथाह शक्ति थी। लेकिन उपरोक्त वर्गीकरण का आधार उनके चरित्रों के स्वरूप को बनाया गया है।

हिन्दी कथा-साहित्य का आरंभ भी राजपुरुषों से ही हुआ है। लेकिन बदलती हुई राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों और परिवेश के कारण केवल ऐसे चरित्र-नायक हिन्दी कथा साहित्य के पाठकों को ही नहीं तो रचनाकारों को भी स्वीकार्य नहीं हुए। काव्य की तुलना में कथा साहित्य का संबंध आम आदमी से अधिक था। यही कारण रहा कि ऐसे चरित्रों या नायकों की परंपरा गहमरी, गोस्वामी, देवकीनन्दन खत्री, दुर्गाप्रसाद खत्री इन लेखकों के आगे नहीं बढ़ सकी। सामाजिक न्याय की मांग के साथ सामाजिक परिवर्तन के दौर आये। शुरू में चरित्र में होनेवाला परिवर्तन धीमी गति से हुआ। वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में नैतिक परंपरा अपने में समेटे रहा। लेकिन समय सापेक्ष और समाज सापेक्ष नये नायक की अवधारणा के समान्तर कथा लेखन तथा समान्तर कथा नायक के चरित्र परिवर्तन का सिलसिला भी हिन्दी साहित्य में शुरू हो गया था। यही प्रक्रिया आज के नायक की जन्मदात्री कही जा सकती है।

- मुन्शी प्रेमचन्द ने परंपरागत नायक की अवधारणा को खंडित करने का सिलसिला शुरू किया था, वह आगे बढ़ता रहा।
- समीक्षकों के अनुसार हर पांच या दस साल के बाद नायक को पुराना करार दिया जाता है और नयी प्रतिमा का गठन शुरू हो जाता है।
- नयी कहानियों के दौर में जो नायक की प्रतिमा थी वह अ-कथा के दौर में टूट गयी और अकथा की नायक विहिनता को आगे के दौर ने बदल दिया। बदलते हुए जीवन मूल्यों, नयी सामाजिक मान्यताओं और परिस्थितियों ने प्रतिनायक, अनायक, एण्टी नायक को कहानियों में ला खड़ा किया। ये प्रतिनायक कोई राजपुरुष नहीं होते। मध्यमवर्ग के चरित्र होते हैं, जिनका अपना कोई चेहरा नहीं होता लेकिन अपनी पहचान बनाने की लालसा उनमें अवश्य होती है।

- वैसे साहित्य के इतिहास के क्रम में माना जाता है कि ' प्रतिनायक ' संकल्पना का प्रादुर्भाव पश्चिम से और खास करके यूनान से हुआ। लेकिन हमारी लोककथाओं में भी ऐसे चरित्रों की कमी नहीं है।
- ऐसे पात्र कुछ सनकी होते हैं। कहानी में महिला पात्र डॉमिनेटिंग होते हैं। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद पनपी निराशा से ग्रस्त होते हैं।

नवयथार्थवादी आंदोलन

- नवयथार्थवाद की शुरुआत कला और साहित्य से हुई और फिल्मों तक पहुँची।
- दरअसल नवयथार्थवाद फ्रांस में 1800 ई.सन के आसपास शुरू आंदोलन, कला आंदोलन था। इसके माध्यम से रोमॅण्टिक कल्पनाओं को नकारते हुए समाज की वास्तविकता का चित्रण किया गया। इस कला आंदोलन के जरिए वास्तविक घटनाओं और जनसाधारण के जीवन को प्रदर्शित किया गया। नवयथार्थवादी कला आंदोलन को स्थापित करने में गुस्ताव कोर्टबेट, एडवर्ड मॅंट, और जीन फ्रॅंकेस मिलेट जैसे चित्रकारों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।
- साहित्य और साहित्यकारों ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया जिनमें नोबेल पुरस्कार विजेता कवि साल्वातोर काज़िमोदो और कथा लेखक अल्बर्टो मोराविया, इग्नाजियो सिलोन, कार्लो लेवी, वास्को प्रटोलिनी, कार्लो बर्नारी, सेसारी पावेसे, एलियो विटोरिनी, कार्लो कैसेला, इतने सारे कथालेखक थे।
- फिर यह आंदोलन फिल्मों तक पहुँचा। इतालवी नवयथार्थवादी फिल्मों विशेष प्रसिद्ध हुईं। इसने गरिबों और श्रमिकों का जीवन पर्दे पर रखा। इटली में यह आंदोलन 1920 में ही पनपने लगा था। लेकिन इटली के फासीवाद ने इसे दो दशकों तक दबाये रखा। 1943 में आर्यी विस्कोटी की फिल्म ' ऑबसेशन ' ने इटली में नवयथार्थवादी फिल्मी आंदोलन की शुरुआत की। रॉबर्ट रोजेलिनी की फिल्म ' रोम ओपन सीटी ' (1945) से इटालियन नवयथार्थवादी सिनेमा की विधिवत शुरुआत हुई। यह इटालियन नवयथार्थवाद की प्रतिनिधि फिल्म ही नहीं बल्कि युद्ध के बाद के इटली की तस्वीर दुनिया के सामने रखनेवाली पहली फिल्म भी है।
- नवयथार्थवादी सिनेमा आंदोलन ने कहीं न कहीं मार्क्सवादी विचारधारा को सिनेमा के माध्यम से दुनिया के सामने रखा। वर्गसंघर्ष और बुर्जुआ प्रतिरोध को फिल्मों के केंद्र में रखा गया। इन फिल्मों का उद्देश्य किसी नये यटोपिया का निर्माण नहीं तो समाज के नग्न सत्य को उद्घृत करना था। इन फिल्मों ने युद्ध के बाद के इटली की और लोकतंत्र के संकेतों की ओर इशारा किया। इसने दुनिया का ध्यान ही अपनी ओर नहीं खींचा तो समीक्षकों की वाहवाही भी बटोरी। लेकिन फिर भी इस आंदोलन का अस्तित्व 1945 और 1950 के बीच ही समेटा हुआ मिलेगा। आगे हॉलीवुड के मनोरंजनपूर्ण फिल्मों ने इस आंदोलन का बाज़ार अवरूद्ध कर दिया।
- जहाँ तक भारत का संबंध है, सत्यजित रे की फिल्म ' पाथेर पांचाली ' (1955) भारत में यथार्थवादी और समानांतर फिल्म आंदोलन की अग्रणी फिल्म मानी जाती है। वास्तव में इससे पहले 1925 में आर्यी बाबुराव पेंटर की ' सावकारी पाश ' को भारत की पहली यथार्थवादी फिल्म मानी जानी चाहिए।

भलेही यथार्थवादी फिल्में आम जनता में उतनी लोकप्रिय न हुई हो फिर भी ज्ञान मुखर्जी की 'किस्मत(1943)', चेतन आनंद की ' नीचा नगर(1946)', ख्वाजा अहमद अब्बास की ' धरती के लाल(1946)' इन्हें यथार्थवादी फिल्मों के वर्ग में ही रखना होगा। इन सभी फिल्मों की कहानियाँ इटालियन नवयथार्थवाद के प्रभाव के पूर्व की कहानियाँ थीं। लेकिन आगे इटालियन नवयथार्थवाद ने सत्यजित रे, राजकपूर, महबूब खान जैसे निर्देशकों को जबरदस्त रूप से प्रभावित किया और भारतीय नवयथार्थवाद और समानान्तर सिनेमा की नींव रखने में अपना योगदान दिया।

प्रकरण १२

युद्ध कथाएँ

‘ युद्धस्य कथा रम्याः ’ ऐसा कहा जाता है। लेकिन प्रत्यक्ष में युद्ध के कारण पूरी मानवता जिस त्रासदी से गुजरती है, उसके बाद उपरोक्त बात कहने की इच्छा होना कठिन है।

दुनिया में आजतक जितने युद्ध हुए उसमें दो पक्ष होते हैं। एक, किसी न किसी रूप में दूसरे से कुछ छिनने की इच्छा रखनेवाला, दूसरे पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने की लालसा पालनेवाला, दूसरे के शोषण के लिए लालयित होता है। तो दूसरा पक्ष वह होता है, जो पहले का भक्ष होने जा रहा है। अर्थात् एक पक्ष दुर्भावना से युक्त तो दूसरा इस दुर्भावना से अपने आप को बचाने के लिए प्रयत्नशील। ऐसे में दुर्भावना वाले पक्ष की कृतियों में रम्यता ढूँढने का सवाल ही पैदा नहीं होता। हां, अपनी सुरक्षा, आजादी के लिए संघर्ष करनेवाले पक्ष में जो योद्धा अपना सबकुछ न्योछावर करने के लिए तैयार रहते हैं, उनके कारनामों को सुनने की, उनसे प्रेरणा लेने की इच्छा होना स्वाभाविक है।

- हर युद्ध अपने पीछे एक नये और लम्बे युद्ध का सिलसिला छोड़ जाता है। युद्ध के बाद का यह युद्ध अधिक भयावह और तकलीफ देनेवाला होता है, क्योंकि उससे आदमी की नस्ल और पीढ़ियां प्रभावित होती हैं। मूल्य टूट जाते हैं। परंपराएं और मान्यताएं बिखर जाती हैं। संस्कृतियां अपना स्वरूप बदल लेती हैं। यह स्थिति अकाल और महामारी जैसी होती है। वह मानवीय त्रासदी का दौर होता है।

युद्ध सीमाओं पर तो लड़े जाते ही हैं, लेकिन सिर्फ वहीं नहीं लड़े जाते। इन युद्धों को, देश की सीमाओं के भीतर, अपनी-अपनी जगहों पर निहत्थे नागरिक भी लड़ते हैं और उनका युद्ध काफी दुःखद होता है। युद्ध का असर समुची चेतना पर पड़ता है। सारा विश्व किसी न किसी रूप में उसके साथ जुड़ जाता है।

कुटनीति पहले युद्ध का वातावरण तैयार करती है और देशों को या तो शीतयुद्ध में या फिर प्रत्यक्ष शक्ति परिक्षण में फंसा देती है। कभी-कभी किसी एक व्यक्ति या पक्ष या समाज या देश को युद्ध के लिए मजबूर भी होना पड़ता है। समझदारी से युद्ध टाले भी जा सकते हैं।

युद्ध एक व्यापक और दुरगामी दुष्प्रभावों वाला विषय है। कथाकार जब युद्ध संबंधी किसी कहानी या उपन्यास की रचना करता है तो निश्चित रूप से वह रचना भी दुरगामी दुष्प्रभावों की चिंता से मुक्त नहीं हो सकती। और इसी चिंता का प्रतिपादन इस अंक की कहानियों में व्यक्त हुआ है। अपनी इस बात के साथ यह अंक, उन महान पुरुषों की स्मृतियों को समर्पित किया गया है जो युद्ध के विरोध में तथा शांति की स्थापना के लिए जीवन भर लड़ते रहे।

संपादकीय, सारिका : युद्ध कथा विशेषांक : अंक 389 : सितम्बर 85 (द्वितीय)

- युद्ध-विज्ञान की छाया में इस लेख में अर्वाचीन युग के महान दार्शनिक और युद्ध विरोधी बर्ट्रांड रसेल के अनुसार विज्ञान आज युद्ध को जिस मुकाम पर ले आया है वहां युद्ध का एक ही अर्थ है- समस्त मानव जाति की समाप्ति। मनुष्य को युद्ध या मानव-जाति का बने रहना, इनमें से एक

विकल्प को चुनना होगा।.....आज के युद्ध में पराजय, नेपोलियन के समय की अपेक्षा सामान्य नागरिक को अधिक अस्त-व्यस्त कर देती है।

- अहिंसा को हिंसा का विकल्प बनाना, आज का तात्कालिक प्रश्न तो है ही, वह व्यावहारिक उपचार भी है। आण्विक शस्त्रों की होड़ में सबको सुरक्षा की चिंता है। चिंता है, अहिंसा एक मूल्य और सिद्धांत के रूप में हिंसा का विकल्प बनाने की। अहिंसा एक शक्ति के रूप में आयेगी तभी संभव है कि हिंसा घटे, चूंकि शून्य तो रहेगा नहीं। उसका स्थान भरने के लिए दूसरी शक्ति चाहिए।....शक्ति के रूप में हिंसा आज अव्यवहार्य हो गयी है क्योंकि उससे किसी की जय या पराजय नहीं होगी। संपूर्ण सृष्टि ही नष्ट हो जाएगी। लेकिन जबतक अहिंसा को हम एक शक्ति के रूप में प्रतिस्थापित कर एक विकल्प प्रस्तुत नहीं करते तब तक हिंसा से छुटकारा नहीं।.....जैनेन्द्र जी

- **प्राचीन भारत में युद्ध विद्या**

- 1) महाभारत में ही भीष्म ने युधिष्ठिर को युद्ध करने की विधियाँ बतलायी हैं। बत्तीस प्रकार के रणकौशल्यों, इक्कीस तरह के पैतरों, पराजय के कारणों, विजय के कारणों, सेनापति का महत्व, तथा युद्ध नीति का विस्तृत वर्णन मिलता है। लेकिन युद्ध विद्या का जन्म संभवतः वेदकाल में हुआ था। क्योंकि वेदों में ऐसे अनेक मंत्र हैं, जिनमें ऐसी प्रार्थना की गयी है कि हमारी संतान शत्रु का नाश करनेवाली हो।
- 2) पुरातन शस्त्र-शास्त्र : प्राचीन भारत में जिन शस्त्रों का प्रयोग होता था उनका प्रयोग कालांतर में चीन, जपान, बर्मा, इंडोनेशिया, मलेशिया, थायलैंड आदि में किया जाने लगा। बौद्धकाल में अहिंसा के प्रचलन और प्रसार के कारण इनके उपयोग में कमी आयी।

इन प्राचीन अस्त्र-शस्त्रों को पांच श्रेणियों में वर्गिकृत किया गया था : 1) ऐसे अस्त्र-शस्त्र जिनका प्रक्षेपण किया जाता था (भाला) । 2) ऐसे जिनका प्रक्षेपण नहीं किया जाता था (तलवार) 3) ऐसे जिनका प्रक्षेपण तो किया जाता था लेकिन जिन्हें पकड़कर भी रखा जाता था (पाश) । 4) जिनका प्रयोग मंत्रोच्चार के बाद किया जाता था (आथर्वणः जो कर्ण को परशुराम से प्राप्त हुआ था) । 5) जिनका प्रयोग यंत्रों के सहारे किया जाता था (शतघ्नी) ।

युद्ध के देवता इंद्र का शस्त्र-वज्र भारतीय अस्त्रशास्त्र में सबसे प्राचीन और सन्माननीय और पूज्य माना गया है। कहा जाता है कि इसका निर्माण दधीचि ऋषि के मेरुदण्ड से हुआ था।

गदा, असि (असिका-कटार) और शूल महत्वपूर्ण और अधिक मात्रा में उपयोग में लाये जाते थे।

प्राचीन काल में धनुष्यबाण का इतना अधिक महत्व था कि सारी युद्धविद्या को धनुर्विद्या का ही नाम दिया गया था। शिव का विशेष धनुष्य—पिनाक तथा अर्जुन का गांडीव ये लकड़ी के बने थे। तो विष्णु का विशेष धनुष्य श्रृंग (सिंग) से बना था। इंद्र का विजय धातु का बना था। बाण चलाने की कुशलता को श्रेष्ठ योद्धा का लक्षण समझा जाता था। धनुष्य का मूल नाम ' धनु ' या 'कमान' था।

असि का प्रयोग सर्वप्रथम राजा दक्ष ने किया था और उनकी पुत्री जया ने इसके प्रयोग, निर्माण आदि के संबंध में अनेक नियम बनाये। उसकी छोटी बहन सुप्रिया ने ' असिपुत्रिका ' (असिका या कटार) का आविष्कार किया। मोहन्जो-दड़ो के उत्खनन में पुरातत्व वेत्ता मैकाय को ईसा से 2000 साल पुरानी तांबे की बन असी तथा असिकाएं मिली थीं।

अनेक आकार और प्रकार की तलवारें और कटारों का आविष्कार हुआ। इनमें थीं श्रीगर्भ, विजय, विषायण, क्षुरिका, असिधेनुका, भुजाली आदि।

श्रृंग का आविष्कार 5000 वर्ष बाद हुआ, ईसा से 1000 वर्ष पूर्व।

• प्राचीन पाश्चिमात्य जगत में शस्त्र :

इसकी शुरुआत आर्किमिडिज़ ने ईसा पूर्व सन् 212 में, रोमनों से अपने भतीजे सिरॅकस के राज्य की रक्षा करने में की थी। प्लुटार्क ने अपनी पुस्तक ' मारसेलस का जीवन ' में उन युद्ध उपकरणों का बड़ा ही रोचक ढंग से और उन्हें कुछ-कुछ मिथकीय रूप देते हुए वर्णन किया है। जिन्हें आर्किमिडिज़ ने आविष्कृत किया था। राजा ने उससे ऐसे उपकरण बनाने कहा था जिनसे घेराबंदी की स्थिति में तथा हमला करते समय आक्रमण भी किया जा सके और रक्षा भी। आर्किमिडिज़ ने कई उपकरण बनाकर दिये। राजा हेरॉन उनका उपयोग कभी नहीं कर सका क्योंकि उसके राज्यकाल में हमेशा शांति बनी रही। कभी युद्ध हुए ही नहीं। परंतु इन उपकरणों ने उस समय सिरॅकसों की बहुत अच्छे ढंग से सहायता की, जब वे दुश्मनों के घेरे में बंद हो गये। लेकिन अन्त में जीत रोमनों की ही हुई। आर्किमिडिज़ एक साधारण सिपाही के हाथों मारा गया।

क्रिमियाई युद्ध के दौरान विषैली गॅस के प्रयोग के बारे में जब फॅरेडे से सलाह ली गयी थी तो उन्होंने कहा था कि यह प्रयोग संभव तो है, लेकिन मानवता की दृष्टि से सर्वथा अनुचित है। उन दिनों उनकी सलाह मान ली गयी थी। लेकिन यह बहुत पुरानी बात है।

आज तो मानव कुछ अधिक ही सभ्य हो गया है। दूसरे महायुद्ध में जो शौर्य जापानियों ने दिखाया, किसी और देश ने नहीं। लेकिन वे अमेरिकन औद्योगिकी के आगे मात खा गये। युद्ध में विजय के लिए आज शुरता की नहीं बल्कि इस्पात, तेल और यूरेनियम की आवश्यकता है। और मानवता जैसे दकियानूसी सोच की नहीं, परमाणु बम उपयोग कर सकनेवाले जॉबाज दिल की जरूरत है।

आज परमाणु बम, हैड्रोजन बम ने मानव जीवन पर विज्ञान के प्रभाव को लेकर कई तरह की आशंकाएं तथा भय पैदा कर दिया है। हमें विवेक या मृत्यु इनमें से एक का वरण करना होगा।

• युद्ध के पुराने नियम

- 1) युद्ध केवल दिन में ही होता था। अंधेरा होते ही शंख बजाकर दोनों पक्षों को अपने-अपने शिविरों में लौट जाना होता था।
- 2) यदि कोई युद्ध न करना चाहे या थककर युद्ध से लौट रहा हो तो उसका वध नहीं करना चाहिए।

- 3) रथों को रथों के साथ ही युद्ध करना चाहिए और रथी को रथी के साथ ही। हाथी-सेना को हाथीसेना के साथ ही भिड़ना चाहिए और अश्वारोही को अश्वारोही के साथ। पदातियों में पदातियों के अतिरिक्त रथी, अश्वारोही, या गजदलवाले न घुसे।
- 4) किसी भी योद्धा अथवा सेनापति को विरोधी पक्ष के किसी भी योद्धा को ललकारने का अधिकार था। ऐसी चुनौती को स्वीकार कर जो तैयार होकर सामने आये उसीके साथ युद्ध आरंभ करना चाहिए।
- 5) एक व्यक्ति जब एक से भीड़ रहा हो तो दूसरे को उसपर वार नहीं करना चाहिए।
- 6) शरणागत या बंदी का वध नहीं करना चाहिए।
- 7) पीठ दिखाकर भागनेवाले, अस्त्र-शस्त्र विहीन, जिसका रक्षा कवच फट या टूट गया हो उसका वध नहीं करना चाहिए।
- 8) घोड़ों के सेवा में लगे सूत, रसद पहुंचानेवाले, शस्त्रों को ढोनेवाले सेवक तथा शंख फुंकनेवाले, भेरी बजानेवाले आदि पर किसी भी शस्त्र का प्रयोग नहीं करना चाहिए।.....प्रस्तुति :शांता :सारिका :

- आज युद्धबंदी और उनके साथ व्यवहार: कितने ही देश पवित्र आंतरराष्ट्रीय नियमों को ताक पर रखकर युद्धबंदियों से मनमाने ढंग से श्रम करवाते हैं। दशाव नामक शिविर में फ्रांसीसी युद्धबंदियों से दलदल में प्रतिदिन बारह-बारह घंटे काम करवाया जाता था। अन्य कामों को मिलाकर वे अठारह घंटों तक काम करते थे। युद्धबंदियों को नाना तरह की भयंकर शारीरिक और मानसिक यंत्रणाएं दी जाती थीं। नाझी युद्धबंदी शिविर उसके लिए कुख्यात हैं। भूख, बिमारी, कमजोरी, थकावट और बंदी जीवन की यातनाओं से पीड़ित होकर वे धीरे-धीरे मृत्यु का ग्रास बनते जाते थे। जर्मनी पर ही क्यों अंग्रेजों ने भी युद्ध क्षेत्र से माइन्स हटवाने जैसे भयंकर खतरनाक काम युद्ध बंदियों से करवाये हैं।

• सारिका ने चुनी हुई प्रातिनिधिक कहानियाँ

- 1) प्रथम कहानी है महापंडित राहुल सांकृत्यायन की। उसकी पार्श्वभूमि यह दी गयी है: छह फीट व्यास की जमीन पर कुएनुमा खुदाई से राहुल जी को सोलह सौ ऐसी इंटें मिलीं, जिनपर ब्राह्मी से मिलती-जुलती लिपि में यह आत्माकथा लिखी हुई है। इसे लेखक ने ' सिंह सेनापति ' नाम दिया है। पटना संग्रहालय में ये इंटें आज भी संरक्षित हैं। वास्तव में यह ढाई हजार साल पहले के वैशाली गणतंत्र का जीता-जागता चित्र भी है। इसका पार्श्व है ' तक्षशीला '। यह लिच्छवियों और बिंबसार के बीच हुए महायुद्धों की महागाथा है।

अन्य कहानियाँ हैं—

- 2) युद्ध की एक रात : स्पेनी लेखक हेमिंग्वे की कहानी जो स्वयं उनके युद्धानुभवों पर आधारित होने के कारण प्रामाणिक, मर्मतक और जीवंत बन पड़ी है।

- 3) कोई मनिऑर्डर नहीं आया : 1984 का बीसवा ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त मलयालम के मूर्धन्य लेखक तकषी शिवशंकर पिल्ले की कहानी।
- 4) ' बड़े दफ्तर की तरफ जाते हुए ' : युद्ध के दौरान जासूस की निश्चित नियति को रेखांकित करती इटली के कथाकार ' इताल्लो कैल्विनो ' की कहानी।
- 5) ' दाय वंचित ' : ब्रितानी लेखक एच.ई.बेट्स की कहानी ।“ युद्ध के अनुभवों के बाद दोस्ती, दुःख, सुख, प्यार, मौज, मस्ती, शौर्य, परिवार आदि संवेदनाओं और अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए जब आदमी के पास शब्द ही न रह जाए तो—
- 6) ' संभवामि ' भारतीय संस्कृति के लम्बे चले आर्य-द्रविड़ संघर्ष पर आधारित कन्हैयालाल ओझा के महत्वपूर्ण उपन्यास का अंश। संघर्ष तो लम्बा चला लेकिन द्रविड़ संस्कृति नष्ट न हो सकी। आज के हमारे अधिकतर लोकाचार उसी संस्कृति की ही देन हैं।
- 7) पृथ्वी और मंगलवासियों के बीच काल्पनिक संघर्ष पर रचे गये ब्रितानी लेखक हरबर्ट जॉर्ज वेल्स के उपन्यास का अंश।
- 8) जो देश के लिए लड़े : विश्वविख्यात रूसी कथाकार मिखाइल शोलोखोव की हृदयविदारक युद्ध-कथा, जो उन्होंने सेना से निवृत्ति के बाद लिखी।
- 9) ' द सायलेंट बैरिकेड ' : जॉन दरदा, चेकोस्लोवाकिया : इसपर फिल्म भी बन चुकी है। :जबरन युद्ध थोप दिये जाने पर सामान्य जनता भी किस तरह जांबाज योद्धाओं में तब्दील हो जाती है, इसका जीवन्त चित्र पेश करती कहानी।
- 10) बाइसवां विधान : अमेरिकी उपन्यासकार जोसेफ हेलर : क्या युद्ध किसी भी समस्या को हल कर पाये हैं कभी?.....अन्त में रह जाते हैं अपने-अपने स्वार्थ।.....युद्ध की प्रासंगिकता?
- 11) बन्सी निर्दोष : जाफरखान : युद्ध के दौरान सबसे अधिक अत्याचार अंततः स्त्री पर ही होता है। विधवा, अनाथ या बलात्कार की शिकार होकर वह दोहरी मार झेलती है। परन्तु कई बार स्थितियाँ ऐसी भी हो जाती हैं कि विडंबना अचानक सुखद आश्चर्य में बदल जाती हैं। कैसे?...पढ़िये डोगरी कहानी में.....
- 12) इकतालीसवां दुश्मन : बोरिस लवेयॉव : युद्ध और प्रेम, स्त्री और पुरुष के संबंधों को रेखांकित करती रूसी कथाकार की युद्ध-प्रेम गाथा।
- 13) सहायत्री : ब्रांको कोपिच : युगोस्लाविया के वरिष्ठ कथाकार।
- 14) एक और अभिमन्यु : बाला दुबे : सन् 1720 में मुगल कालीन दौर के बीस वर्षीय अभिमन्यु की गाथा जिसने शत्रुओं के बीच घिर जाने के बावजूद रणभूमि में पीठ दिखाने की अपेक्षा शहीद हो जाना बेहतर समझा।

15) आतंकित इतिहास : योगेश गुप्त : युद्ध में एक पक्ष विजयी होता है तो दूसरा पराजित। परन्तु दोनों जिस त्रासदी का शिकार होते हैं, वह है विनाश।.....आदमी जब आदमी को मारने के तरीके इजाजत करता है तो शायद सबसे अधिक कल्पनाशील होता है।.....कौन किस सदी में है, यह इस बात से तय होता है कि वह आदमी को मारने का कौनसा तरीका उपयोग में लाता है। यानी आतंक फैलाने का तरीका कितना आधुनिक है।.....एक दिन भांप बनकर सब उड़ जायेंगे। दुःख देने और दुःख लेने का नाटक करने कोई नहीं बचेगा।

16) समरगाथा : हावर्ड फास्ट : आजादी पसंद यहूदियों के यूनानियों के विरुद्ध संघर्ष की गाथा।

17) विएतनामियों को प्यार : एदिता मौरिस।

- The unwomanly Face of war

1985 में स्वेतलाना अलेक्झिण्डा इस लेखिका की यह पहली किताब प्रकाशित हुई थी। इसे 2015 में साहित्य का नोबेल पुरस्कार दिया गया। आज भी यूक्रेन-रूस युद्ध की कड़ी आलोचना करनेवाली यह यूक्रेन-बेलारूस की प्रतिभावंत लेखिका और इतिहासकार हैं।

दूसरे विश्वयुद्ध में शुरू से ही अधिकतर देशों ने महिलाओं की भर्ती शुरू की थी। सबसे अधिक संख्या थी रूसी महिलाओं की, दस लाख। उपरोक्त लेखिका ने, उस समय युद्ध में, प्रत्यक्ष युद्ध क्षेत्र में काम करनेवाली महिला सेनानियों की मुलाकातें लेकर, उनके अनुभवों के आधार पर उपरोक्त किताब लिखी है। उनमें जिनकी मुलाकातें लीं उनमें पायलट्स, डाक्टरों, नर्सों, नेमबांज, टैंक चालक, शत्रु जहाजों को प्रतिरोध करनेवाले हवाई जहाजों की चालक, जासूस, स्वयंसेवक, न जाने कौन-कौन थीं। महिलाओं में होड़ थीं, युद्ध क्षेत्र में पहुंचकर मातृभूमि के लिए कुछ करने की। उनकी स्वदेश प्रीति, जबरदस्त कार्यनिष्ठा और उत्तरदायित्व की न बुझानेवाली लौ, इस किताब में साफ झलकती है।

लेकिन इन विरांगनाओं को अनुभव हुआ कि युद्ध याने शौर्य नहीं तो कौर्य है। ये महिलाएं चार सालों में अपनी स्त्रित्व की भावना ही भूल गयीं। उसमें उन्हें ऊपर से अनुभव हुआ पुरुष प्रधान समाज में पुरुषी अहंकार का। खुद युद्ध पर जाकर आये सैनिकों को भी, युद्ध क्षेत्र में अपना शौर्य दिखानेवाली लड़की, पत्नी के रूप में नहीं चाहिए थी।

इस तरह की कितनी ही यादें और प्रसंग आपको इस किताब में पढ़ने मिलेंगे।

- युद्धरत दुनिया में शांति स्थापना : युद्ध की घटनाओं को गौरवान्वित करने के स्थान पर शांति स्थापना के प्रयत्नों को महत्व देना चाहिए।

दुनिया में सक्रिय हैं एक लाख से अधिक शांति सैनिक। संयुक्त राष्ट्र द्वारा पहला संयुक्त राष्ट्र शांति मिशन 29-05-1948 को स्थापित किया गया था। उस समय इजरायल तथा अरब देशों के बीच फैली अशांति को रोकना था। संयुक्त राष्ट्र द्वारा अफ्रीका, अमेरिका, एशिया, यूरोप तथा मध्य पूर्व में 71 शांति अभियान चलाये गये हैं। दुनिया में शांति बहाली में इन शांति सैनिकों की अहम भूमिका रही है। ये कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी अपनी जान पर खेलकर अपना दायित्व निभाते हैं। इनमें पुरुष ही नहीं तो महिला सैनिक

भी हैं। लगभग 15 हजार आम नागरिक भी इस मिशन में शामिल हैं। संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा वर्ष 2002 में प्रस्ताव संख्या ए/ईएस/57/129 के जरिए आम नागरिकों की सुरक्षा के लिए पहली बार ' शांति रक्षा मिशन ' को अधिकार दिये गये और 29 मई को ' शांति रक्षक दिवस ' नामित किया गया। अभितक लगभग 4000 से अधिक सैनिकों को ने इस पावन कार्य में अपने प्राणों की आहुति दी है। इनमें 177 भारतीय सैनिक भी शामिल हैं। भिन्न-भिन्न स्थानों पर कार्यरत भारतीय शांति सैनिकों और पुलिसकर्मियों की संख्या 6000 से अधिक है जो किसी भी अन्य देश की सहभागिता की तुलना में अधिक है।

शहिद हुए शांति रक्षकों के सम्मान में संयुक्त राष्ट्र मुख्यालय में एक स्मारक दीवार स्थापित करने के लिए भारत द्वारा लाये गये मसौदा प्रस्ताव को सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया। संयुक्त राष्ट्र में भारत की स्थायी प्रतिनिधि रुचिरा कम्बोज ने यह मसौदा पेश किया और रेकॉर्ड 190 देशों ने सह प्रायोजित किया। दीवार तीन सालों में बनेगी और उसपर सभी शहीद सैनिकों के नाम अंकित होंगे।

- युद्ध में हुई संख्यात्मक मौतों के क्रम से, दुनिया में हुए 120 बड़े युद्धों की सूची विकिपिडिया पर उपलब्ध है; https://en.wikipedia.org/wiki/List_of_wars_by_death_toll

इन सभी युद्धों में एक लाल से अधिक मौतें हुई हैं।

- दुनिया का सबसे लम्बा चला युद्ध : 1618-1648 : युद्धों की यह श्रृंखला कैथॉलिक और प्रोटेस्टंटों के बीच चली।
- दुनिया का सबसे संक्षिप्त युद्ध : ब्रिटेन और झांझिबार सल्तनत के बीच 27-08-1896 को 38 से 45 मिनट के बीच चला।
- प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्ध छोड़ बीसवीं सदी में हुए बड़े युद्ध-

- 1) मेक्सिकन क्रांति (1910-1920)
- 2) रशियन सिविल वॉर : 1917-1922)
- 3) स्पेनिश सिविल वॉर : 1936-1939)
- 4) चीनी गृहयुद्ध : 1945-1949)
- 5) अरब - इज़रायल : 1948
- 6) उत्तर कोरिया-दक्षिण कोरिया : 1950-1953) : 30 लाख मौतें
- 7) वियतनाम - अमेरिका 1954 से 30-04-1975) : इसमें 20 लाख लोग मारे गये और तीस लाख घायल हुए।
- 8) सोवियत संघ-अफगान मुजाहिदीन : 24-12-75 से 89 तक: 15 लाख
- 9) इराक- कुवैत : 1990 |

- प्रथम विश्वयुद्ध---

- 1) किसी सर्बियाई छात्र ने सरायेवो में 15-06-1914 को ऑस्ट्रिया-हंगेरियाई सिंहासन के उताधिकारी राजकुमार फ्रांत्स फर्डिनांद की हत्या, प्रथम महायुद्ध छिड़ने का बहाना थी। लेकिन असली कारण तो दुनिया का फिर से बंटवारा करने की अति विकसित पूंजीवादी राष्ट्रों की साजिश थी। पूंजीवाद युद्ध के माध्यम से धन कमाना चाहता है। यह ब्रिटिश और जर्मन पूंजी के बीच का अंतर्विरोध था जो विश्वयुद्ध में परिणत हुआ।
- 2) इस महायुद्ध में 95 लाख लोग मारे गये या प्राणांतक रूप से घायल हुए। दो करोड़ घायल हुए। 35 लाख हमेशा के लिए अपंग हो गये।
- 3) जर्मन गठजोड़ था : जर्मनी-आस्ट्रिया-हंगेरी-तुर्की। मित्र राष्ट्र : ब्रिटिश-फ्रांस-रूस।
- 4) युद्ध छिड़ने पर उसमें शामिल हुए मित्र देशों के सैनिकों की संख्या-ब्रिटिश-10,00,000, फ्रांस-37,89,000, रूस-53,38,000 (कुल - 1,01,19,000)। जर्मन गठजोड़-जर्मनी-38,22,000, आस्ट्रिया-हंगेरी-23,00,000. तुर्की-18,00,000, कुल-79,22,000।
- 5) युद्ध में 38 देश शामिल थे, जिनकी कुल जनसंख्या लगभग डेढ़ अरब थी। अमेरिका सबसे आखरी में शामिल हुआ, न्यूनतम क्षति लेकिन महत्तम मुनाफे के साथ।
- 6) नवम्बर 1918 में मित्र राष्ट्र और जर्मनी के बीच हुई संधि के बाद युद्ध समाप्त हो गया।
- 7) इस युद्ध में भारत ने नऊ लाख पच्चासी हजार सैनिक दिये।

द्वितीय विश्व युद्ध

तीन तानाशाहों की सनक की न्यूनतम कीमत 11,66,82.50,00,000 (केवल सैनिकी खर्च) दुनिया ने चुकायी।

अडॉल्फ हिटलर : जर्मन जाति की श्रेष्ठता और शुद्ध आर्य रक्त के नाम पर हिटलर ने ऐसा फतवा दिया कि जर्मन ही एकमात्र ऐसी जाति है जो पूरी दुनिया पर शासन कर सकती है।...कोई मुझे सत्ता से नहीं हटा सकता। हिटलर की विश्व विजय का महत्वाकांक्षा, पागलपन की सीमा छूने लगी और 03-09-1939 को दूसरा महायुद्ध शुरू हो गया।

मुसोलिनी : लड़ाई छेड़ने के मामले में इटली का तानाशाह मुसोलिनी हिटलर से भी अधिक उतावला था।

तोजो : जापान का तानाशाह सम्राट तोजो अपना हिसाब लगा रहा ला उसका हिसाब यह था कि जबतक सारी दुनिया हिटलर और मुसोलिनी के साथ उलझी है तबतक वह समुचे चीन और दक्षिण पूर्व एशिया में अखंड जापानी साम्राज्य की स्थापना कर ले।...07-12-1941 अमेरिका का पर्ल हार्बर जापानी आक्रामण का शिकार हुआ।.....अन्त में तोजो ने आत्महत्या करने की कोशिश की लेकिन उसे बचा लिया गया फांसी पर चढ़ाने के लिए।

- इस युद्ध के कारण विश्व भर में मरनेवालों, घायलों, विकलांगों, गुमशुदायों की कुल अनुमानित संख्या पच्चीस से तीस करोड़ के बीच है।
- युद्ध में मनुष्य ने जिस क्रूरता का परिचय दिया उससे दुनिया परिचित है।
- हिटलर और मुसोलिनी के अन्त कैसे हुआ यह भी सर्वज्ञात है।
- इस युद्ध का सबसे भीषण संघर्ष : स्टॅलिनग्राड की लड़ाई

एक शहर में लड़ा गया युद्ध या इस शहर को जर्मन सेना द्वारा डाला गया घेरा ढाई महिनों तक चला। अन्त में 02-02-1943 को जर्मन सेना ने हार मान ली। इस संघर्ष में जर्मनी ने अपने ढाई लाख सैनिक गंवाये। दूसरे महायुद्ध में एक स्थान पर इतना भीषण नरसंहार नहीं हुआ। इसके अतिरिक्त हिटलर को अपने 960 हवाई जहाज, 2400 टैंक, 2100 तोपें और दस हजार मालवाहक गाड़ियों का नुकसान हुआ। यूरोप में विजयपताका फहराती हए बढ़ती जर्मन सेना की यह सबसे पहली और सबसे बड़ी हार थी।

- आज इक्किसवीं सदी में भी युक्रेन-रूस और इजरायल और फिलिस्तीन में युद्ध चल ही रहा है।

@ रूस-युक्रेन युद्ध फरवरी 2022 से चल रहा है।

@ दूसरा महायुद्ध समाप्त होने के बाद अरबों और इस्त्राइल के बीच सात बार संघर्ष हुआ है। विद्यमान संघर्ष 07-10-2023 को शुरू हुआ हुआ है। हमास द्वारा इजरायल पर रॉकेटों से हमला करने के बाद। इसमें हमास ने 1200 यहूदियों की हत्या कर दी थी और 251 लोगों को बंधक बनाकर अपने साथ ले गये थे। इनमें से कुछ बाद में मारे गये। इजराइल की बदले की कारवाई में 2024 के अंत तक 46788 फिलिस्तीनी मारे गये। 23 लाख लोग गाजा में आंतरिक रूप से विस्थापित हुए। इनमें से 80% अस्थायी शिविरों में रह रहे हैं।

- स्विट्ज़रलैंड ऐसा देश है जिसकी अपनी ताकतवर सेना तो है लेकिन वह स्वयं की सुरक्षा के लिए। यह देश कभी किसी अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध में शामिल नहीं हुआ। 1815 में व्हिएन्ना में हुए एक सम्मेलन में यूरोप के बड़े राष्ट्रों ने इसे एक तटस्थ राष्ट्र के तौर पर मान्यता दी थी।

प्रकरण १३

महाविनाश की कहानियां

इतिहास के पन्ने उलटने पर हम कुछ अच्छी बातों से रुबरू हौले हैं। मानव समाज उन्नत कैसे होता रहा। मनुष्य का जीवन अधिक सहनीय किस तरह होता रहा। मनुष्य के जीवन में ज्ञान किस तरह वृद्धिगंत होता रहा। मनुष्य किस तरह एकदूसरे के साथ प्रेम से बंधता गया। आदि-आदि

लेकिन उसके साथ ही मनुष्य जाति ने कैसे-कैसे महाविनाश को झेला। महाविनाश का एक रूप तो था या है कुदरती। बाढ़, सुखा, अकाल, आग, भूकंप, ज्वालामुखी उद्रेक, दूधटनाएँ वगैरह।

तो दूसरा रूप है मनुष्य द्वारा अपने ही विनाश के लिए बुलाई गयी विपदाएं। इसका सबसे भयंकर रूप है युद्ध। किसी न किसी ने अपने स्वार्थवश छेड़े हुए युद्ध। इनमें भयानक नरसंहार हुआ है। मनुष्य ने अपनी सृजनात्मक शक्ति से खड़ी की सभ्यताएं उद्वस्त होती रही हैं। पूरी मानवता लहलुहान हुई है। चाहे भारत हो या पाश्चिमात्य जगत, हर जगह का इतिहास एक जैसा ही है।

इन महाविनाशक घटनाओं को लेखकों ने कहानियाँ का रूप दिया है। लेकिन इसका क्या उद्देश्य हो सकता है? जहाँत प्राकृतिक विपदाओं का संबंध है, बीत चुकी बातों से शिक्षा लेकर अपनी सुरक्षा के अधिक कारगर उपाय ढूँढ़ जा सकते हैं। तो मानव द्वारा आमंत्रित महाविनाश को याद कर हम उन्हें रोकने के लिए प्रयत्न कर सकते हैं और कर भी रहे हैं। उदाहरण के तौर पर पर्यावरण को सुधारने किये जा रहे प्रयत्न।

- 03-12-2024 को मप्र उच्च न्यायालय ने राज्य सरकार को यूनियन कार्बाइड फैक्टरी में 40 साल से पड़े विषाक्त अपशिष्ट का तुरन्त(चार सप्ताह के भीतर) निपटारा करने का निर्देश दिया। न्यायालय ने इसे दुखद स्थिति करार दिया। यह कचरा 337 टन है। रासायनिक कचरा इंदौर से 30 कि.मी. दूर पीथमपुर एक औद्योगिक अपशिष्ट निपटान इकाई में नष्ट किया जाएगा। इसे 02-01-25 के तड़के वहाँ(भोपाल से 250 कि.मी. दूर) कड़ी सुरक्षा के बीच 12 सिलबंद कंटेनर ट्रकों में खास ग्रीन कॉरिडोर बनाकर पहुँचा दिया गया। चार दिनों तक 100 लोगों ने 30 मिनट की शिफ्ट में काम करके कचरे को पैक कर ट्रकों में रखा। शिफ्ट करनेवाले के स्वास्थ्य पर कड़ी निगरानी रखी गयी। इकाई में शुरू में कुछ हिस्से को जलाकर उसके अपशिष्ट की कड़ी जांच की जायेगी। ताकि यह निश्चित किया जा सके कि उसमें कुछ जहरीला बचा तो नहीं। अगर सबकुछ ठीक रहा तो पूरी प्रक्रिया को तीन माह लगेंगे। कचरे के जलने से निकलनेवाले धुएँ को हवाचार स्तरोंवाले विशेष फिल्टर से गुजारा जाएगा ताकि कि आजुबाजु की हवा प्रदुषित न हो। राख को दो परतोंवाली मजबूत मेंम्ब्रेन से ढँककर लैंडफील साईट में दफनाया जाएगा। ताकि यह अपशिष्ट जमीन और पानी के संपर्क में न आ सके। फिर भी स्थानीय लोगों को इस प्रक्रिया के बुरे प्रभाव के बारे में आशंका है और वे इसका विरोध कर रहे हैं, आंदोलन भी खड़ा हो रहा है। पीथमपुर की आबादी 1.75 लाख है। लेकिन मप्र के मुख्यमंत्री जी का कहना है कि यह कचरा जहरीला नहीं है।.....(लोकमत समाचार ता. 03-01-2025)

(वैसे इस कचरे को 2011 में नागपुर ले जाने का प्रस्ताव था लेकिन वहाँ इसका जबरदस्त विरोध होने के कारण इसे टाल दिया गया। लेकिन शायद 2013 में कुछ 10 टन कचरा केरल के कोची संस्थान ले जाया गया था।)

- यूनिन कार्बाइड इस अमेरिकी कंपनी का यह कारखाना 1969 में शुरू हुआ था, टॉर्च के सेल बनाने के निरामिष उद्योग से। इसने जमने की भूमिका बांधी। इस्ट इंडिया कंपनी की तरह फिर अपने पैर पसारे और 1976 से इसमें किटकनाशक दवाईयां बननी शुरू हुई। 'सेविन' नामक यह दवाई खेती में किडे मारने के लिए है। इसका मुख्य निर्यात अमेरिका को होता रहा। सेविन, मिथाईल आयसो सायनेट नामक जहरीली गॅस से बनती है। लेकिन उसके प्रभाव को तीव्र करने और सस्ते उत्पादन के लिए इसमें फॉस्जीन नामक भयंकर जहरीली गॅस भी कुछ अंशों में मिलायी जाने लगी। इसी गॅस का प्रयोग हिटलर ने, यहूदियों को मारने के लिए किया था। इस तरह के कारखाने के गिर्द पचास कि.मी.के दायरे में कोई बस्ती नहीं होनी चाहिए, जैसा कि जॉर्जिया में है। वैसे भी विकसित देश ऐसे कारखाने लगाने की इजाजत अपने देश में नहीं देते। लेकिन तीसरी दुनिया के लोग उनकी दृष्टि में किडे-मकोड़ों से अधिक नहीं हैं। और यहां के सत्ताधीश औद्योगिक विकास के मायाजाल में फंसकर विदेशी जहर भी स्वीकार करने को तैयार रहते हैं। यह कारखाना भोपाल स्टेशन लाइन पर शहर से छह कि.मी.दूर है। उसके आसपास घनी आबादी है। ठीक कारखाने के सामने सड़क से लगी सैकड़ों झुगियां हैं। इन्हीं बस्तियों ने सबसे अधिक मौतें झेलीं, सबसे ज्यादा दुष्प्रभावित हुईं।

कारखाने से किसी भी गॅस का रिसाव रोकने के लिए, किसी भी खतरे का मुकाबला करने के लिए कॉस्टिक सोडा से भरे पानी के फव्वारे चलाने होते हैं, जो न तो उद्घाटन के समय चले थे, न 03 दिसंबर की रात को। हर छह महीने में जो पाइप बदलने थे वे पिछले दो सालों से नहीं बदले गये थे। उसपर तुरा यह की सरकारों सुपरवाइजरों की फौज अपनी ड्यूटी बराबर करती है। अमेरिका से वैज्ञानिक और डॉक्टर तक सही प्रतिरोधक औषधि के विषय के में अनभिज्ञ थे।

मौत के व्यापार के आगे सभी व्यापार स्थगित हो जाते हैं। मगर कुछ लोग होते हैं, जिनके व्यापार ही मौत से शुरू होते हैं। गौतम बुद्ध को एक शव, रोगी और वृद्ध को देखकर ही वैराग्य उत्पन्न हो गया था। नरमेघ के साक्षात्कार ने अशोक का निर्देयी हृदय पिघल गया था। मगर यहाँ यह हुआ कि अमेरिका से गिद्धों की तरह वकील उतर आये और अपढ़, दुःखी यतिमों को नोचने लगे। मनमाने वकालतनामे उनकी छाती पर चिपकाकर उनके फोटो खींचे।

लेकिन इसी बीच पूरा शहर सेवा और संवेदना का घर बन गया था। भोपाल के तमाम अस्पतालों के डॉक्टर्स, छात्र-डॉक्टर्स, नर्सस, वॉर्डबॉय और सफाई कर्मियों ने दिन-रातों को अपनी मानवीय बाहों में भर लिया था।

एक इन्सान था जो मौत पर उस समय भारी पड़ रहा था- हरिश धुर्वे, स्टेशन अधीक्षक। मौत से झगड़ते हुए उसने असंख्य प्राणों को बचाने के लिए अपनी आहुति दे दी। वह दौड़-दौड़ कर लोगों को सावधान करते हुए उन्हें भागने के लिए कहता रहा। भोपाल आनेवाली तमाम गाड़ियों को पिछले स्टेशनों पर रोकने के

लिए फोन पर हिदायतें देता रहा। लेकिन मौत ने उसे टेलीफोन का चोंगा क्रैंडल पर रखने तक का भी समय नहीं दिया।.....हत्यारी डायन : यूनियन कार्बाइड से

इसी महविनाशक घटना से जुड़ी कहानी है, प्रभाकर क्षोत्रिय की ' सुन रे भोपाल, क्या है हालचाल.....?'

तीन दिसम्बर 1984 की रात भोपाल एक शहर का नाम है। कल तक यह नाम एक सांस्कृतिक और साहित्यिक केंद्र के रूप में जाना जाता था। आज इसे जाना जाता है एक ' मौत के शहर ' के रूप में। क्या यह संयोग नहीं है कि इस मौत के केंद्र में उसी अमेरिका के द्वारा भारत में पाला जा रहा ' यूनियन कार्बाइड नाम का दैत्य था, जिसने इससे लगभग चालीस पहले हिरोशिमा और नागासाकी पर परमाणु बम के रूप में मौत की वर्षा की थी। तिस पर इससे भी बड़ा सवाल यह है कि गॅस का यह रिसाव दुर्घटना ही थी या कि सोची समझी साजिश का नतीजा? बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में हुई दुनिया की सबसे बड़ी औद्योगिक महाविनाशक और भयानक त्रासदी जिसमें भोपाल के 5295 मासूम शहीद हुए, का हाल आपको सुना रहे हैं, उन दिनों भोपाल में उपस्थित चश्मदीद गवाह। (40 टन जहरीली गॅस का रिसाव हुआ था। 92320 लोग रिसाव की चपेट में आने पर भी बच गये थे। लेकिन इनमें से कइयों को कैंसर हुआ, कइयों को सांस की बिमारी हुई, तो कइयों की आंख की रोशनी चली गयी। फॅक्टरी से दस कि.मी. दायरे के हँडपंपों का पानी जहरिया पाया गया)

• कालिदास का विद्रोही मेघ : मृदुला गर्ग

उद्योग की स्थापना का अर्थ होता है, प्रगती और विकास, मगर जरासी लापरवाही इसे किस प्रकार विनाश का कारण बना देती है, इसका ज्वलंत उदाहरण है, हाल ही में भोपाल में हुआ नरसंहार, जो वस्तुतः समाप्त हो जाने के बावजूद अभी जारी है। जानकारी के अनुसार यह तो शुरुआत है। आगे और भी भयानक हादसे होनेवाले हैं। और इन्हीं का चेतावनी भरा संकेत देती है, यह मार्मिक कहानी---“ संस्कृति का संबंध जीवन से है, मृत्यु से नहीं। “

जहाँ वसंत में चीड़ियां नहीं चहकती : रसेल कारसन.....संक्षिप्त रूपांतर.....सु.उ.

प्रकृति के विरुद्ध भौतिक प्रगति की होड़ में आज आदमी ' आ बैल मुझे मार ' की तर्ज में अपनी मौत को खुद बुलावा दे रहा है, जबकि प्रकृति में संतुलन की अपनी एक प्रक्रिया चलती रहती है। हर जीव और वनस्पति के जीवन के लिए जहाँ प्रकृति ने सारी सुविधाएं जुटा रखी हैं, वही उनकी संख्या को नियंत्रण में रखने के उपाय भी बना रखे हैं। पर बीसवीं सदी का मनुष्य अपने तात्कालिक लाभ के लिए, रासायनिकों का प्रयोग करके अपने लिए हानिकारक अथवा अनुपयोगी जीवों और वनस्पतियों को नष्ट कर रहा है। प्रकृति के साथ इस छेड़खानी के परिणाम कितने भयंकर हो सकते हैं.....और किस प्रकार यह सब करके मानव स्वयं पर नाभिकीय युद्ध से भी अधिक भयानक आपदाओं को निमंत्रण दे रहा है?.....आदि-आदि सवालों को रेखांकित करती एक अमेरिकी पत्रकार की पुस्तक ' सायलेंट स्प्रिंग 'का संक्षिप्त रूपान्तर।

- प्राकृतिक महाविनाश : शहर जिनपर अंगारे बरसे.....विरेन्द्र जैन

प्रकृति सुख तो देती है, पर कभी-कभी दुःख भी। तुफान, भूचाल, आंधी, बाढ़ आदि मौत की तरह आते हैं और लील जाते हैं, उस क्षेत्र का समुचा संसार। जब ऐसा होता है तो क्या कुछ बीतता है, क्या कुछ टूट जाता है, बिगड़ जाता है- लोगों पर, पेड़-पौधों पर, धरती पर?- इस क्रम में इन पृष्ठों पर प्रस्तुत है, ज्वालामुखी के अट्टहासपूर्ण विस्फोट का खेल और प्रकृति द्वारा महाविनाश के संदर्भ में लिखी गयीं संवेदनशील रचनाएँ-

“ सत्रह सदी बाद, ज्यों का त्यों, पुराविदों ने हरकुलोनियम ओर पांपियाई के भग्न स्तुपों को जब खोद निकाला तो लोगों ने देखा कि खनिजों और चट्टानों की पिघली हुई अजस्र धारा हरकुलेनियम के राजमार्गों, उसकी गलियों से होती हुई, घरों कीके भीतर बह चली थी और घरबाहर सर्वत्र के प्राणि जलकर राख हो गये थे। जो जैसा था वैसा ही रह गया था। वैसा ही खोदकर निकाला भी गया।

पांपियाई के अंतिम दिन : लॉर्ड लिटन रूपान्तर-प्रभाकर द्विवेदी

“ क्या स्थिति थी पांपियाई के विनाश के पहले?...किस तरह के छल-छद्म में लिप्त थे वहाँ के लोग?...और क्या किसी को इस विनाश लीला का पूर्वानुमान भी हो चला था?...इस शहर के ध्वंसावशेषों को देखकर, द्रवित हो जाने पर लिखे गये उपन्यास का एक महत्वपूर्ण अंश कि प्रकृति का विकराल रूप मनुष्य को किस प्रकार असहाय कर छोड़ता है?

थेसाली की चट्टानी भूमि पर जब फारसेला के मैदान में जानलेवा जंग छिड़ी थी, तब ज्यूलियस सीज़र रुबिकन पार कर रोमन सिनेट की शक्ति को चुनौती दी थी और रक्षा का भार सौंपा था वीरकर्मा जनरल पांपे को। फिर पांपे की पीठ यूरोप ने कभी नहीं देखी और एशिया ने भी तब देखी जब पांपे अपनी कब्र की ओर कदम बढ़ा रहा था। इसी पांपे ने पांपियाई नगर बसाया था। यह शहर कितना समृद्ध था और विख्यात था इसका अंदाजा वहाँ की टूटी संगमरमर की लाटों और भवनों के खंडित गुम्बजों से लगाया जा सकता है। प्राचीन रोमनों का कहना है कि प्रान्तों की लूटी, पराजित जातियों से छिनी धनराशि पांपियाई के संगमरमरी प्रासादों में अटी पड़ी थी। वहाँ की रातें दिन के उजाले को चौंधिया देती थीं। और वहाँ नंगी, तरुण रूपसियाँ धनाढ्य रोमन तरुणों को मद्यपान कराने में व्यस्त रहती थी। प्राची नगर से मिटती उषा की आखरी ललाई तक ये काम शिथिल नग्न तरुण औंधे पड़े रहते।

जलता हुआ शहर : हयेल्मर सादेरेबर्ग.....स्वीडीश कहानी.....अनुवाद.....सु.उ.

किसी भी विनाश की घटना का भोक्ता या गवाह होना कोई भी पसंद नहीं करता। पर उस बच्चे के मन को आप क्या कहेंगे जो जलते हुए शहर की तस्वीर को असली मानता हुआ, सपने में भी स्वयं को उसमें देखता है। प्रस्तुत है जलते हुए शहर की त्रासदी की पृष्ठभूमि में एक बाल मन की प्रतिक्रियाएँ---

(आज 2025 के आरंभ में ही अमेरिका के लॉस एंजेलस/ कैलिफोर्निया मे लगी आग आठ दिनों से काबू में नहीं आ रही है। उसे बुझाने 14000 फायर फायटर्स लगे हैं। 30000 घर जल चुके हैं। 250 अरब डॉलर्स की हानी हो चुकी है। दूसरे देशों में आग लगाने का जिसका इतिहास रहा है वह आज अपने ही घर की आग नहीं बुझा पा रहा है।)

प्लेग : अल्बेयर कामू.....संक्षिप्त रूपान्तर.....सु.उ.

प्लेग नाम है उस महामारी का जिसका जिक्र करते हुए भी लोग सिहर उठते हैं। उसी महामारी के शिकार, फ्रांस के ओरान नामक शहर की त्रासदी को शब्द दिये हैं, फ्रांस के नोबेल पुरस्कार विजेता कथाकार आल्बेयर कामू ने। यह पर प्लेग मात्र महामारी बनकर नहीं रह जाती बल्कि समग्र मानवीय त्रासदी का प्रतीक बनकर उभरती है।

बैल, चींटी और इन्सान : शौकत उस्मान : बंगला देश की कहानी.....प्रस्तुति...सुरजीत

विनाश आदमी को आदमी से जुदा करने में जरा भी संकोच नहीं करता। उसका तो काम ही है सबकुछ नष्ट-भ्रष्ट करना।....मगर तब क्या होता है जब प्रकृति के तांडव के चलते आदमी और आदमी के बीच की दूरी कम हो जाये?...और कोई एक प्रकृति के उस तांडव से लोहा लेने पर उतारू हो?...प्रस्तुत है एक ऐसे ही गांव की कथा जिसके लोगों ने बाढ़ के प्रकोप का डटकर मुकाबला किया।

कर्मनाशा की हार : शिवप्रसाद सिंह

नदियों को सभ्यताओं की जननी कहा जाता है। लेकिन सहसा जब उनमें बाढ़ आ जाती है तो सभ्यताएं अपनी संस्कृति समेत उसीमें समा जाती हैं। कितने-कितने आतंक और असुरक्षा में डूब जाता है जनजीवन। बचाव और सुरक्षा के लिए क्या-क्या उपाय नहीं किये जाते? जानवर तो क्या, नरबलि देने तक में हिचकिचाहट नहीं रहती। ऐसे वक्त में मनुष्य को क्या करना चाहिए आदि सवाल को रेखांकित करती प्राकृतिक आपदा की कहानी कि क्या नरबलि से बाढ़ रोकी जा सकती है? या स्वयं नर ही इसकी गिरफ्त से छुटकारा पा सकता है।

- युद्ध

विधवाओं की बस्ती में : बंगला उपन्यास : प्रमथनाथ बिशी प्रस्तुति-----कान्ता चौधरी

यादवों की अठारह अक्षौहिणी सेना लेकर महाभारत के युद्ध में शामिल हुए थे कृष्ण.....अपने कौशल से पांडवों को विजय दिलवाकर कुरुक्षेत्र के मैदान से एक विजेता के रूप में द्वारका लौटे तो निपट अकेले थे। एक सैनिक भी साथ न था।....और द्वारका में कोई था तो बस समर में मारे गये इन तमाम योद्धाओं की पत्नियां जो भरी जवानी में अनचाहा वैधव्य भोग रही थीं। पतियों की अनुपस्थिति में उनपर क्या बितने लगी..... और जब श्रीकृष्ण का वध एक व्याध ने कर दिया.....उनके रनिवास में मौजूद हजारों रानियों का जीवन किस राह पर चल पड़ा?.....द्वारका के प्रशासन को क्या फिर कोई एक सूत्र में बांधे रख सका? या वहाँ भी वहीं सब कुछ हुआ जो कुरुक्षेत्र में अठारह दिन तक होता रहा था?.....महाभारत के युद्ध के बाद पैदा हुए ऐसे ही तमाम सवालों का जबाब तलाशते, बंगला के बहुचर्चित उपन्यास ' पूर्णावतार ' का संक्षिप्त सार.....

“ किस देश को जाओगे। सारे में यही चल रहा है। सुना नहीं कि कुरुक्षेत्र में अठारह अक्षौहिणी पुरुष मारे गये। उनकी स्त्रियाँ क्या कर रही हैं? जो हाल यदुवंश का है, वही हाल कुरुवंश का। कांची, काशी, मद्र, पांचाल,

अंग, बंग, प्राग्ज्योतिष-सब जगह एक ही स्थिति है। सारा देश ही अकाल वैधव्य की कामना के ताप से रेत की तरह जल रहा है। जाओ तो सही, जलकर तुम्हारे पांव लाव्हा हो जाएंगे.....।”

बेटों के विरुद्ध बेटा : भैरप्पा.....प्रस्तुति.....नीलम सिंह

कृष्ण से अर्जुन ने पूछा, “अपने सगे-संबंधियों के विरुद्ध युद्ध करने से मुझे क्या मिलेगा?” इस प्रश्न का उत्तर देने की कोशिश व्यस ने भगवद्गीता के माध्यम से महाभारत में की। मगर अर्जुन का सवाल है कि, आज भी मुंह बाहे खड़ा जबाब मांग रहा है। आज जबकि, नियमबद्ध ढंग से आमने-सामने सिर्फ उजाले में दो-दो हाथ करनेवाली सेनाएं, हर नियम और मर्यादा को ताक पर धरकर एटम बमों से लैस हो चुकी है, तो लगता है कि अर्जुन के सवाल का जबाब अब कृष्ण नहीं बल्कि दुनिया भर के लोग ही दे सकते हैं। प्रस्तुत है इसी सवाल के कुछ पहलुओं को उजागर करता कन्नड़ उपन्यास ‘ पर्व ’ का एक अंश कि युद्ध आखिर क्या हासिल कर पाता है?.....

हिरोशिमा के फूल : एदिता मोरिस

आठ बजकर पंद्रह मिनट से आठ बजकर सोलह मिनट।.....और सिर्फ एक मिनट में साठ हजार घर जलकर राख हो गये। एक लाख आदमी झुलस गये या उनके चिथड़े उड़ गये। लेकिन जो मौत का ग्रास बनने से बच गये थे.....क्या हुआ उनका, कैसे घुंटा-घुंटा कर जिये, उधार की जिन्दगी जीते हुए लोग। पढ़िए हिरोशिमा के महाविनाश पर केंद्रित, अमेरिकी लेखिका के विश्वविख्यात उपन्यास का सारसंक्षेप कि किस प्रकार महाविनाश के सताये हुए लोगों से उनके अपने ही देशवासियों ने किनारा कर लिया.....(1945 तक हिरोशिमा, तीन सौ साठ साल की आयु का एक सम्पन्न समुद्री बंदरगाह था।)

गॅस चेंबर से फरार : क्लैर डी. हउरारी ब्रिटेन की कहानी.....प्रस्तुति----सुरजीत

“ जिन्दा रहना आदमी के लिए कितना जरूरी होता है, यह अहसास उस व्यक्ति से बेहतर किसे हो सकता है जो स्वयं मौत के मुंह का सामना करके लौट चुका हो। प्रस्तुत है हिटलर द्वारा युद्ध के दौरान गॅस चेंबर में हजारों लोगों को आदमजाद रूप में जला दिये जाने की लोमहर्षक कहानी एक भुक्तभोगी की जबानी। “

उंगलियों से लटके हुए सलीब : बाला दुबे

हालांकि भारतीय परंपराएं इस बात को नकारती हैं, फिर भी यह बात अब पूरी दुनिया ने मान ली है, कि युद्ध में सब किस तानाशाहों ने ‘ असंभव ’ शब्द डिक्शनरी से निकाल दिया है। इस सुरत में क्या ‘ नाजायज ’ के साथ भी यही सलूक करना होगा? युद्ध में हम क्या खोते हैं और क्या पाते हैं, इसके बहुत से जबाब देती हुई अन्य रचनाएँ पढ़ने से पहले यह आलेख कि किस प्रकार जिस सलीब पर यहूदियों ने निर्दोश ईसा को लटकाया था, उसी सलीब पर आस्था रखनेवाले एक पुरुष ने, लाखों यहूदियों को जीवनदान दे दिया। और मारे गये यहूदियों का संख्यात्मक हिसाब भी।

एक लघुकथा -

स्पेन की राजधानी माद्रिद में 1863 में एक डायरी पुरातत्त्वविदों को मिली। डायरी युकातान के आर्चबिशप दिएगो दे लांदा ने लिखी थी। प्रायः तीन सौ साल पहले, 1566 में उन्होंने मय खातों के आधार पर लिखा था, “ जब-जब देश में अकाल पड़ता, उस पर संकट आता, तब-तब पुजारियों और साधारण जनता का , पाताल के देवताओं को प्रसन्न करने के लिए जुलूस निकलता। पुजारी कीमती और पवित्र चढ़ावे की वस्तुएं लिये जाते और उन्हें बलि के कुएं में झोंक देते। चढ़ावे की इन वस्तुओं में लावण्यवती सुंदरियां और युद्ध में पकड़े गये तरुण होते। इस बलि-कूप को 1885-90 में टॉम्सन खोज निकाला।

नादिरशाही : नादिरशाह का कत्लेआम का हुक्म सुनते ही सुबह आठ बजे से दोपहर तीन बजे तक एक लाख बीस हजार दिल्लीवासियों को मौत के घाट उतार दिया गया था।

महाविनाश : राजनीति---मुंशीगंज बना जब जालियनवाला बाग-----महेश दर्पण

साम, दाम, दंड, भेद राजाओं से लेकर राजनेताओं तक सभी की नीति रही है। प्रशासन पर दबाव डालकर अफसरों, सिपाहियों और सैनिकों के कंधे पर बंदूक रखकर दागने का काम राजनीति और इजारेदारियों का प्रिय खेल है। यह खेल जनता के लिए प्रायः किस कदर संहारक हो उठता है, इसके कई नमूने हमारे देश में सांप्रदायिक दंगों के संदर्भ में बिखरे हुए हैं। इन नमूनों को बटोरना एक दर्दभरा काम है। इसलिए बहुत जरूरी है कि इनके अंजाम से सबक लिया जाए। अतः यह जानने के लिए कि यह सब क्यों, कैसे और किसलिए होता रहता है, प्रस्तुत है देश और विदेश में घटित नरसंहार की दो ऐसी भयावह घटनाएँ, जिनके बारे में, लोग बस न के बराबर ही जानते हैं। इस पृष्ठ पर प्रकाशित घटना उस जमाने की है, जब भारत में अंग्रेजों का राज था, पर इस नरसंहार के असल जिम्मेदार थे हमारे ही अपने लोग.....

सौ बरस की तनहाई : गार्सिया मार्खेज.....रूपान्तर.....रमाकान्त

अमानवीय स्थितियों में जी रहे, अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत तीन हजार मजदूरों को एक जगह एकत्र करके मशीनगनों की बौछारों से भून दिया जाये और उसके बाद सरकार कहे कि वहाँ न तो कुछ हुआ है और न कभी होगा, तो इसे की आप क्या कहेंगे? और खासकर तब क्या कहेंगे जब जनता भी यही यकिन कर ले कि हाँ यहाँ कोई नहीं मरा। प्रस्तुत है नोबेल पुरस्कार विजेता लेखक के विश्व प्रसिद्ध उपन्यास का एक अंश कि कैसे सैनिक सरकार और प्रशासन की मिलीभगत ने एक खूंखार हादसे को इस कदर सफाचट कर दिया कि न तो उसकी कोई गवाही मिली और न ही निशानी ही।

एक ऊंचा मकान : योगेश गुप्त

हिंदुस्तान में अकाल पड़नेवाला है..... हिटलर ने यहूदियों को चुन-चुन कर मारा था..... वियतनाम में नापाम बम से झुलसा एक बच्चा पांच घंटों तक रोता रहा..... कैनेडी के कत्ल की कहानी का रहस्य नहीं खुल सकता..... सायकिल पर पीछे बैठी पत्नी कूदकर भाग गयीं, सायकिल बस से टकरायी, पति खरबूजे की तरह पिंचर हो गया। ऊंचे मकानों से हो सकनेवाले विनाशों की ओर संकेत करती संवेदनात्मक कहानी....

- फिल्मी परदे पर उत्तरी विनाश लीलाएं : ब्रजेश्वर मदान

किसी दृश्य को लिखकर अंकित कर लेना जितना सहज है, तो उसे बाकायदा तैयार करके उसका फिल्मांकन करना उतना ही असहज। देश-विदेश के फिल्मकारों ने नीत नयी तकनीकों का इस्तेमाल करके कई ऐसी फिल्में बनायी हैं जिनमें महाविनाश की लीला अपने साकार रूप में प्रकट होकर दिल दहला देती है। इन सब फिल्मों में आइए देखें कि बाढ़, चेचक, सुखा, आग, ज्वालामुखी, बम विस्फोट, तुफान, आंधी आदि आपदाओं का फिल्मांकन किस प्रकार किस रूप में और किस उद्देश्य से किया गया है.....

1953 में कॉन फिल्म फेस्टिवल में इटली और फ्रांस द्वारा निर्मित फिल्म ' वेजेज ऑफ फियर ' को ' ग्रैंड प्रिक्स ' अवॉर्ड मिला था। पूंजीवादी व्यवस्था की पृष्ठभूमि में मजदूरों पर होते अन्याय और मानवीय त्रासदी को चित्रित करनेवाली इस फिल्म को दुनिया की सर्वश्रेष्ठ फिल्मों में गिना जाता है।

हॉलिवुड में महाविनाश की लीला पर्दे पर दिखाने की शुरुआत निकोलस मेयर की फिल्म ' टावरिंग इन्फर्नो ' से हुई। इसमें एक गगनचुंबी इमारत में आग लग जाने की कहानी है। भय और आतंक के उस वातावरण में भी, जीवन के लिए संघर्ष, फिल्म को एक मूल्य प्रदान करता है। हालांकि एक-एक करके सब बचाव कार्य असफल हो जाते हैं। बस, एक ही रास्ता रह जाता है कि छत पर जो पानी की टंकी है उसे बम से उड़ा दिया जायें। लोग पानी के बहाव से बह न जायें, इसलिए अपने आप को बांध लेते हैं। कुछ हैं जो पानी में बहने के डर से अपने को खोलकर भाग जाते हैं और उस बहाव के साथ बह निकलते हैं। फिल्म आदमी के अदम्य साहस से, विनाश पर विजय के साथ समाप्त होती है।

भारत में-

\$ बर्निंग ट्रेन टॉवरिंग इन्फर्नो नहीं बन सकी।

\$ यश चोपड़ा ने महाविनाश की फिल्म के लिए कहानी चुनी, चासनाला कोयला खदान वाली दूधटना। लेकिन खदान में पानी भर जाने के बाद मौत की लड़ाई ने भी रूप ले लिया हिरो और व्हिलन की लड़ाई का। ' काला पत्थर ' बुरी तरह फ्लॉप हुई।

\$ बी.आर. चोपड़ा ने भूचाल की पृष्ठभूमि में फिल्म बनायी ' वक्त ' । लेकिन फिल्म सारे फिल्मी मसालों से युक्त थी। भूचाल की त्रासदी दब गयी।

\$ राजकपूर ने ' सत्यम शिवम सुंदरम ' में बाढ़ का दृश्य ठूस दिया।

मुनाफे पर नजर रखनेवाली बॉलीवुड से क्वालिटी की उस ऊंचाई की अपेक्षा भी नहीं कर सकते। यह भी एक दुःखद स्थिति है, जो फिल्मकार मानवीय त्रासदी की सही और सच्ची फिल्म बनाते हैं, उनका सिनेमा मुख्य धारा में नहीं है। 1980 में मृणाल सेन ने 1943 के बंगाल में पड़े अकाल पर ' अकालेर संघाने ' फिल्म बनायी थी। यह फिल्म कई आयाम लिये हुए थी। 1946 में ख्वाजा अहमद अब्बास ने भी बंगाल के अकाल पर ' धरती के लाल ' बनायी थी, जिसमें बताया था कि यह अकाल प्राकृतिक नहीं, मानव निर्मित विनाश है।

प्रकरण १४

अपराध-कहानियाँ

कुछ लघु कथाएं-

- 1) दो आदमियों के बारे में बातें हो रही थीं, जिनमें एक जज था तो दूसरा पादरी। “मेरी राय में, जज और पादरी में कोई फर्क नहीं होता। जज कहता है कि गुनाह करनेवाले को फांसी दी जायेगी और पादरी कहता है कि पाप करनेवाला नर्क में जायेगा।”

“ फर्क सिर्फ इतना से,” दूसरे व्यक्ति ने कहा, “ जब जज किसी के बारे में कहता है कि उसे फांसी दी जायेगी तो उसे सचमूच फांसी दी जाती है, जबकि पादरी के कहने पर कोई अपराधी नर्क में नहीं जाता।”,

- 2) “ मैंने सबसे पहले जो जेल देखी, उसकी दीवार पर लिखा हुआ था, ‘ बुराई करना छोड़ो, अच्छे बनना सीखो।’ लेकिन यह बात जेल की बाहर की दीवार पर लिखी हुई थी, जहाँ पर कि कैदी उसे पढ़ नहीं सकते थे।”.....जॉर्ज बर्नार्ड शॉ

(सारिका: अपराध कथा विशेषांक एक)

- 3) डाकुओं का डाकू : एक बार पंडित नेहरू कार में कहीं जा रहें थे कि रास्ते में कुछ डाकुओं ने उनकी कार रोक ली। वास्तव में उन्होंने इसे किसी सेठ की कार समझ ली थी, जिसे लुटने वे घात लगायें बैठे थे।

पंडित जी ने कार से निकलकर कहा, “ मैं जवाहरलाल नेहरू हूं, कहिये क्या चाहिए?”

सुनकर डाकुओं को हैरानी हुई। तभी उन्होंने पंडित जी को प्रणाम किया और रुपयों से भरी एक थैली पेश की। नेहरू जी ने थैली ले ली और खाना हुआ। बाद में जब उन्हें पता चला कि वे लोग डाकू थे, तो उन्होंने कहा, “ अच्छा तब तो मैं डाकुओं का भी डाकू साबित हुआ।”.....(अपराध कथा अंक दो)

अपराध

- बहुत कम लोग ऐसे होते हैं, जो जन्मतः ही अपराधी प्रवृत्ति के होते हैं। अधिकांश अपराधी सामाजिक, आर्थिक और प्रशासनिक दबावों के कारण बनते हैं। चंबलघाटी डासेकुओ का इतिहास इस बात का प्रमाण है।
- हमारे पुरामनिषी कहते हैं कि अपराध से घृणा करो अपराधियों से नहीं। इसका सीधा अर्थ है कि अपराधियों को समाप्त करने से कुछ नहीं होगा। व्यक्ति तो समाप्त हो जाएंगे लेकिन नये उभरकर आ जाएंगे। जबतक अपराधी प्रवृत्तियाँ नष्ट नहीं होगी तबतक अपराध भी समाप्त नहीं होंगे। प्रयत्न इन प्रवृत्तियों को समाप्त करने का होना चाहिए। अपराधी को सुधरने का मौका देना चाहिए।
- लेकिन यह भी सत्य है कि भले ही अल्प संख्या में हो लेकिन कुछ लोगों की प्रवृत्ति मूलतः अपराधी होती है।

- कभी-कभी ऐसी बातें और प्रवृत्तियाँ अपराध बन जाती हैं, जो समाज में महत्वपूर्ण और उपयोगी होती हैं। जैसे सच बोलना अच्छा गुण है लेकिन उससे अगर किसीको नुकसान पहुंचता हो तो वह गलत बात या अपराध की श्रेणी में आ जाएगा।
- कभी कुछ चीजों का उपयोग अपराध का आधार बनता है। जैसे वैज्ञानिक खोजें। उनका उपयोग मानवीय भले के लिए भी किया जा सकता है और बुरे के लिए भी। महत्वपूर्ण है उपयोग के पीछे का उद्देश्य।
- अपराध भाव के पीछे औरत, अर्थ और अधिकार भावना, विशेष रूप से क्रियाशील रहते हैं। सत्ता का मद कई ढंग के अपराध करवाता है।
- आजकल नारी-पुरुष के संबंधों के बीच की जटिलता भी अपराधों में निरंतर वृद्धि करवा रही है। भौतिक सुखों की लालसा तो कारण है ही।
- हम अपराधों को एक घृणित सामाजिक समस्या मानते हैं तो दूसरी ओर आज उसने ग्लैमर का रूप भी ले लिया है।
- ऐसी प्रवृत्ति को मनोविज्ञान एक मनोविकृति मानता है। आज अपराधी की शरीर संरचना, उसमें आया परिवर्तन और उसके मनोविश्लेषण में अपराध की जड़ें तलाशी जाने लगी हैं।
- खलील जिब्रान की दृष्टि में अपराध का अर्थ विवेक-बुद्धि का अनुपस्थित होना है।
- कभी-कभी पता चलता है कि किसी एक अपराध के पीछे अनेक अपराधों के लम्बे सिलसिले की एक दर्दनाक दास्तान छिपी होती है। हर अपराध के पीछे, केवल व्यक्ति के रूप में, एक व्यक्ति की ही नहीं, पूरे समाज, परिवेश और देश की स्थिति की छाया होती है। और होते हैं सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा मनोवैज्ञानिक संदर्भ।
- ऐसा बताया जाता है कि नेपाल के तराई इलाके में, जनकपुर के पास, खानदानी चोरों का एक विख्यात गांव है।
- आजादी मिलने के पहले ब्रिटिशों द्वारा हमारे देश की पूरी की पूरी कई जमातों को ' अपराधी जाति ' के तौर पर घोषित कर दिया जाता था।
- अपराध प्रवृत्तियों की वृद्धि में फिल्मों का योगदान : ऐसा कहा जाता है कि आजकल फिल्म उद्योग पूरी तरह पूंजी की गिरफ्त में है। इस कारण अधिकतर ऐसी फिल्में बनायी जाती हैं जिनका समाज की उन्नति में कोई योगदान नहीं होता। फिल्म निर्माता कहता है, "व्यापार की दृष्टि से, जैसी फिल्मों की मांग होगी उसी तरह का उत्पादन होगा। प्रेक्षक ऐसी ही फिल्में पसंद करते हैं।" लेकिन उसका परिणाम भी दिखाई देता है, जब हम सुनते हैं कि व्यक्ति ने अपराध की कल्पना और टेक्निक अमुक फिल्म से उठाई। अब इस चक्कर में यह निश्चित करना मुश्किल है कि कौन किससे प्रभावित हो रहा है। दोष किसे दिया जाय?

- अपराधों का परिणाम : अपराधी की प्रवृत्तियों का प्रभाव केवल उसी पर नहीं पड़ता। अपितु उसके पूरे घर-परिवार पर, पर्याय से जन-जीवन पर, पूरे समाज पर पड़ता है। सबसे घातक परिणाम यह है कि, इन अपराधों के कारण पनपती हुई वह स्थिति, जिसमें मनुष्य का मनुष्य पर से विश्वास कम हो रहा है। इन परिस्थितियाँ के चलते, ईमानदारी ही एक अपराध सा लगने लगी है।
- अपराधों की रोकथाम :
- यह सही है कि अपराध प्रवृत्ति भी मनुष्य की एक सहज-स्वाभाविक प्रवृत्ति है। लेकिन उसपर नियंत्रण भी आवश्यक है। सामाजिक सुव्यवस्था के लिए नीति-नियमों को बनाना, उनका नियमन और पालन आवश्यक है। उनका उल्लंघन अपराध की श्रेणी में आता है।
- पुराने समय में राजदंड की अपेक्षा धर्मदंड कहीं अधिक कारगर सिद्ध होता था। चूंकि वह व्यक्ति और समाज पर एक तरह का अव्यक्त मानसिक दबाव बनाये रखता था। लेकिन बाद में धर्म का उपयोग युद्ध के लिए और दंगा करवाने के लिए होने लगा। इतिहास बताता है कि धर्म के नाम पर जितना खूब-खराबा हुआ उतना अन्य किसी कारण से नहीं। युद्ध और खून-खराबे को तो अपराध की श्रेणी में ही रखना होगा।
- पुराने जमाने में समाज के घटकों में उभरतेवाले विवादों के संदर्भ में पंच फैसले वाले व्यक्ति को ' मध्यमसी ' कहा जाता था। बाद में तैत्तरीय संहिता में गाँव के न्यायकर्ता को ' ग्राम्यवादिन ' कहा जाने लगा।
- वैसे अगर पुलिस चाहे तो अपराधों की काफी हद तक रोकथाम हो सकती है। लेकिन भारतीय पुलिस जनता का विश्वास जितने में बुरी तरह असफल रही है। अक्सर सुना जाता है कि पुलिस संरक्षण की अपेक्षा लोग अपराधियों के संरक्षण में स्वयं को अधिक सुरक्षित अनुभव करते हैं। पुलिस का कहना है कि जनता उनके साथ सहयोग नहीं करती। जनता कहती है कि पुलिस के पास जाकर कौन अपनी कुत्ताघसिटी करावे?
- जब मनुष्य किसी भी कारण से अपराध करने के लिए तैयार होता है, तो उसके शरीर में कई प्रकार के रासायनिक तथा मनोवैज्ञानिक परिवर्तन होते हैं। स्वयंचलित तंत्रिका-प्रणाली की जरिए शरीर की पूरी प्रणाली तैयार हो जाती है। (यह बात तब भी होती है, जब वह अपनी सुरक्षा की चिंता में लग जाता है।) इसीके अंतर्गत उसका जमीर भी उसको संकेत देता है। एक संकेत उसे अपराध के लिए उकसाता है तो दूसरा रोकने का प्रयत्न करता है। इन दोनों में से कौनसा अधिक प्रभाव डालने में सक्षम होता है इसपर उसकी अगली कृति निर्भर होती है।
- परिचर्चा : अपराध / पुलिस / नेता / जनता : आयोजक : श्रीकांत शर्मा

प्रश्न यह है कि क्या पुलिस, समाज से अपराधों का पूर्ण उन्मुलन कर सकती है? क्या पुलिस को इसमें जनता का सहयोग मिलता है? जनता की नजर में पुलिस विभाग क्या है? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जिनपर कुछ पुलिस अधिकारियों एवं बुद्धिजीवियों के विचार इस प्रकार हैं—

- 1) पुलिस चाहे, और अपराध समाप्त न हो, संभव नहीं।.....डॉ. एल.एन.वैश (चिकित्सक)
- 2) जनता पुलिस में विश्वास खो बैठी है।....रवि चतुर्वेदी (प्राध्यापक)
- 3) पुलिस कर्तव्यों को पूरा करने में असफल रही है। आदित्य अवस्थी (संवाददाता)
- 4) जनता पुलिस को काफी सहयोग देती है।.....सुभाष टंडन (पुलिस आयुक्त)
- 5) अपराध सामाजिक-आर्थिक क्रिया है।....निखिल कुमार (आयुक्त)
- 6) बुरों को अच्छा बनाने का काम, केवल पुलिस का नहीं।.....आर.एस.सहाय (उपायुक्त)
- 7) पुलिस को सहयोग देना, कानून का साथ देना है।.....जे.पी.सिंह (उपायुक्त)
- 8) पुलिस यदि आजाद हो।....आर.जी.मेहरोत्रा।

अपराध कथा विशेषांक “ दो “

यातना शिविर के पिघले हुए लोग-----विकास कुमार

- अपराध के ऐवज में सजा की परंपरा की शुरुआत, शायद आदिम सभ्यता के उभरने के साथ ही हो गयी होगी।.....लेकिन इस सिलसिले ने आज क्या रूप ले लिया है?...जरा देखें कि अपराधियों पर अपराध करनेवाले कैसे होते हैं?
- जो आपराधिक संसार के सक्रिय सदस्य होते हैं, उन्हें समाज असामाजिक तत्वों का खिताब देता है। मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में ऐसे लोगों को मानसिक विकृतियों का शिकार माना जाता है
- अपराध के ऐवज में सजा, के पीछे मूल इरादा रहा होगा कि अपराधी अपने किये पर पुनर्विचार कर, खुद में बदलाव लाये।
- लेकिन वर्षों बाद जब कैदी जेल से निकलता है, तो अपराधों की हर ताजा तकनीक से लैस होता है। जेल को उद्योग कहें, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। क्योंकि अपराध की हर विधा में माहिर अपराधियों का उत्पादन यहाँ थोक भाव में होता है। अपराधों की तकनीकों की आपसी लेनदेन।
- प्रति वर्ष कारा प्रशासन और व्यवस्था पर करोड़ों रुपये का आय-व्यय उपबंध प्रस्तावित होता है। लेकिन जेलों को मिलनेवाले तमाम आर्थिक स्रोत जेल अधिकारियों के जमा खाते में वृद्धि के सिवाय और कोई भूमिका नहीं निभा पाते।
- जब लॉर्ड कॉर्नवालिस, बंगाल के शासक होकर आये तो उन्होंने जेल प्रशासन की कमियों को दूर करने के लिए कई कदम उठाये। इसी क्रम में 05-10-1792 को उनकी सरकार ने जेल संबंधी एक प्रस्ताव भी पारित किया। जेलों की स्थिति पर लॉर्ड मेकॉले का भी विशेष ध्यान था। 1836-38 के दरम्यान जेलों की दशा के सुधार के लिए कई महत्वपूर्ण सुझाव भी उन्होंने दिये। इसी बीच 1838 में

ही प्रथम जेल कमिशन की रिपोर्ट भी आ गयी। लेकिन उसके सुझावों पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। बाद में 1964 और 1967 में और दो कमिशन गठित हुए। उनकी रिपोर्ट्स भी बेअसर सिद्ध हुईं। भारतीय जेल समिति ने भी 1920 में कुछ विशेष सुझावों के साथ अपनी रिपोर्ट दी और जेलों को चार श्रेणियों में विभक्त करने का सुझाव दिया। उसपर आंशिक रूप से ही अंमल हुआ।

आजादी के बाद, न्यायमूर्ति आनंद नारायण मुल्ला की अध्यक्षता में राष्ट्रीय स्तर पर गठित जेल सुधार समिति ने गृह मंत्रालय को अपनी रिपोर्ट दी। जिसमें कई अच्छे मशविरे सरकार को दिये। रिपोर्ट में कहा गया कि 1894 के कारागार अधिनियम की धारा 30 को निरस्त कर उसकी जगह वैसे कैदियों के संग अच्छे और मानवीय व्यवहार किये जाने संबंधी नये कानून बनाये जाये। समिति का कहना है कि इस धारा के तहत मौत की सजा पाये बंदियों के लिए सुरक्षात्मक व्यवस्था इस तर्क पर आधारित है कि ऐसे बंदी बेहद खतरनाक होते हैं। ऐसे कैदियों को कड़ी चौकसी में सबसे अलग-थलग रखा जाता है। मुल्ला समिति ने कहा है कि मौत की सजा सुनाये जाने तथा फांसी पर चढ़ाये जाने के बीच का समय काफी लम्बा खींचा जाता है और तबतक ऐसे कैदियों को भयंकर मानसिक तनाव से गुजरना पड़ता है। जेल की हालत पर रिपोर्ट देने के सिलसिले में समिति ने कई प्रान्तों और संघीय क्षेत्रों की जेलों का सर्वेक्षण किया और समिति के सदस्यों ने जो कुछ पाया वे अंतिम हद तक क्रूर और हैरतअंगेज पहलू थे।

इसी तरह कुछ साल पहले टेकचंद समिति ने भी अपना प्रतिवेदन दिया था पर सब व्यर्थ।

“ मुझसे वह बात आज भी नहीं भुलायी जाती। जेल के नक्सली कैदी का वह सपना। विश्वविद्यालय की परीक्षा में वह अपने विषय में अव्वल आया था लेकिन जाने कैसे वह नक्सली आंदोलन के प्रभाव में आ गया। फिर शुरू हो गयी थी उसके साथ बेहोशी की हद तक की मार और जेलों का सफर।”

(महिला नक्सली कैदियों पर जेलों में किये गये अत्याचारों की कहानियाँ तो और भी भयंकर हैं। उसमें कानून के रखवालों की चहेती कृति थी ऐसी कैदी के गुप्तांग में रॉड डालकर उसे मथना।)

मेरी टायलर : दिसंबर 1969 में मेरी टायलर अपने बंगाली मित्र अमर्लेंदु सेन से मिलने भारत आयी, जिनसे उसकी मुलाकात प.जर्मनी में हुई थी। अप्रैल 1970 में उन दोनों ने विवाह कर लिया। मई 1970 में दोनों को गिरफ्तार कर लिया गया। उनपर आरोप था कि उन्होंने नक्सलवादी दल के साथ मिलकर विद्रोह करने का षड्यंत्र रचा। पांच साल से अधिक समय तक मेरी टायलर, बिहार की जेलों में बिना मुकदमे के, बंद रही। आपातकाल जारी होने पर, अचानक उसे रिहा करके जबरदस्ती वापस ब्रिटेन भेज दिया गया। मेरी ने भारत के बारे में बहुत से लेख आदि लिखे हैं। लेकिन उसकी पुस्तक ‘ माय इयर्स इन इंडियन प्रिज़न ‘ विशेष रूप से प्रसिद्ध हुई। वह भारत के जेलों की बिगड़ी हुई भीषण स्थितियों का जीवन्त दस्तावेज़ है।

- भारत के कारागृहों की स्थिति----(31-12-2021 के राष्ट्रीय अपराध नॉंद विभाग के अहवाल के अनुसार)

1) देश में कारागृहों की संख्या....1319 (मध्यवर्ती कारागृह..148, जिला कारागृह..424)

2) कैदी रखने की क्षमता 4,25,609

3) प्रत्यक्ष में कैदी.....5,54,034 (इनमें दंड प्राप्त..1,21,772, विचाराधीन..4,23,150)

4) मौत की सजा प्राप्त..561..(सुप्रीम कोर्ट ने 2021 के बाद दूसरी बार किसी वर्ष में किसी दोषी की मौत की सजा कायम नहीं रखी....लोकमत समाचार..11-02-2024।

- मृत्युदंड का विचार : तारिक अस्लम ‘ तस्निम ‘

“ कानून के रक्षकों का विचार है कि समाज को प्रतिशोध अवश्य लेना चाहिए। अपराधी को सजा अवश्य मिलनी चाहिए। जबकि प्रतिशोध एक व्यक्तिगत कार्य है। दंड देने का अधिकार तो भगवान को है। समाज का रास्ता तो प्रतिशोध और दंड इनके बीच से निकलता है। समाज का दंड देने का विचार उसके अधिकार क्षेत्र के बाहर है। प्रतिशोध लेना भी समाज का काम नहीं है। इसलिए समाज को प्रतिशोध के लिए कभी दंड नहीं देना चाहिए। बल्कि उसे अपराधी को सुधारने के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

मृत्युदंड के समर्थकों की अंतिम दलील ‘ उदाहरण का सिद्धांत ‘ है। जिसके अनुसार अपराधियों को ‘ सबक ‘ देने के लिए उदाहरण स्थापित करना चाहिए। इससे अपराधी के मन में भय का जन्म होता है। वह अपराध करने के पहले दस बार सोचेगा। लेकिन व्हिक्टर ह्यूगो इस विचार से सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार मृत्युदंड से ये इच्छित प्रभाव नहीं पड़ते। बल्कि लोगों के मस्तिष्क पर ऐसे भयंकर दृश्यों से खतरनाक प्रभाव जन्म लेते हैं, जिससे मन की अनुभूति प्रभावित होती है। नैतिकता पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है।

फिर तुम एक ऐसे व्यक्ति को समाप्त करते हो जो शुरू में एकदम भोला था, जिसके बाल-बच्चे थे। वास्तव में केवल एक व्यक्ति की जिंदगी समाप्त नहीं होती। सच पुछा जाय तो तुम ऐसा करके ‘ मासूमियत ‘ को भी फांसी पर लटकाते हो। परिवार, बाल-बच्चों का सहारा टूट जाता है। उनका क्या होगा? उसका बेटा भी बड़ा होकर जेल की सिखचों के पीछे नज़र आयेगा और बेटी अमीरों की शारीरिक प्यास बुझायेगी।

जहाँतक मृत्युदंड का प्रश्न है, यह बर्बावस्था अंतिम कहानी है। इसलिए इसे पूरे मानव जाति से नष्ट कर देना चाहिए। कई देशों ने किया भी है।

- अपराध, पाप, पश्चात्ताप

“ समाज में सबकी सुख-सुविधा के लिये कुछ नियम बनाये जाते हैं। उनका उल्लंघन अपराध की श्रेणी में आयेगा। अपराध की यह सरल सी व्याख्या है। इसका संबंध तत्कालिक से है।”

लेकिन काल और दिक् का विस्तार तो असीम है। और निरन्तर विकास, प्रकृति का नियम है। वह एक ऐसी प्रक्रिया है जो ऐसे नियमों को स्थिर और स्थायी रहने ही नहीं दे सकती अर्थात् शाश्वत कुछ नहीं है। नियम ही नहीं तो नैतिक मूल्य भी एक दिन जड़ और अर्थहीन हो जाते हैं। भले ही हम उनसे चिपके रहते हैं। यह बात व्यक्ति को ही नहीं तो पूरे समाज को पंगु बना देती है।

फिर भी मनुष्य जीवन में कुछ चीजों को देश और काल निरपेक्ष मानना पड़ता है अर्थात् सभी कालों में और सभी स्थानों के लिए जो अपेक्षित हैं। और यहाँ आ जुड़ती है एक संकल्पना, पाप की। इस शब्द की

व्याप्ति बहुत अधिक है। पाप का अर्थ लिया जाता है, हृदय और जीवन में नैतिकता, सुचिता और सत्य का अभाव। तमाम दुराचार, पर धन की आकांक्षा, पर स्त्री की आकांक्षा आदि को पाप माना जाता है, सभी कालों, और स्थानों के लिए। फिर भी पाप की व्याख्या करना बहुत कठिन है, अगर कुछ भी शाश्वत नहीं है।

क्या ऐसा कृत्य हो सकता है, जो अपराध है लेकिन पाप नहीं है.....और पाप है लेकिन अपराध नहीं है। उदा. अगर किसी सत्य से किसी का बुरा होता होगा तो झूठ बोलना।

- अपराधोत्तर पश्चात्ताप : अपराध, मानवता को होनेवाली पीड़ा को व्यक्त करती मूर्ति....

“जापान की धरती पर हिरोशिमा की तबाही का कारण बनानेवाले, एटम बम को जहाज से नीचे गिरानेवाले पायलट पर उसके बाद क्या बिती? यह काम वस्तुतः आज्ञापालन का था, कर्तव्य था या पूरी मानवता के प्रति घोर अपराध?.....सुखबीर

क्लॉड इदली अपने आपको हिरोशिमा की तबाही का सबसे बड़ा अपराधी मानता था। 06-08-1945 को हिरोशिमा पर पहला अणुबम गिराया गया जिसने एक साथ अस्सी हजार व्यक्तियों का संहार कर डाला। हिरोशिमा का साठ प्रतिशत हिस्सा मिट्टी में मिल गया। उस विस्फोट के कारण निकले विकिरण से जन्म लेनेवाले भयानक परिणामों को जापान दशकों तक भुगतता रहा। वास्तव में जब बम गिराया गया था तब अमेरिकी वायुसेना का विमान चालक क्लॉड इदली अपने निरीक्षक विमान में बैठा वहां से 200 मील दूर था। मानस चिकित्सकों का मानना था कि क्लॉड मानसिक रूप से स्वस्थ जीवन कभी भी जी नहीं पायेगा। चूंकि हिरोशिमा की तबाही के इतने बड़े अपराध को पचा पाना उसके लिए संभव नहीं।

लेकिन इदली के उलट, उस व्यक्ति में जरासी भी अपराध बोध की भावना नहीं थी, जिसने वास्तव में हिरोशिमा पर अणुबम गिराया था। वह व्यक्ति था पायलट कमांडर कर्नल टिबेट्स, जिसे सरकार ने ‘विशिष्ट उड़ान क्रॉस’ देकर सम्मानित किया था। इदली संबंधित छपनेवाले समाचारों और देशव्यापी चर्चा के कई सालों बाद जब टिबेट्स ने अपनी चुप्पी तोड़ते हुए बताया था कि हिरोशिमा पर इदली ने नहीं बल्कि खुद उसने बम गिराया था, तो लोगों को हैरानी हुई थी कि वह इतने साल चुप क्यों था? और क्या इतने बड़े नरसंहार का उसे कोई पछतावा नहीं है? ऐसे प्रश्नों के उत्तर में मितभाषी टिबेट्स ने बड़े सहज भाव से कहा था, “भला मैं अपने को अपराधी क्यों समझूँ? मैंने यह कभी नहीं सोचा कि मुझे दी गयी आज्ञा सही थी या गलत। मैंने अपना कर्तव्य पूरा किया था।”

मृत्यु की प्रतीक मूर्ति : ‘ इसका नाम है हिरोशिमा ’

हिरोशिमा की विरानी में, कंक्रीट की बनी, छह फीट उंची एक विशाल मूर्ति खड़ी है, जिसके चेहरे पर भयानकता है, पीड़ा है, निराशा है। हाथ की तर्नी हुई उंगलियां एक गाल में धंसी हुई हैं, मुंह खुला हुआ है। ऊपर उठी हुई भौंहों में एक अनंत शून्यता है। एक आंख में से केवल आकाश दिखाई देता है और दूसरी आंख में एक काली पुतली है। एक छूती, उस आंख में से हवा गुजरती है, वह चीखती है, कराहती है। उन मृतकों और जीवित लोगों का शोक मनाती है जो अभी तक अभिशाप भुगत रहे हैं और अणुबम की तबाही से छुटकारा

नहीं पा सके हैं।.....यह मूर्ति सोवियत आर्मेनिया के प्रसिद्ध कलाकार आर्ती चकमकचान ने बनायी थी और जापान को उपहार स्वरूप भेंट की थी।

(अणुबम से प्रभावित लोगों को जापान में ' हिबाकुशा ' कहते हैं। और इनके द्वारा अणु संहार को विरोध करने बनायी संस्था है ' निहॉन हिदान्क्यो '।

- एक दृष्टि एक कथन : डॉ. देवेश ठाकुर

अपराध प्रवृत्ति का सिलसिला पुराण काल से शुरू होता है। सामाजिक सुव्यवस्था के लिए नीति नियम-नियमन और उनका पालन आवश्यक होता है। उनका किसी उल्लंघन अपराबोध है। अपराध में जिस प्रकार किसी न किसी स्तर का पापबोध होता है। उसी प्रकार इसके अंतर्गत एक पक्ष के प्रति अत्याचार का भाव निहित रहता है। यह बड़ी दिलचस्प बात है कि नीति-नियमों का निर्माण समाज के विशिष्ट वर्ग द्वारा किया जाता है और इसे तोड़ने की शुरुआत भी बहुधा इसी वर्ग द्वारा होती है। यह सिलसिला नया नहीं है। आदिम युग से अपराध होते आये हैं। यह ठीक है कि यहाँ आते-आते आज उनका स्वरूप बदल गया है।

प्राचीन काल में अपराध के प्रकार सीमित थे। पहले जमाने में अपराध नैतिक मान्यताओं के उल्लंघन और आदर्शों की उपेक्षा के रूप में होते थे। हमारा पूरा पौराणिक साहित्य इसका प्रमाण है। राम द्वारा सीता त्याग का प्रसंग तथा उनके द्वारा शंबूक की हत्या, आज की दृष्टि से राम को अपराधी के कटघरे में खड़ा कर देती है।....आज के सामाजिक नज़रिए से देखें तो राम ही नहीं रामायण के अन्य पात्र भी कम अपराधी नहीं। निरपराध शंबूक की हत्या के प्रसंग में राम का अपराध और भी बड़ा हो जाता है। अंधविश्वासी और अहंकारी ब्राह्मण वर्ग का कोपभाजन बनने से बचने के लिए उन्होंने एक निरपराध शूद्र तपस्वी की जान ले ली। आज के संदर्भ में इस अपराध को कैसे नजरअंदाज किया जा सकता है?

रामायण के पात्रों से कई अधिक अपराधिक कृत्य महाभारत के पात्रों ने किये हैं। द्रोणाचार्य ने एकलव्य का अंगुठा इसलिए कटवा लिया ताकि उसके शिष्य अर्जुन की बराबरी करनेवाला कोई न होने पाए। (ज्ञातव्य है कि एकलव्य के वंशज आज भी धनुष-बाण चलाते समय दाहिने हाथ के अंगुठे का प्रयोग नहीं करते। उनके अनुसार इसे तो बहुत पहले गुरु-दक्षिणा में दिया जा चुका है)

पुराणों में और भी अनंत कथाएँ हैं, जो विभिन्न पात्रों की अपराधी प्रवृत्तियों को उजागर करती हैं।

वैसे बुद्ध के बाद का बौद्ध समाज भी कितना पतीत, अपराधपूर्ण षड्यंत्रों से आपूर्ण और निकृष्ट था इसका प्रमाण हमें ' बाणभट्ट की आत्मकथा ' (हजारीप्रसाद द्विवेदी) और ' कुणाल की आंखें ' (आनंद प्रकाश जैन) जैसे साहित्य से मिल जाता है। कालिदास के ' अभिज्ञान शाकुन्तलम् ' में प्रियवंदा, अन्सुइया (शकुन्तला की प्रियतम सखियाँ) के संदर्भ में हमारे सम्मुख कण्व ऋषि की अपराधिक प्रवृत्ति स्पष्ट होती है।

अपराध वृत्ति की शुरुआत हमेशा समाज के प्रतिष्ठित और सम्पन्न वर्ग से होती है, जिसके पास अधिकार और अर्थ है।

- अपराध कथा साहित्य :

विश्व के प्रायः सभी शिर्षस्थ कथाकारों ने श्रेष्ठ अपराध कथाएँ लिखी हैं....

विश्व इतिहास के झरोखे से....हरिमोहन शर्मा

लेकिन कहा जाता है कि हिन्दी साहित्य में श्रेष्ठ अपराध कहानियों का अभाव है। क्या कारण है?

वैसे देखा जाए तो पुराने साहित्य जैसे नीति कथाएँ, रामायण, महाभारत आदि में अपराध कथाओं का शुद्ध अभाव नहीं है। यहाँ तक कि सुमेर, मिश्र, चीन की अनेक दंतकथाओं में सीधी-सादी अपराध कथाएँ मिलती ही हैं। इसापनीति से उदाहरण के तौर पर यह कथा दी जाती है....' वनराज सिंह ने लोमड़ी से पुछा, “जब अन्य सभी प्राणी मेरे प्रति आदर व्यक्त करने मेरे दरबार में आते हैं तो तुम क्यों नहीं आती? आखरी में तुम भी तो मेरी प्रजा ही हो” लोमड़ी ने आदरपूर्वक कहा, “बेअदबी के लिए क्षमा चाहती हूँ, बंदापरवर। लेकिन मेरे न आने का एक कारण है। आपकी मॉद में जहाँ आपका दरबार है, मैं अन्य पशुओं के खुरों के अंदर जाने के निशान तो देखती हूँ, लेकिन बाहर आने के नहीं।”

कुछ विद्वानों का मत है कि अपराध तो एक बिमारी है, विकृति है। वह साहित्य का विषय कैसे हो सकता है? हमारे देश में अभी भी तुलसी, कबीर, मीरा पढ़ी जाती हैं। ऐसे समाज में अपराध, साहित्य का विषय कैसे हो सकता है? क्या मूल्यों की इस प्रतिबद्धता ने इस साहित्य विधा को अवरुद्ध कर रखा है? लेकिन इतनी प्रतिबद्धता के बावजूद भी हमारा समाज अपराधों से मुक्त नहीं है। समाज में जो हो रहा है, उसका केवल चित्रण, श्रेष्ठ साहित्य नहीं है। उसे ज्यादा से ज्यादा पत्रकारिता कहा जा सकता है। तो उस पार्श्व में क्या होना चाहिए इसका मार्गदर्शन साहित्य में होना चाहिए। उसीमें से श्रेष्ठ साहित्य निर्मित होता है। लेकिन यह पार्श्व की अनदेखी करके कैसा संभव है?

हां, एक बात है, उच्च अपराध साहित्य की निर्मिती के लिये लेखक को अपराधियों के बीच उठना-बैठना, उनका मनोविज्ञान समझना, वे जिस स्थिति में जी रहे हैं, उसकी अनुभूति लेना होगा। लेकिन भारतीय लेखकों के संभ्रान्त समाज में यह बहुत कठिन है।

वास्तव में अपराध साहित्य का वाचक वर्ग भी बहुत बड़ा है। लेकिन अपराध कथाओं के नाम पर सनसनीखेज और मसालेदार घटनाएँ परोसी जाती हैं। वे पाठक के मन में जुगुप्सा तो पैदा करती हैं लेकिन अपराधों समझने या रोकने में सहायक नहीं होतीं। अपराध कथाओं से अपराध के विश्लेषण का व्यापक और सुलझा हुआ स्वरूप प्रस्तुत होना चाहिए।

साहित्य के माध्यम से अपराधों की पड़ताल खराब या दोयम दर्जे की चीज नहीं है। सवाल यह है कि उसे किस दृष्टिकोण से लिखा गया है। यदि उसे लोककल्याण की दृष्टि से लिखा गया है तो उसका स्वागत ही होना चाहिए। किसी ने कहा है कि सार्थकता प्रश्न का उत्तर पाने में नहीं तो उससे जुझने में है।

हिन्दी कहानी की शुरु की अवस्था में प्रेमचंद और प्रसाद जैसे लेखकों द्वारा आदर्शवाद को महत्व दिया गया। फिर भी प्रेमचंद जी की कहानियों में सामाजिक स्तर पर होनेवाले अपराधों की झलक मिलती है।

- आधुनिक अपराध कथाओं की शुरुआत :

उपरोक्त पार्श्व में यह मानना पड़ेगा कि आधुनिक अपराध कथाओं का जन्म और विकास इंग्लैंड तथा यूरोपीय देशों में हुआ। फ्रांस, इटली, जर्मनी आदि की अपराध कथाओं में अन्त में पराजय तो अपराधी की ही होती है , लेकिन काफी देर बाद। तबतक वह अपने दुःसाहस, चातुर्य, और शौर्य से पाठकों के मन पर छाया रहता है।

लॉयन फख्तवांगनर नामक एक साहित्य समीक्षक के अनुसार अंग्रेजी अपराध कथाओं में सारा बल तथ्यों पर होता है और सारी अपराध कथा का तानाबाना, उन तथ्यों के चारों ओर ही बुना होता है। जबकि फ्रांसीसी, इतालवी और जर्मन अपराध कथाएँ, तथ्यों के स्थान पर, अपराधी मन के मनोविज्ञान से ज्यादा सरोकार रखती हैं।

पश्चिम में अपराध कथाओं का विकास द्रुतगति से उन्नीसवीं सदी में हुआ। इसका एक कारण यह दिया जाता है कि विज्ञान और तंत्रज्ञान की वृद्धि के कारण एक ओर तो अपराधी तक पहुँचना आसान हो गया था तो दूसरी ओर इन आविष्कारों का उपयोग करने में अपराधी भी निपुण होने लगे थे। इस कारण अपराधों के स्वरूप और संख्या की व्याप्ति में भी वृद्धि होने लगी थी।

अपराध कथा लेखन की शुरुआत करनेवालों में मोपासां, डिकन्स, और एडगर एलन पो प्रमुख थे। अपनी अपराध कथाओं में ये कल्पनाओं का सहारा अधिक लेते थे। आरंभिक अपराध कथाओं में बहुत कम प्रत्यक्ष घटनाओं पर आधारित हैं। इस कारण ये कथाएँ सामान्य पाठकों का मनोरंजन तो करती ही थीं तो अपराधियों तक पहुँचनेवालों के लिए मार्गदर्शक का काम भी करती थीं।

पो की आरंभ की पांच कथाओं को समीक्षक आधुनिक अपराध साहित्य के विकासक्रम की रूपरेखा ढूँढने के लिए उपयोग में लाते हैं। पहली कहानी है- ' मर्डर्स इन द रू मॉर्ग '। कुछ आधुनिक अपराध कथा लेखकों के अनुसार यह कहानी आधुनिक अपराध विज्ञान के सारे सिद्धान्तों को एक ही स्थान पर बड़े सारगर्भित और रोचक ढंग से प्रस्तुत करती है।

दूसरी कहानी ' द परलियड लेटर ' राजनीतिक ब्लैकमेल की कहानी है। ऐसा माना जाता है कि ऐसी चुस्त और आदि से अन्त तक सस्पेंस से भरपूर अपराध कथा आज भी कम ही पढ़ने को मिलती है। प्रख्यात अपराध कथा लेखिका डोरोथी एल. सेअर्स के अनुसार उसी थीम पर आजतक उसके टक्कर की कहानी लिखी ही नहीं गई।

तिसरी कहानी- ' द मिस्ट्री ऑफ मेरी रोजे '। कहते हैं, इस कहानी की नकल करने की हिम्मत आज तक कोई कर नहीं पाया।

चौथी कहानी- " दाऊ आर्ट दी मॅन " यह कहानी तो दिखने में तो हल्की-फुल्की है। लेकिन उसका अप्रत्याशित अंत पाठक को चौकाता है।

पांचवीं कहानी ' द बग ' को पो की सर्वोत्तम अपराध कथा माना जाता है।

पो को आधुनिक विश्व अपराध साहित्य की दो मुख्य धाराओं का आदि स्रोत माना जाता है। 1) क्लासिकल----ये मुख्य रूप से बुद्धिजीवियों की पसंद हैं चूंकि मुख्य रूप से विश्लेषणात्मक होती हैं और वाचक को अपने साथ लपेटे हुए चलती हैं। 2) रोमँटिक--इनमें घटनाओं और सुरागों की भरमार रहती है। फिर भी वे निरस नहीं होतीं।

इसी धारा में आगे आते हैं एडगर वॉलेस, जी.के. चेस्टरटन, आर्कजी अलेक्झांडर ड्यूमा आदि। 1820-50 के दरम्यान फेनिमोर कूपर की अपराध कथाएँ बहुत लोकप्रिय हुईं। फ्रांस के गोबोरिया, बोईसगोवे, ब्रिटेन के बुलवर, एंसवर्थ तथा श्रीमती हेनरी वूड की कहानियाँ बड़ी लोकप्रिय हुईं। इसीके समकालीन अमेरिका के शेरिडान लो फानु ने अपराध कथाओं को साहित्यिक गुणवत्ता प्रदान करने के लिए काफी मेहनत की। पो के बाद समय के साथ यह लुप्त होने लगी थी। इसीको आगे बढ़ावा विल्की फॉर्लिस ने, जिनकी 'द मूनस्टोन' श्रेष्ठ अपराध कथाओं में शामिल है।

सन् १८८७ में एक कहानी अवतरित हुई 'ए स्टडी इन स्कारलेट' जिसके लेखक थे आर्थर कानन डायल। इसका नायक था एक विश्लेषणपरक जासूस 'शेरलॉक होम्स', जिससे कौन परिचित नहीं है।

घटनाओं, तर्कों, और तथ्यों के तानेबाने में गुंफित ये कहानियाँ मानव स्वभाव और मन की विचित्रताओं, विरोधाभासों और गूढ़ कोनों में डुबकी लगाकर यह देखने का प्रयास करती हैं कि दुनिया में होनेवाले अपराधों के पीछे कारण क्या होते हैं।

- कुछ और जगप्रसिद्ध अपराध कथा लेखक और उनकी रचनाएँ-----

सॉमरसेट मॉम

विलियम फॉकनर नोबेल पुरस्कार विजेता अमेरिकी कहानीकार--'इन्डुडर इन द डस्ट', 'नाइट्स गेमविट'----इसका जासूस था 'गाविन स्टीवेंस'।

रुडवर्थ किपलिंग, जॉन स्टिनबैक, जॉर्ज बर्नार्ड शॉ, जॉन गॉल्सवर्दी, अर्नेस्ट हेमिंग्वे (द किलर्स-सर्वोत्तम अपराध कथा)-----ये सभी नोबेल पुरस्कार प्राप्त लेखक हैं।

मार्क ट्वेन---डबल बैरल - डिटेक्टिव्ह स्टोरी, (द अँडव्हेन्चर ऑफ टॉम सायर, लाईफ ऑन द मिसीसीपी, अँडव्हेन्चर ऑफ हकलबरी---ये सभी उपन्यास)

रॉबर्ट लुई स्टिव्हेंसन : क्षयरोग के कारण 44 वे वर्ष में मृत्यु। ट्रेजर आयलंड, किडनैप्ड आदि 29 किताबों के लेखक।

अल्डुअस हक्सले : द गियोकोदा स्माईल

चार्ल्स डिकन्स

एच.जी वेल्स

जॉ ब्रुस (फ्रांस)

अर्वाचीन समय के नोबेल पुरस्कार विजेता, कोलंबिया के स्पेनी भाषा के लेखक गॅब्रियल गार्सिया मार्खेज़ की बहुमुखी प्रतिभा से, 122 पेज की एक सशक्त अपराध कथा सामने आयी है 'क्रॉनिकल ऑफ ए डेथ फोरटोल्ड'। एक समीक्षक ने इसे अबतक लिखी गई विश्व की श्रेष्ठतम हत्या कथा बताया है। तो मार्खेज़ की नजर में महान साहित्यिक कृतियाँ हैं, 'जॉन हर्सी की हिरोशिमा की रिपोर्टिंग' और ब्रेम स्टोकर की अपराध कथा 'ड्रेकुला'।

- आज 09-12-2024 : 09-दिसम्बर को विश्व भ्रष्टाचार निरोध दिवस मनाया जाता है(2003 से)। लेकिन भारत में स्थिति क्या है? 'ऑनलाइन मंच लोकलक्रिकल्स' ने आठ दिसम्बर को जारी की रिपोर्ट के अनुसार 66% कंपनियों ने स्वीकार किया है कि उन्होंने पिछले 12 महिनों में रिश्वत दी है। मिली 18,000 प्रतिक्रियाओं के अनुसार इनमें से 54% को रिश्वत के लिए मजबूर किया गया। जबकि 46% ने प्रक्रिया में तेजी लाने के लिए स्वेच्छा से रिश्वत दी। सर्वेक्षण में शामिल केवल 16% दावा किया कि वे हमेशा बिना रिश्वत दिये काम करवाने में सफल रहे। 19% ने कहा कि उन्हें ऐसा करने की जरूरत नहीं पड़ी।
- महिला, आर्थिक घोटाला (अफौजदारी केस) और मृत्युदंड

सफेदपोश अपराध के लिए मृत्युदंड और वह भी एक महिला को यह शायद पहला उदा. है।

यह घटना है वियतनाम की और महिला का नाम है ट्रॅंग माय लॅन। न्यायालय का निर्णय आया अप्रैल 2024 में। घोटाले की रकम है, 03 लाख 68 हजार करोड़ याने 44 अरब अमेरिकी डॉलर्स। वास्तव में महिला गरीब घर से ही आयी थी। लेकिन उसने मालमत्ता के क्षेत्र में अपनी एक अलग पहचान बनायी। उसका मूल उद्योग था औरतों के बालों से संबंधित वस्तुएं बेचने का। लेकिन धीरे-धीरे उसकी पहचान कुछ राजनीतियों से हुई। उसका लाभ उठाते हुए उसने स्थावर संपत्ति के क्षेत्र में पांच जमाये। 1956 में जन्मे लॅन ने 1992 में यह काम शुरू किया। वर्ष 2012 में दिवाला निकलीं 03 बैंकों के एकीकरण से नयी बैंक बनायी। यह हुआ हो ची मिन्ह शहर में, जिसका पुराना नाम सांयगांव था। वियतनाम की राजधानी भले ही हनोई हो लेकिन आर्थिक केंद्र सांयगांव ही है।

वियतनाम में नियम है कि किसी भी कंपनी में तुम्हारी हिस्सेदारी 05% से अधिक नहीं हो सकती। लेकिन नकली कंपनियाँ खोल कर उसने अपनी हिस्सेदारी 91.5% तक बढ़ायी। जनता ने बड़े विश्वास से इस बैंक में पैसे लगाये। लेकिन उनका विश्वासघात हुआ। पैसे डूब गये। 06-10-22 को उसकी गिरफ्तारी हुई। गिरफ्तारी के बाद अगले 10 दिनों में ही बैंक से जुड़े तीन लोगों की संदेहास्पद अवस्था में मौत हो गयी। 14-10 को उसकी कंपनी के कार्यालय को आग लगी। अपने पैसे लेने बैंक के सामने लोगों की कतारें लगने लगीं। आर्थिक अराजकता का माहौल पैदा हुआ। परिणामतः दो राष्ट्राध्यक्षों को हटना पड़ा।

लेकिन लॅन ने सभी आरोप नकार दिये और दोष अपने कर्मचारियों पर थोप दिया। 2700 लोगों की जबानियाँ हुईं। और बहुत कुछ हुआ। अंततः उसे उपरोक्त दंड दिया गया। कुल 85 लोगों को दंडित किया गया। उसमें उसका पति और भांजी भी हैं। व्यक्तिगत तौर पर 42,000 लोगों का नुकसान हुआ। घोटाले की व्याप्ति देश की जीडीपी का 4.5% थी। कोर्ट में 06 टन भार के कागजात सादर किए गये।

आरोपी ने ऊपर की अदालत में अपील दायर की है।

प्रकरण १५

जासूसी कहानियाँ

अपराध-कथा और जासूसी-कथा हैं तो दो अलग-अलग ढंग की चीजें लेकिन एक-दूसरे की पूरक भी हैं। अपराध कथा में अपराध की योजना, माहौल, अपराध और अपराधी प्रवृत्तियाँ, अपराध का स्वरूप, उसका प्रकार, तरीका, रहस्य और कानूनी स्थितियाँ आदि आती हैं। जबकि जासूसी-कथा में अपराधी तक पहुंचने की विभिन्न प्रक्रियाओं का एक सिलसिला होता है। अपराध और जासूसी का बहुत गहरा रिश्ता है। आधुनिक अपराध कथा साहित्य में ऐलान एडगर पो का महत्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने 'हुपीन' नामक एक सनकी जासूस का सृजन किया था। उसीका विकसित रूप हमें आगे चलकर कानन डायल के शेरलॉक होम्स, अगाथा ख्रिस्ती के 'पायरोट', अर्ल स्टेनले गार्डनर के 'पेरी मॅसन' आदि विश्वविख्यात काल्पनिक जासूसों के चित्रण में दिखाई देता है।

जासूसी कथा साहित्य का विकास

जासूसी कथा साहित्य का जन्म काफी प्राचीन समय में हुआ था। वेदों में इंद्र के जासूस हैं, जिनका उपयोग वह असुर तथा जिनसे उसे उसके तख्त को धोखा लगता था उनके विरुद्ध करता था। ऐसा कहा जाता है रामायण के हनुमान राम के जासूस ही थे। उनका लंका पहुंचना, न केवल सीता का पता लगाने के लिए था बल्कि रावण की शक्ति का अंदाजा लगाने के लिए भी था। रावण के जासूस भी चारों तरफ फैले थे ही। जब दुर्योधन ने पांडवों को लाक्षागृह में मारने की योजना बनायी तो उसका पता जासूसों द्वारा पांडवों को पहले ही लग चुका था। इसी कारण वे बच सके।

ग्रीस साहित्य का 'ट्रोजन का घोड़ा' भी गुप्तचरी का ही प्रकार था। मध्य युग के यूरोपीय कूटनीतिज्ञ 'मैकियावेली' को यूरोप का चाणक्य ही कहा जाता है। 'शूलभिस्तर' नेपोलियन का सबसे बड़ा जासूस था। दुनिया में हर राज्यसत्ता के अपने जासूस होते थे। उनके कारनामों के किस्से वहां-वहां के साहित्य में जरूर मिलेंगे।

इस तरह के साहित्य को पश्चिम में शुरू में लोकप्रिय बनाने का श्रेय ई.टी.ए. हाफमैन (1776-1822) तथा अलेक्झांडर पो को जाता है। इसी काल में लिखी गयी जासूसी कथाओं में जोसेफ कॉनरेड की 'द सिंक्रेट एजेंट' को सर्वोत्तम जासूसी कथा माना जाता है। फ्रांस में भी कई नामी-गिरामी जासूसी कथा लेखक हुए। उनमें ज्यां ब्रुस सबसे अधिक लोकप्रिय और प्रसिद्ध हुए।

शेरलॉक होम्स : आर्थर कानन डायल का यह जासूस तबतक उभरे काल्पनिक जासूसों से इस मायने में अलग था कि वह विश्व का पहला 'वैज्ञानिक जासूस' था। उसका हर विचार और दलील तर्क पर आधारित होती थी। उसमें अटकलबाजी के लिए स्थान नहीं था। उसकी पहली कहानी थी 'ए स्टडी इन स्कारलेट'। और बाद में वह तो एक मिथक ही बन गया। इस मिथक के साथी डॉ. वाटसन भी अमर बन गये। शेरलॉक होम्स की कहानियाँ पर रॉनॉल्ड नॉक्स ने शोध प्रबंध लिखा जो बाद में 'स्टडीज इन द लिटरेचर ऑफ

शेरलॉक होम्स ' के नाम से प्रकाशित हुआ। किसी जासूसी कथाओं के बारे में लिखा गया पहिला और शायद एकमात्र प्रबंध है।.....हरीमोहन शर्मा

- वैसे आधुनिक जासूसी कथा साहित्य का सृजन करनेवाले तीन लेखकों में से दो ब्रिटिश हैं और एक अमेरिकी। अमेरिकी ऐलन एडगर पो ने ही आधुनिक जासूसी कथा साहित्य की नींव रखी। आगे इस आधारशिला पर भवन बनाना शुरू किया जी.के.चेस्टरटन (इनके द्वारा सृजित शौकिया जासूस फादर ब्राउन), सर आर्थर कानन डायल (शेरलॉक होम्स) ने। इनके साथ ही किपलिंग का भी महत्वपूर्ण योगदान है। इनके बाद आये अंग्रेज़ी जासूसी कथा लेखक फिलिप्स ओपनहीम।

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद उभरे सॉमरसेट मॉम, ग्राहम ग्रीन, ऐरिक एंबलर, इयान फ्लेमिंग, जॉन बुकनेन, अगाथा ख्रिस्ती, जॉन लॉ कारे। इनमें से मॉम, ग्रीस, फ्लेमिंग को जासूसी का अनुभव भी था। इस कारण उनकी कथाएँ अधिक प्रामाणिक बन सकीं। इन सभी लेखकों में दो समानताएं थीं। वे सभी ब्रितानी थे और उनकी जासूसी कथाओं में साहित्यिक स्पर्श भी था। इन कथाओं ने अपार लोकप्रियता अर्जित की। लेकिन लोकप्रियता में अगाथा ख्रिस्ती शिखर पर रही।

इसकी बाद की पीढ़ी के लेखक है फ्रेड्रिक फॉसाइट। उनकी कहानियाँ हैं-द डे ऑफ जॉकल, दी ओडेसा फाईल, दी डॉग्स ऑफ वॉर। उनके उपन्यासों के अनुवाद इयान फ्लेमिंग के जेम्स बॉन्ड की तरह ही 30 देशों में 14 भाषाओं में हो चुके हैं।

- हिंदी में चंद्रकांता, चंद्रकांता संतति तथा भूतनाथ को ही आरंभिक मौलिक जासूसी उपन्यास माना जाता है। भारतीय भाषाओं में बंगला का जासूसी कथा साहित्य सर्वोत्तम माना जाता है।
- गुप्तचर

इतिहास में जिस गुप्तचर को सर्वप्रथम मान्यता मिली और इज्जत प्राप्त हुई वह है ' डेलिलाह '। जिसने सॅमसन जैसे महाशक्तिशाली की शक्ति हर ली थी।

हमारे देश में, कौटिल्य ने राजाओं को सलाह दी थी वे न अपने पड़ोसी देशों पर भरोसा करें न अपनी प्रजा पर और विश्वसनीय सूचनाएं प्राप्त करने के लिए जासूसों का उपयोग करें।

आधुनिक काल में आने पर हम पाते हैं कि सन 1815 और 1915 इन सौ वर्षों में ब्रिटेन की गुप्तचर संस्था ' ब्रिटिश सिक्रेट सर्विहस ' का ही बोलबाला रहा। आज भी ब्रिटेन का सी.आय.डी.विभाग जिसे स्कॉटलैंड यार्ड भी कहा जाता है, दुनिया की एक कामयाब गुप्तचर संस्था मानी जाती है।

सी.आई.ए.---

इसका जन्म पर्ल हार्बर संकट के बाद हुआ था। इसके जन्म के साथ ही अमेरिका की पूर्व गुप्तचर संस्था ओ.एस.एस. को भंग कर दिया गया था। शुरू में इसका उद्देश्य विदेशों में जानकारी एकत्र करना था। पर राष्ट्रपति रिचर्ड ने इसके कार्यकलापों का दायरा काफी बढ़ा दिया। फिर इस गुप्तचर संस्था का जाल पूरी दुनिया में इस तरह फैलाया गया कि शुरू में पूरी दुनिया ने मान लिया कि यह अविकसित, विकासशील,

विकसित देशों के प्रति अमेरिका की सद्भावना है और वह इस संगठन के माध्यम से उनकी मदद करना चाहता है। कई देशों में इसके माध्यम से कई विकास सहायता और सहयोग कार्य संबंधित संस्थान स्थापित किये गये। उनमें देशी लोगों को ऊंची तनख्वाहों पर नौकरियां दी गयीं। इनकी संख्या निरंतर बढ़ती गयी। धीरे-धीरे प्रलोभन देकर विशिष्ट लोगों तक पहुंच बढ़ाई गई। लेकिन जबतक देशी व्यवस्थापनों की समझ में इसके पीछे का असली मकसद समझ में आता, तबतक घुसपैठ सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक संस्थाओं तक बहुत गहरी हो चुकी थी।.....सी.आई.ए. के बारे में उसकी शकल से पता लगाना कठिन है।

शुरू में तो इसका उद्देश्य था कम्युनिस्ट और वामपंथी विचारधारा को रोकना। लेकिन आगे.....

यह माना जाता है कि 1961 में कांगों के प्रधानमन्त्रि और महान स्वतंत्रता सेनानी पेद्रिस लुमुम्बा की हत्या का षडयंत्र सी.आय.ए.ने ही रचा था, हांलाकि उनकी हत्या के लिए जिम्मेदार उनसे खफा कटांगा के शासक शोबे को ठहराया गया।

कास्त्रो की हत्या के डझनों प्रयास हुए लेकिन उसमें कभी सफलता नहीं मिली।

सी.आय.ए.के निर्देश अनसुने करने के कारण ही जॉन केनेडी की हत्या हुई, ऐसा ही माना जाता है।

कास्त्रो के सहयोगी और महान क्रांतिकारी चे ग्वेरा की बोलीविया के जंगलों में हत्या कर दी गयी।

चिली में राष्ट्रपति उम्मीदवार साल्वाडोर आयंदे की हत्या।

ऐसी सूची बड़ी लम्बी है।

अमेरिका में भीतरी जासूसी का काम एफ.बी.आय. करती है।

के.जी.बी. का दबदबा :

सोवियत गुप्तचर संस्था के.जी.बी., विश्व की गिनी-चुनी गुप्तचर संस्थाओं में से एक है। इसकी कार्यप्रणाली के संबंधित, अपनी यात्रा से जुड़े एक साप्ताहिक के पत्रकार के रोचक अनुभव आपको सारिका के अंक में मिलेंगे।

बोलशेविक क्रांति के कुछ समय बाद 20-12-1917 को सोवियत संघ ने ' चेका ' नामक एक गुप्तचर संस्था का गठन किया। तब उसका उद्देश्य भितरघाती और प्रतिक्रांतिकारी तत्वों की टोह लेकर उनपर नजर रखना था। उसके मुखिया थे फेलिक्स द्जेहिंस्की, जो अपनी मृत्यु अर्थात् 1926 तक इस पद पर रहे। वर्तमान के.जी.बी. ऑफिस के सामने उनकी मूर्ति स्थापित की गयी है। 1922 में चेका का नाम बदलकर जी.पी.यु. कर दिया गया। उसके बाद कई बार उसके नाम बदले गये।

स्तालिन की मृत्यु के बाद हुए सत्ता संघर्ष में जीत ख्रुश्चेव की हुई और आविर्भाव हुआ के.जी.बी. का। स्तालिन के बाद बेरिया ने सत्ता समेटने की कोशिश की थी लेकिन उसमें उन्हें सफलता नहीं मिली और वे गोली के शिकार हो गये। वर्तमान के.जी.बी. का जन्म 13-03-1954 को हुआ था। आगे ख्रुश्चेव और ब्रेझनेव

के शासन दरम्यान, अपने विरोधियों को दबाने के लिए के.जी.बी. एजेंटों का वैसा ही उपयोग किया गया, जैसा एन.के.व्ही.डी. एजेंटों का स्टालिन ने किया था।

हिटलर का गुप्तचर संगठन

हिटलर के मुख्य गुप्तचर जनरल गेहलन को इस सदी का महानतम गुप्तचर माना जाता है। उसके व्यक्तित्व और कृतित्व ने आधुनिक गुप्तचरी को काफी गहराई तक प्रभावित किया। हिटलर के पतन के बाद उसने अमरीकियों से समझौता कर लिया और अमेरिका के लिए काम करना स्वीकार कर लिया। सी.आय.ए. के तत्कालीन प्रमुख एलेन डलेस ने 20 करोड़ खर्च करके गेहलन और उसके सारे संगठन को खरीद लिया और यह संगठन बी.एन.डी. के नाम से पश्चिम जर्मनी में कार्य करने लगा।

फाईव आईज़ अलायंस :

अमेरिका और ब्रिटेन की खुफिया एजेंसियाँ, जर्मन, जापानी जासूसों का नेटवर्क तोड़ने और खुफिया कोड पढ़ने में कामयाब रहीं। साल 1943 में अमेरिका का वॉर डिपार्टमेंट और ब्रिटेन की खुफिया सुरक्षा एजेंसी के (सायफर स्कूल) बीच एक समझौता हुआ जिसे नाम दिया गया 'ब्रुसा' (ब्रिटेन-युएसए अँग्रिमेंट)। 1945 में जब द्वितीय विश्व युद्ध समाप्त हुआ तो अमेरिका और ब्रिटेन ने तय किया कि एकदूसरे की बेहतरी के लिए यह समझौता जारी रखना चाहिए। 1946 को इस समझौते को नया नाम मिला 'उकुसा' (UK-USA Agreement)। 1949 में कॅनडा इसका हिस्सा बना। 1956 में न्यूज़ीलैंड और ऑस्ट्रेलिया भी इसमें शामिल हुए।

लेकिन 1980 तक इसके बारे में दुनिया को जानकारी ही नहीं थी। 2010 में इसकी फाईल अधिकारिक तौर पर दुनिया के सामने आयीं। 2016 में फाईव्हा आईज़ इंटेलिजेंस एण्ड रिव्यू कौन्सिल बना, जिसका मुख्यालय अमेरिका में है। इसे दुनिया की सबसे ताकतवर इंटेलिजेंस एजेन्सीज का नेटवर्क कहा जाता है।

इजरायल की तीसरी आंख :

'मोसाद' या 'द इन्सटीट्यूशन' इजरायल की अद्भुत साहस और कल्पनाशीलता पूर्ण गुप्तचर संस्था है, जिसका गठन 'इसेर हारेल' ने किया था। मोसाद के पास जासूसों की कोई बहुत भारी संख्या नहीं है। लेकिन उनकी कार्यकुशलता अद्भुत है। जासूसी दुनिया के कई अद्भुत किस्से उनके नाम दर्ज हैं। लेकिन यह संगठन भी 07-19-2023 को 'हमास' द्वारा इजरायल पर किये गये भयंकर हमले का पूर्वानुमान लगाने में असफल रहा।

- ईराक का जासूसी संगठन 'साबाक' एक अत्यंत क्रूर संगठन है।
- रॉ : (रिसर्च अँड अँनॅलेसिस विंग)

रॉ की स्थापना चीन के हाथों भारत की पराजय के बाद तब हुई थी, जब नेहरू जी को लगा कि विदेशी शक्तियों की गतिविधियों पर नजर रखनेवाला गुप्तचर संगठन इंटेलिजेंस ब्यूरो अर्थात् आय.बी. चीन के युद्ध-इरादों को भांपने में असफल रहा है। उन्होंने रामेश्वर नाथ (आर.एन.) काव को एक नया संगठन

बनाने का आदेश दिया। वे उस समय आय.बी. के सहायक निर्देशक थे। राँ के जन्म के बाद बारह वर्षों तक वे उसके प्रधान रहे। (राँ के गठन के पूर्व देश में एक ही गुप्तचर संगठन था आय.बी. जिनके मुखिया थे बी.एन. मलिक) काव के अधीन 3000 कर्मचारी थे। अब आय.बी. देश में गुप्तचरी करता है तथा विदेशी गुप्तचरों के कुचक्रों को विफल करने का काम करता है। राँ का मुख्य कार्य था यह पता लगाना कि चीन और पाकिस्तान जैसे भारत के शत्रु देश अपने संभार का कैसे विस्तार करते हैं और उनकी भारत विरोधी योजनायें क्या हैं? राँ का कार्यक्षेत्र भारत के बाहर है और उसे किसी भी भारतीय नागरिक को पकड़ने या उसपर अत्याचार करने का अधिकार नहीं है।

आय.बी. कहिये या राँ, अमेरिकी सी.आय.ए. या रूसी के.जी.बी. के सामने कुछ भी नहीं है। शुरु में आय.बी. के बारे में तो कहा जाता था कि वह सी.आय.ए. की ही एक शाखा है और अमेरिका के चीन विरोधी अभियानों में उसकी प्रच्छन्न सहायता करता है। लेकिन राँ के निर्मिती ने आय.बी. का महत्व कम कर दिया।

वैसे तो राँ विस्तारीत अस्तित्व के साथ 1968 में अस्तित्व में आयी। शुरु में तो इसमें केवल 250 लोग ही थे। लेकिन अब फेडरेशन ऑफ अमेरिकन सायंटिस्ट के वर्ष 2000 के ही अनुमान के अनुसार इसमें आठ से दस हजार सदस्य हैं। इसका असीमित बजट है। यह रक्षा मंत्रालय की जगह सीधा प्रधानमंत्री को रिपोर्ट करती है।

राँ की उपलब्धि : राँ की सबसे बड़ी उपलब्धि बंगला देश का उदय है। यह अपने आप में एक इतिहास है। 1968 में राँ बनने के बाद एस. शंकरन नायर को राँ के पाकिस्तान डेस्क का भार सौंपा गया था। फिर पूर्वी पाकिस्तान में भारतीय एजेंटों का जाल बिछाना शुरू हुआ। 12-04-1971 को कलकत्ता में बंगला देश की अस्थायी सरकार की घोषणा की गयी। एप्रिल के अंत में बंगला देश में व्यापक नरसंहार शुरू हो गया था। अनुमान के अनुसार दो लाख और दस लाख के बीच बंगाली मुस्लिमों को मौत के घाट उतारा गया होगा। ऐसे में कोई एक करोड़ शरणार्थी भारत आये। राँ ने पूरी सीमा पर छापामार प्रशिक्षण केंद्र खोल रखे थे। दिसम्बर 71 तक मुक्ति वाहिनी के स्वयंसेवकों की संख्या एक लाख से भी अधिक हो गयी थी। आगे के इतिहास से सभी परिचित हैं।

शेख मुजीब की हत्या : इससे पूर्व राँ प्रमुख आर.एन.काव ढाका पहुंच गये थे, एक पान बेचनेवाले के भेष में। ढाका पहुंचने पर उन्हें एक पूर्व निर्धारित थाने में ले जाया गया। शेख मुजीब को यह सब देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। लेकिन चूंकि वे काव को व्यक्तिगत रूप से जानते थे, उन्होंने काव से भेंट की। यह गुप्त मुलाकात एक घंटे तक चली। लेकिन काव, मुजीबुर्रहमान को यह समझा न सके कि उनका जीवन खतरे में है। हालांकि मुजीब को षडयंत्रकारियों के नाम तक बता दिये गये थे। काव के कष्ट व्यर्थ गये। 14-08-1975 को परिवार के और सहयोगी मिलाकर 40 लोग मार डाले गये। सारा काम मात्र तीन मिनट में पूरा हुआ।

रामेश्वर नाथ काव के कारनामे :

1955 में चीन के प्रधानमन्त्रि चाऊ एन लाय एक परिषद् के लिए बाइंग जानेवाले थे। लेकिन एन वक्त पर उन्होंने अपनी यात्रा रद्द कर दी। उक्त विमान बाइंग तो गया लेकिन वापस नहीं लौटा। रास्ते में ही

उसमें विस्फोट हो गया। कहा जाता है कि तायवान में रची गयी इस साजिश की सूचना काव ने ही पहुंचाई थी।

1955 में ही महारानी एलिज़ाबेथ भारत के दौरे पर आयी थी। उनकी सुरक्षा का उत्तरदायित्व काव को ही दिया गया था। जब महारानी का कॉरवां निकल रहा था तो किसीने उनकी ओर फूलों का गुलदस्ता फेंका, जिसे काव ने हवा में ही लपक लिया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के विशेष गुप्तचर

रिचर्ड जोरगा (उर्फ रिचर्ड सोर्ज) नाम का एक रूसी जासूस था। इसे तीन चेहरेवाला आदमी भी कहा जाता था। वह एक जर्मन नागरिक के रूप में टोकियो पहुंच गया। यह 1933 की बात है। टोकियो पहुंचने के एक वर्ष बाद उसने नाज़ी पार्टी की सदस्यता भी प्राप्त कर ली और कई जापानी, जर्मन उच्च अधिकारियों का विश्वासपात्र भी बन गया। जापान और जर्मनी की सरकारें उसे एक महत्वपूर्ण पत्रकार समझती रहीं। इस प्रकार पांच वर्ष बीत गये। किसी को उसके जासूस होने के बारे में संदेह नहीं हुआ। वह बड़ी निश्चिंतता से अपनी सरकार को गुप्त खबरें भेजता रहा। वह अपनी सरकार की अनुमति से ऐसी तथाकथित गुप्त सूचनाएं जर्मन दुतावास को मुहैया कराता था जो रूसी हितों के विरुद्ध नहीं होती थीं।

जनरल लश्कोफ अपनी कमांड छोड़कर मंचोको की सीमाएं पार करके जपानी सेना के हथै चढ़ गया था। उसने रूसी सेना की गुप्त भाषा (सैनिक कोड) जपान और जर्मनी पर प्रगट कर दिया था। जोरगा ने यह खबर रूसी गुप्त सर्वि्स को पहुंचाकर इतनी महान सेवा की कि उसके मूल्य का अनुमान लगाना कठिन है। यदि यह खबर रूसी सेना को समय पर न मिलती और वे अपना कोड न बदलते तो उनकी गुप्त सूचनाएं जर्मनों के लिए खुली किताब की तरह होतीं।

फिर मई 1941 को भेजा हुआ एक पत्र उसके हाथ लग गया। इसमें साफ-साफ लिखा था कि जर्मनी ने रूस पर आक्रमण करने का निश्चय कर लिया है। इसके दो लाभ होंगे। 1) यूरोप की सबसे बड़ी अनाज मंडी युक्रेन पर अधिकार हो जाएगा। 2) कमसे कम दस लाख रूसी युद्धबंदी जर्मनी की फैक्टरियों में काम करने के लिए मिल जाएंगे। यह सूचना मिलते ही जोरगा खुशी से पागल हो गया और उसने उसे मास्को पहुंचा दिया। इसमें यह सूचना भी थी कि जर्मन कब और किस स्थान पर रूस पर आक्रमण करेंगे। लेकिन स्टॅलिन ने अपने इस सबसे योग्य जासूस की सूचना पर विश्वास नहीं किया। मास्को यह प्रत्युत्तर सूनकर कि यह सूचना गलत है, वह पागल हो उठा। लेकिन 22 जून को हिटलर ने रूस पर इतना जबरदस्त आक्रमण कर दिया कि रूस का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया। जोरगा की सूचना सही निकली। अगर रूसी अधिकारी इसपर ध्यान देते तो रूस को इतना बड़ा जानी और आर्थिक नुकसान न उठाना पड़ता। उसने रूस को एक और महत्वपूर्ण सूचना उपलब्ध करायी कि क्या जर्मनी के पीछे-पीछे जापान भी रूस पर आक्रमण करनेवाला है या नहीं? इस कारण रूस जर्मनी से निश्चिंतता से लड़ सका।

लेकिन अंततः जोरगा को अन्य दो साथियों के साथ गिरफ्तार कर लिया गया। कहा जाता है कि उसका पतन एक प्रविण जासूस, जपानी अभिनेत्री के कारण हुआ। उसे मृत्युदंड दिया गया। उसे आशा थी कि युद्धबंदियों की अदलाबदली के दरम्यान उसे रिहा कर लिया जाएगा। लेकिन रूस ने उसे अपना जासूस

मानने से ही इन्कार कर दिया। उसे 07-11-1944 को उजाकी नामक एक साथी के साथ फांसी पर चढ़ा दिया गया।

जोरगा की स्मृति का एक दुःखद पहलू यह है कि चोवीस साल बाद रूस में कई ऐसे स्मारक खड़े किये गये जिन्हें रिचर्ड जोरगा के नाम समर्पित किया गया।.....प्रस्तुति....सुरजीत

गोर्डफ प्राग : एक और उदाहरण

तात्कालिक विदेश सचिव स्टीसन की उदासीनता के बावजूद, अमेरिकी सरकार को यह निश्चित पूर्व सूचना मिली थी कि पर्ल हार्बर पर अचानक हमला होनेवाला है। मगर वाशिंगटन में किसीने भी इसपर ध्यान नहीं दिया।

टर्की में ब्रितानी राजदूत के खिदमतगार ने मित्र राष्ट्रों की नॉर्मंडी पर उतरने की योजना की फोटो प्रतिलिपियां जर्मनों को दे दी थीं, लेकिन हिटलर ने उनपर कतई विश्वास नहीं किया। उसका कहना था कि यह गुमराह करनेवाली चाल है।

बहादुर महिला भारतीय गुप्तचर :

एक जनवरी 1914 को नुरुन्निसा का जन्म मास्को में हुआ था। उस समय अनायत खॉ और उनकी बेगम नवाब सरजी, टॉलस्टॉय के मेहमान थे। नूर का पालनपोषण फ्रांस में हुआ। उसे संगीत से लगाव और सुफीवाद पर आस्था थी। वह बहुत भावुक थी। बच्चों के लिए कविताएँ और कहानियाँ लिखना उसका शौक था। यही नुरुन्निसा बाद में ब्रिटिश इंटेलिजेंस विभाग में 'नूरा' के नाम से प्रसिद्ध हुई और फ्रांस के क्रांतिकारियों ने उसे 'मैडलीन' की उपाधि दी। ब्रितानिया की पहली महिला थी जो 16-06-1943 को जर्मनों के अधिकृत पैरिस में जासूस के रूप में दाखिल हुई। जर्मनों की सिक्रेट सर्विहस 'गेस्टापो' की फाइलों में नूर की फाइल पर मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा था 'मित्रशक्तियों की सबसे खतरनाक एजेंट'।

नूर की कहानियों का एक संग्रह 'ट्वेन्टी जटाका टेल्स' जॉर्ज हार्फ अँड कंपनी ने 1939 में प्रकाशित किया था। इसके अलावा उसकी कविताएँ और कहानियाँ बी.बी.सी. लंदन से प्रसारित होती थीं। 1940 में जब फ्रांस जर्मनों के अधिकार में चला गया तो अनायत खॉ का परिवार पेरिस छोड़कर लंदन में जा बसा। 1940 में ही नूर ने पेरिस में रेडक्रॉस का डिप्लोमा प्राप्त किया। इसके साथ ही वह बच्चों के मनोविज्ञान पर भी डिप्लोमा ले चुकी थी।

16-06-1943 को एक लाई सेंडर विमान द्वारा नूर को जर्मन अधिकृत फ्रांस में उतार दिया गया। जॉर्ज क्रॉस के कथनानुसार वह पहली महिला एजेंट थी, जिसे शत्रु अधिकृत प्रदेश में उतारा गया था। लेकिन स्वयं एक फ्रांसीसी महिला ने मुखबिरी करते हुए उसे पकड़वा दिया था। लेकिन नूर ने यह स्वीकार नहीं किया और न यह बताया कि वह भारतीय है। जर्मन आखरी तक उसे फ्रांसीसी ही समझते रहे। अन्त में उसे एक कोठरी में गोली मार दी गयी। अभी उसमें कुछ जीवन बाकी था कि उसे भट्ठी में झोंक दिया गया। एक चश्मदीद गवाह डी.व्ही.सी.पीटर (जो उस समय जर्मन कैद में था) ने बाद में बताया, 'लड़की खून से लथपथ थी

लेकिन जब जर्मन अफसर फ्लोपर्ट ने गोली चलायी तो उसने घुटने के बल बैठकर, मरने से पहले केवल एक शब्द कहा, 'आजादी'। प्रस्तुति...सुरजीत

महिला गुप्तचर---

आधुनिक गुप्तचरी बीसवीं शताब्दी की देन है। आमतौर पर पुरुषों को ही इस सेवा के चुना जाता है। फिर भी सुंदर लड़कियाँ और औरतों का भी योगदान कम नहीं है।

माताहारी : यह एक अति सुंदर नर्तकी थी और जर्मनी में लम्बे समय तक गुप्तचरी का काम करती रही। गुप्तचर महिलाएं महत्वपूर्ण दस्तावेज़ उड़ाने के लिए विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

बौरोनस फानबर्ग और फ्रॉलिन फॉन इस काम में विशेष दक्ष थीं। उन्होंने जर्मन सरकार के कई दस्तावेज़ गुप्त रूप से उड़ाये लेकिन अन्त में उनका भेद खुल गया और उनका सिर कलम कर दिया गया।

मेरी लुई : इसने फिनलैंड के इतिहास में धूम मचा दी थी। वह रूस की ओर से फिनलैंड में आठ साल तक विशिष्ट काम पर नियुक्त रही।

जैनी अंटलीला : यह भी बोल्शेविक रूस की ओर से फिनलैंड में जासूसी करती रही। लेकिन अंततः भेद खुलने पर उसे 15 साल का कठोर कारावास मिला।

मिली शरोटकोडा : एक जापानी लड़की थी, जिसने चीन में जासूसी का काम बड़ी कुशलता से किया। वह चीनी ग्रामीण महिला के वेश में चीनी सेना में जा घुसी। कई भेद उसने जापानी सरकार तक पहुंचाये।

कुछ घटनाएँ :

भारत की उत्तरी सीमा पर हिमालय श्रृंखला की एक ऊंची चोटी है-नंदादेवी। इसीके आंचल से निकलती है अलकनंदा जो कि गंगा की एक बड़ी धारा है। कई वर्ष पूर्व भारत सरकार की जानकारी में, अमेरिका ने नंदादेवी पर एक परमाणु सयंत्र रखा। हिमपात में वह अपने स्थान से फिसलकर हजारों फीट गहरी खाई में जा गिरा और सैकड़ों फीट बर्फ में दबकर कहीं खो गया। एक नया सयंत्र लाकर अधिक सुरक्षित स्थान लगाया गया। इसे 'रेड माउंटेन' नाम दिया गया था। यह परमाणु जासूसी सयंत्र है, जिसका उद्देश्य सीमा पर हो रही प्रत्येक परमाणु हलचल का संकेत देना था। टाइम्स ऑफ इंडिया के देहली संस्करण के संपादक श्री इंदर मलहोत्रा जी ने 'न्युक्लियर पॅकट अँट नंदादेवी' नामक अपने एक लेख में बताया कि किस प्रकार आई.बी. और सी.आय.ए. ने मिलकर एवरेस्ट विजेता हिलेरी की मदद से उपरोक्त उपकरण चीन द्वारा किए जानेवाले परमाणु विस्फोटों का पता लगाने के लिए स्थापित किया था। 'ऑपरेशन ब्लू माउंटेन' नामक इस गुप्त योजना के निर्धारण में, 'आऊट साईड' नामक पत्र में प्रकाशित हॉवर्ड कोवेन के लेख के अनुसार भारत और दोनों देशों के शासनों द्वारा उच्चतम स्तर पर यह निर्णय लिया गया था। कोहेन ने आगे लिखा है कि उस काल में आय.बी. के अनेक भारतीय जासूस सी.आय.ए. के भी जासूस थे। और अपनी दोहरी भूमिका के कारण दोनों देशों के प्रति विश्वासघात कर रहे थे। आगे सी.आय.ए. को पता चला कि वह पॅक जो टनों हिम के अंदर दब गया था, पर्वत से स्थलित होकर गंगा की धारा को अनिश्चित काल तक दूषित कर सकता है।

- पौराणिक काल में गुप्तचरी और कौटिल्य की जासूसी व्यवस्था---

संस्कृत के अमर ग्रंथ ' अमर कोश ' में गुप्तचरों के अनेक पर्यायी नाम मिलते हैं। अधिकांश मामलों में ये पर्यायी नाम गुप्तचर के विशेष कार्य को दर्शाते हैं। इस नामांकन के अंतर्गत पुरुष और महिला दोनों गुप्तचर आते थे।

कौटिल्य के बाद एक लम्बे समय तक भारत में कौटिल्य के अर्थशास्त्र में दी गयी गुप्तचर्या को गुप्तचरी की अंतिम व्यवस्था माना जाता था और उसीका प्रयोग होता था। कौटिल्य ने प्रधानमंत्री के रूप में कार्य करते हुए देश में गुप्तचरी का जाल बिछा रखा था।

इसी कारण शुद्रक, कालिदास, भास, माघ, भारवी, दंडी, बाण आदि की साहित्य कृतियों में इनका विस्तृत वर्णन मिलता है। लेकिन इन कृतियों में अधिकतर, जासूस को ' चर ' कहा गया है। विशेष जासूसी करनेवाला चर ' प्रहित ' कहलाता था। छद्मवेश में जासूसी करनेवाला ' अपसर्प ' । कुछ ग्रंथों में ऐसे जासूसों को ' गंध पुरुष ' कहा गया है। अपने विश्वसनीय गुप्तचर को राजा ' आप्त ' कहकर पुकारते थे और उसके गुप्ताचार को ' प्रत्यापिता '।

कौटिल्य, अपनी गुप्तचरी व्यवस्था में कार्यरत गुप्तचरों की कार्यक्षमता के अनुसार उन्हें ' पथिक ' , ' अपसर्प ' , ' उत्पथिक ' , ' उभयवेतन ' , ' उपनिषद ' आदि उपाधियाँ देते थे। उन्होंने गुप्तचरी विद्या को ' संचार ' और ' समस्त ' इन दो विभागों में विभाजित किया था।

' समस्त ' व्यवस्था के अंतर्गत कार्य करनेवाले पुरुष और महिला गुप्तचर अपना कार्य महलों और नगरों में रहकर करते थे। जबकि ' संचार ' व्यवस्था के अंतर्गत गुप्तचरों का कार्य बाहर रहकर चलता था।

समस्त गुप्तचर व्यवस्था के अंतर्गत कार्य करनेवाले गुप्तचर पांच श्रेणियों में विभक्त थे। 1) नकली छात्र-छात्राएं (कापालिक) जो असली छात्रों के बीच रहकर उनकी गतिविधियों के समाचार शासन को देते थे। 2) भिखारी के रूप में कार्य करनेवाले (उपस्थित) 3) निर्धन कृषक के रूप में कार्य करनेवाले (गृहपथिक) 4) व्यापार की आड़ में जासूसी करनेवाले(वैदेहक) 5) साधुओं के भेष में कार्य करनेवाले (तापस)।

संचार व्यवस्था के अंतर्गत वर्ग

- 1) सत्तरिण : जादू या वाक्पटुता के बल पर अजनबियों के मन जीतकर भेद जाननेवाले
- 2) तीक्ष्ण : वह गुप्तचर, जो एकांत में अपने विरोधी को समाप्त कर दे।
- 3) रसदा : अपने विरोधियों को विष आदि देकर समाप्त करनेवाले।
- 4) भिक्षुकी-ब्राह्मण विधवा के रूप में महलों में रहनेवाली तथा प्रतिष्ठित कुल की महिलाओं के भेद जानने में निपुण महिला गुप्तचर।

- महिला गुप्तचर

जहाँतक महिला गुप्तचरों का प्रश्न था, वे वेश्याओं, सपेरिनो, गणिकाओं, अमिनेत्रियों, धर्मप्रचारकियों आदि रूपों में जासूसी करती थीं। शायद ही ऐसा पेशा रहा हो जिसमें महिला गुप्तचरों ने आड के रूप में न अजमाया हो।

गुप्तचरी का प्रशिक्षण करनेवाली महिलाओं को जल्दी से वेश और शक्ल बदलने, गुप्त संकेत देने और प्राप्त करने, अफवाहें फैलाकर लोगों से असलियत का पता लगाने, डरा-धमकाकर या फुसलाकर मामूली लोगों से अपेक्षित जानकारी प्राप्त करने की व्यावसायिक शिक्षा दी जाती थी।

@ कौटिल्य आवश्यकता पड़ने पर गुप्तचरों की गतिविधियों पर निगाह रखने के लिए अन्य गुप्तचरों को भी नियुक्त करते थे जिन्हें ' उभयवेतन ' गुप्तचर कहते थे। अपने गुप्तचरों को कौटिल्य के कड़े आदेश थे कि वे सारी सूचनाएं सीधे उनतक ही पहुँचाये। मध्यस्थ द्वारा सूचनाएं भेजने में, उनके शत्रु तक पहुँचने, ठीक समय पर न पहुँचने या सही रूप में न पहुँचने के खतरे रहते थे।

कौटिल्य गणिका गुप्तचरों का उपयोग, राजशुल्क देने से बचनेवाले या कम शुल्क देनेवाले धनाढ्य व्यापारियों तथा रिश्वत लेनेवाले अधिकारियों की सही संपत्ति का पता लगाने के लिए भी करते थे। वही काम जो आजकल राजस्व विभाग के गुप्तचर करते हैं।

महाभारत काल, गुप्त काल, मौर्य काल, में गणिकाएँ भी सेना के साथ पीछे-पीछे चलती थीं। वे सैनिकों के मनोरंजन के अलावा, शत्रु शिबिर में पहुँचकर जासूसी भी करती थीं।

- ईसा पूर्व भी माताहारी : रामकुमार भ्रमर

लेखक ने कुछ स्त्री चरित्रों को पुरातन काल में गुप्तचरों का काम करते हुए बताया है---

मेनका : मेनका साधारण अप्सरा भर न रहकर, इंद्र की गुप्तचर हो जाती है जिसने विश्वामित्र की प्रभावशक्ति रोकने का कार्य, इंद्र के पक्ष में पूरा किया। यहाँतक कि मातृत्व की भी बलि दे दी।

तामसी : तामसी, जरासंध की राजनीतिज्ञों में से एक थी। सुंदर, षोडशी, चतुर और चंचल होने के साथ-साथ अभिनय कला में प्रवीण। जरासंध ने मथुरा की यादव शक्ति को, जो गणतंत्र व्यवस्था से चल रही थी, समाप्त करने के लिए, इस गुप्तचर युवती का उपयोग किया। स्वभावतः कंस(जो मथुरा के प्रमुख, महाराज उग्रसेन के पुत्र और यादव गणसंघ के युवराज थे) स्त्रियों के प्रति बहुत झुकाव नहीं रखते थे। इसके बावजूद जरासंध ने तामसी की अद्भुत सौंदर्य शक्ति का तथा उसकी अभिनय प्रवणता का उपयोग करते हुए कंस को अपने पिता के प्रति विद्रोह के लिए उकसाया, इस सीमा तक कि कंस, यादव गणसंघ व्यवस्था के नाश का कारण बने। जरासंध ने कंस और तामसी के बीच का कूट-रहस्य समाप्त करने के लिए बड़ी कुटिलता और निर्ममता से तामसी का वध भी करवा डाला।

पुतना : पुतना का समूचा कर्म उसके गुप्तचर रूप का ही एक अंग है, जिसका उद्देश्य सीधे-सीधे श्रीकृष्ण की हत्या करना था।

प्रकरण १६

क्रांतिकारियों की कहानियाँ

क्रांतिकारियों की कहानियों में अधिकतर उनके जीवन की घटनाओं के संस्मरण अधिक प्रेरणादायी होते हैं। इनसे मुक्ति संघर्ष में लगे युवाओं का आत्मबल बहुत ऊँचा हो जाता है। हताश चेहरे भी विरता की भावना से चमक उठते हैं। फिर वह क्रांतिकारी पुरुष हो या स्त्री। ये कहानियाँ पढ़ना या सुनना अपने आप में रोमांच पैदा कर देता है। ऐसे ही कुछ क्रांतिकारियों की कहानियाँ या जीवनियों को पढ़ने, याद करने से मुक्ति संघर्ष का सारा इतिहास आंखों के सामने उभर आता है।

- आदि विद्रोही स्पोर्ट्सकस : न्यूयार्क में जन्मे हॉवर्ड फॉर्स्ट स्वयं तो श्वेतवर्णी थे लेकिन निग्रो जातियों की उत्थान के लिए किये उनके प्रयत्नों को हमेशा याद किया जाता है। उनकी अमर रचना है आदि विद्रोही ' स्पोर्ट्सकस ' के बारे में।

“ और जबतक आदमी मेहनत करेगा और कुछ थोड़े से लोग उसकी मेहनत का फल उससे छिनकर हड़प लेंगे, तबतक स्पोर्ट्सकस के नाम को लोग याद रखेंगे। ”.....प्रस्तुति....मूलचंद गौतम

- फांसी के तख्ते से : ज्यूलियस फ्यूचिक

प्राग- स्मिचोव में जन्मे फ्यूचिक, चेकोस्लोवाकिया पर नात्सी अधिकार कायम होने पर भूमिगत हो गये। बाद में गेस्टापो ने उन्हें गिरफ्तार किया और मार डाला। 'फांसी के तख्ते से ' का लेखन फ्यूचिक ने नात्सी जल्लाद के फंदे की छाया में किया। ऐसे लेखन को पढ़ना एक अलग ही अनुभूति देता है। इसी के एक अंश का सारिका मुक्ति-संघर्ष कथा अंक के लिए चयन किया गया है।

- ब्रिटिश साम्राज्य के विनाश की राह पर : रामप्रसाद बिस्मिल की आत्मकथा।

काकोरी लखनऊ जिले का एक छोटा सा गांव है। पहले इस गाँव का कोई विशेष महत्व नहीं था। लेकिन जब इस गांव में क्रांतिकारियों ने नऊ अगस्त 1924 को आठ डाउन गाड़ी रोककर, रेल के थैलों को लूट लिया तब से इसका नाम इतिहास में अमर हो गया।

पहले यही तय हो गया था कि किसी गाँव में मामूली डाकूओं की तरह डाका डाला जाए। शायद एक डकैती डाली भी गयी। लेकिन उससे कुछ विशेष धन नहीं मिला। इस कारण पं. रामप्रसाद ने नयी नीति के अनुसार यह निश्चित किया कि रेल में जा रहें पैसे के थैले लूट लिए जाय। अशफाकउल्ला का शुरु में इस नीति को समर्थन नहीं था। यह निश्चित किया गया कि जंजीर खींचकर चलती गाड़ी को रोक लिया जाए और थैले लूट लिए जाए। इसी योजना के अनुसार अंत तक काम हुआ। जब अंतिम निर्णय हुआ तो अशफाकउल्ला ने भी कमर कस ली।

इस कांड में दस व्यक्ति शामिल थे। इनमें राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी, रामप्रसाद बिस्मिल और अशफाकउल्ला फांसी पा गये। मुरारीलाल बहुत दिनों तक साधु के भेष में रहने के बाद प्राकृतिक ढंग से मर गये।

बनवारीलाल इकबाली गवाह हो गया था। चंद्रशेखर आजाद छह वर्ष बाद 1931 में बीस फरवरी को एक मुठभेड़ में मारे गये। अन्य शामिल व्यक्ति थे सचिंद्रनाथ बक्सी, मुकुंदलाल और मन्मथनाथ गुप्त।

बिस्मिल को भले ही केवल तीस साल की जिंदगी मिली हो लेकिन इतने अल्प समय में ही उन्होंने राम, अज्ञात आदि छद्म नामों से 11 किताबें लिखी थीं जो ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त की गयी थीं। 1936 में तुर्की के क्रांतिकारी शासक कमाल पाशा ने साउथ ईस्ट अनातोलिया स्थित अपने देश के दियारबाकिर राज्य में ' बिस्मिल शहर ' ही बसाया था और उनकी शहादत को सलाम किया था।

हमारी ख्वाहिश

सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है,
देखना है जोर कितना बाजु-ए-कातील में है।
रहबरे राहे मुहब्बत, रह न जाना राह में,
लज्जते सहरा नवर्दी दूरी, ए मंजिल में है।
वक्त आने दे, बता देंगे तुझे, एं आसमां,
हम अभी क्या बताएं, क्या हमारे दिल में है।
अब न अगले वलवले हैं और न आरमानों की भीड़,
एक मिट जाने की हसरत, अब दिले बिस्मिल में है।
आज मकतल में ये कातिल कह रहा है बार-बार
क्या तमन्ना-एं-शहादत भी किसी के दिल में है।
ऐ शहिदे मुल्कों मिल्लत, तेरे जज्बों के निसार,
तेरे कुर्बानी का चर्चा गैर के महफिल में है।

.....रामप्रसाद बिस्मिल (1929)

- मन्मथनाथ गुप्त : सिर पर कफन बांधकर (सदी के स्वतंत्रता संग्राम की आत्मकथा)

यह ग्रंथ देश के एक महान स्वतंत्रता सेनानी तथा अग्रणी क्रांतिकारी लेखक मन्मथनाथ गुप्त के सन् 1908 से लेकर 1947 तक के जीवन की ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण आत्मकथा है। अत्यंत महत्वपूर्ण इसलिए कि यह एक व्यक्ति की आत्मकथा न होकर बीसवीं सदी के स्वतंत्रता संग्राम के पूरे एक युग की प्रामाणिक तथा बेबाक आत्मकथा है। पूरी गाथा का मुष्किल से एक चौथाई भाग ही उनके जीवन से संबंधित है। इस कारण यह पूरे आजादी के आंदोलन तथा क्रांतिकारी संघर्ष के लिए एक प्रामाणिक संदर्भ ग्रंथ है।

गुप्त जी का जन्म 1908 में काशी के एक देशभक्त मध्यम वर्गीय बंगाली परिवार में हुआ था। 1922 के चौराचौरी कांड के बाद, उन्होंने महात्मा गांधी जी की विचारधारा से अलग सशस्त्र क्रांति का मार्ग अपनाया और रामप्रसाद बिस्मिल, चंद्रशेखर आजाद, अशफाकउल्ला खॉ आदि के क्रांतिकारी दल में शामिल हुए। उन्होंने 1946 तक के अपने 38 वर्षीय जीवन के 20 वर्ष देश की स्वतंत्रता के लिए लड़ते हुए, और हर तरह की यातनाएं झेलते हुए, अंग्रेजों के जेलों में बिताये। आजादी के लिए ऐसा बेजोड़ आत्मसर्ग शायद ही किसी साहित्यिक के जीवन से जुड़ा हो।

- विदेशों में भारतीय क्रांतिकारी गतिविधियां :

प्रतिष्ठित पत्रकार विश्वामित्र उपाध्याय ने विदेशों में भारतीय स्वतंत्रता के लिए हुए क्रांतिकारी आंदोलन पर गहन अनुसंधान के बाद ' विदेशों में भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन ' यह किताब लिखी है। इसमें भारतीय क्रांतिकारी गतिविधियों की कहानियाँ और इतिहास सामने आता है।

- भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में जिन क्रांतिकारियों ने ब्रिटिश हुकूमत के विरुद्ध सक्रिय हिस्सा लेने के साथ-साथ अपने समय के समाज का विश्लेषणात्मक इतिहास भी लिखा ऐसे महान कहानीकार और उपन्यास लेखक रहे हैं, यशपाल। ' सिंहावलोकन ' यशपाल जी का ऐसा ही दस्तावेज़ी ग्रंथ है, जिसमें आपका क्रांतिकारी रोचक घटनाओं से साक्षात्कार होगा।
- ' आजादी के परचम तले ' यह एक कांतिमोहन द्वारा अनुदित प्रेरणादायक पुस्तक है।
- आजादी की कहानी - सेनानियों की जबानी : उन ऐतिहासिक दिनों के संस्मरण अपने आपमें एक रोमांचक अनुभव है। ये आपको सारिका के मुक्ति संघर्ष कथा विषेशांक में पढ़ने मिलेंगे-

प्रस्तुतकर्ता---पत्रकार महेश अनुज और अखिल अनूप।

नहीं भूल सकता वह सुबह—रूपनारायण गुप्ता

आजादी या मौत---लेफ्टिनेंट शोभा राम

सरकार से पहली जीत—नंदलाल मेहता

जलने की क्या परवाह---डॉ. मदनमोहन चोपड़ा

महज भावुकता नहीं थी---फूलचंद जैन

- कुछ अमर क्रांतिकारी पुस्तकों के जिवंत अनूवाद—आदि विद्रोही, समरगाथा, अग्निदीशा।

राजनीति की कहानियाँ

इसपर विख्यात कहानीकार, उपन्यासकार भीष्म साहनी की विस्तृत टिप्पणी----

राजनीतिक कहानी की परिभाषा देना बड़ा कठिन काम है।

लेखक को हम द्रष्टा का नाम भी देते हैं और रचयिता का भी। और उसकी स्वतंत्रता की दुहाई देते रहते हैं। हम उससे केवल एक ही मांग करते हैं कि वह जीवन से जुड़ा हो, संगत हो और कला की कसौटी पर खरा उतरे।

कहानी खुद बोलती है। अगर वह खुद नहीं बोलती, तो भले ही लेखक कितनी वकालत कर ले और दृष्टिकोण साफ करता रहे, कहानी प्रभावशाली नहीं बन सकती।

हमारे यहाँ लगभग सौ साल पहले से समाजोन्मुख कहानी लिखी जाने लगी। यह प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ती और नये-नये आयाम ग्रहण करती रही है। किसी सामाजिक विषय को लेकर कहानी का लिखा जाना हमें स्वाभाविक लगता है और यह हमारे साहित्य की मानवतावादी परंपराओं से भी मेल खाता है और उसके अनुरूप बैठता है।

अपने साहित्य और कहानी के विषय में वे कहते हैं—मेरा कहानी क्षेत्र, मेरा जीवन अनुभव और मेरी दृष्टि ही निर्धारित करते रहे हैं। सभी लेखकों के साथ ऐसा ही होता है। मेरे लिए जिंदगी ही कहानी के कथानक जुटाती रही है। कम से कम कच्ची सामग्री तो वहीं से मिलती रही है। भले ही कुछ सुना हो, या स्वयं अनुभव किया हो। उसमें कोई विडंबना, कोई विसंगति, कोई अनुठापन नज़र आ जाये तो कहानी का बीज मिल जाता है। कल्पना के आधार पर गढ़ा हुआ कथानक मुझे रास नहीं आता, ऐसा मेरा अनुभव है। बंधा-बंधाया, पहले से निर्धारित तो कुछ नहीं होता। लेकिन जिस घरे में मेरी कल्पना घूमती है, वह अक्सर जाना-पहचाना ही होता है। मुझे उन लोगों से हमेशा ईर्ष्या रही है, जिनकी कल्पना अपने कथानक को नया रूप देने में सक्षम होती है।

कहानी कलात्मक हो, गहरी मानवीयता लिए हो, प्रामाणिक हो, उसमें जीवन का सही अक्स नज़र आये, विचार और भावना दोनों की दृष्टि से प्रभावशाली हो, ऐसी ही कहानी मुझे रुचती है और इसी दिशा में मेरा प्रयास भी रहता है। कहानी जिंदगी का दामन न छोड़े, इसे मैं निश्चित ही कहानी का बड़ा गुण मानता हूँ। जहाँ कहानी जीवन को आंकती है, जीवन के किसी सारतत्व को रूपाईत करती है, वहाँ कहानी जीवन के सत्य को खोजने की चेष्टा भी करती है। जीवन के सभी सत्य गढ़े-गढ़ाएँ नहीं होते। जीवन सदैव गहरे अन्वेषण की मांग करता है।

यह सही है कि मैं अपने जीवन में सामाजिक घटनाक्रम से अधिक प्रभावित रहा हूँ। लेकिन इस समाजोन्मुखता की भी अपनी सीमा रही है। एक तो यह कि स्वयं मैंने इतना भोगा नहीं है, जितना और लोगों को भोगते देखा है। इसलिए ऐसे लोगों की मानसिकता की गहराइयों में पैठ पाना उसी हद तक संभव था जिस हदतक मेरी सद्भावना और मेरी रचनात्मक कल्पना मुझे ले जा सकती थी। इस पार्श्व में मेरी कहानियाँ कहातक पोलिटिकल हैं, मैं नहीं जानता। मगर कोई मुझसे पुछे कि क्या तुम पोलिटिकल कहानियाँ

लिखते हो तो मैं तो यही कहूँ कि हरगिज नहीं। मैं केवल जिंदगी की कहानियाँ लिखता हूँ। (जब भिष्म जी से उपरोक्त प्रश्न पुछा गया है तो उसका साफ अर्थ है उन कहानियों को उस दृष्टि से देखा गया है।)

सांप्रदायिकता के सवाल पर मैंने ज्यादा लिखा है। पर यह एक तरह अनिवार्य था और आकस्मिक भी। इसके कटू अनुभव से मैं गुजरा था। पंजाब की सभ्यता में सांप्रदायिकता का अंश बहुत कम था। इसलिए वहाँ पर सांप्रदायिक दंगों के होने के नाते मुझे गहरा धक्का भी लगा था।

- यहाँ एक प्रश्न उठाया गया है कि क्या पारंपरिक अर्थ में राजनीति को ले तो उसका संबंध सत्ता से है। और सत्ता का संबंध व्यवस्था से है। व्यवस्था का संबंध मनुष्य की रोजमर्रा की जिंदगी से है। तो जीवन से जुड़ी व्यवस्था को केंद्र में रखकर लिखी गयी कहानी क्या पोलिटिकल रचना बन जायेगी?

इस सिलसिले में एक उदाहरण लिया जाता है : पिछली शताब्दी में यदि दूर्भिक्ष पर कहानी लिखी जाती तो शायद उसे विधाता का विधान मानकर लिखा जाता। व्यवस्था का उसमें दखल नहीं होता। लेकिन आज दूर्भिक्ष पर कहानी लिखते समय व्यवस्था और उसकी भूमिका को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। यह स्वाभाविक भी है। पुराने ढंग से लिखी गयी कहानी अपना प्रभाव नहीं छोड़ पायेगी। व्यवस्था अपने आप ही ऐसी रचना का अभिन्न अंग बन जाती है और उससे जुड़े अन्य संदर्भ भी। अब इस स्थिति में कहानी को आप पोलिटिकल कहेंगे या अन्यथा?

पुरानी बात है। बेलछी नामक गाँव में बड़ी संख्या में हरिजन मारे गये थे। उस गाँव की दूर्गम्यता के कारण श्रीमती इंदिरा गांधी वहाँ हाथी पर बैठकर पहुँची थी। उस नृशंस घटना पर नागार्जुन ने एक मार्मिक कविता लिखी थी। उस कविता को किस वर्ग में रखा जाएँ इसपर भी मतभेद हो सकते हैं।

गत शताब्दी में अमेरिका में एक किताब लिखी गयी थी 'टॉम काका की कुटिया'। उसमें अमेरिका के निग्रो आबादी की दयनीय स्थिति दिखाई गई थी। उस उपन्यास ने दुनिया में धुम मचा दी थी। एक सामाजिक समस्या के प्रति लोगों को सचेत करने में बड़ी भूमिका निभाई थी। लेकिन कुछ लोगों ने उसे पोलिटिकल उपन्यास माना तो अन्यो ने उच्चतम साहित्यिक कृति।

राजनीति आयी तो उसके साथ विचारधारा पर भी विचार करना लाजमी है। कहानी हमें सोचने पर भी मजबूर करती है। तो विचार आया, तर्क आया, विचारधारा आयी। रचना विचारों से शून्य नहीं होती। अक्सर कहानी खूद बोलती है और उसके माध्यम से ही विचार हमारे सामने आते हैं। यदि कहानी पर विचार थोपा जाये तो संगत रहते हुए भी कहानी को कहानी के नाते कमजोर बनाता है। कहानी में विचार उसी रास्ते आना चाहिए जैसे अन्य तत्व। लेकिन जब कहानी विचारधारा से जुड़ जाती है तो उसे पोलिटिकल मानना होगा। न जुड़े तो वह शुद्ध साहित्य होगा। लेकिन यदि साहित्य का उद्देश्य हमें सचेत करना है तो कोई न कोई विचारधारा से वह जुड़ेगी ही। विचारों से शून्य साहित्य कैसे हो सकता है? आज राजनीतिक क्षेत्र की गतिविधियाँ सामाजिक जीवन को और कुछ हद तक व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित करती ही है। इसी कारण शुद्ध पोलिटिकल कहानी की व्याख्या करना कठिन है।

यशपाल के बृहद उपन्यास ' झूठा सच ' का संदर्भ सांप्रदायिक और देश विभाजन है। और देश विभाजन के पीछे राजनीतिक दलों का बहुत बड़ा हाथ है। तो यह उपन्यास पोलिटिकल है भी और साहित्यिक भी।

चयनित कहानियाँ-----

- 1) मुख्यमंत्री : चाणक्य सेन.....संक्षिप्त रूपान्तर.....महेश दर्पण
- 2) चमत्कार : वि.स.खांडेकर.....मराठी से अनुवाद.....प्रकाश भातंब्रेकर
- 3) लंदन की एक रात : निर्मल वर्मा
- 4) चंद्रगुप्त : जयशंकर प्रसाद
- 5) जंगल कट रहे हैं : इकबाल मजीद.....उर्दू से अनुवाद.....अब्दुल मुगनी
- 6) खबर : हंसराज रहबर
- 7) चांदी की तितली : पर्ल बक.....
- 8) 1919 की एक घटना : सआदत हसन मण्टो
- 9) चोर : महाश्वेतादेवी
- 10) गद्दार : युवाल चौंग नियान (कोरियाई कहानी).....अनुवाद.....सुरजीत
- 11) कफरू ; जगन्नाथ प्रसाद दास (उड़ीसा कहानी) अनुवाद राजेन्द्र प्रसाद मिश्र
- 12) संवदिया : फणीश्वरनाथ रेणु
- 13) फोकटिया रेडियो : सलमान रश्दी
- 14) और मैं हार गया

सांप्रदायिकता पर लिखी कहानियाँ

सांप्रदायिकता एक ऐसी विषकन्या है, जो पक्ष-विपक्ष, अच्छे-बुरे, अमीर-गरीब, किसी को न देखती है और न बख्शती है। यह जहरीली आंधी, जब भी और जहाँ भी चली, अपने पीछे विनाश के गहरे दाग और कब्रिस्तानों का सन्नाटा छोड़ती गयी। अधिकांशतः इस जहरीली आंधी या विषकन्या का इस्तेमाल, एक हथियार के रूप में, अपनी सत्ता बकरार रखने के लिए किया जाता रहा है। यह सत्ता चाहे राजनीति की हो, धर्म की हो, अर्थ या काम की या किसी दूसरे किस्म की। रंगभेद, धर्मभेद, वर्णभेद या वर्गभेद के नाम पर हमने हमेशा इस जहरीली फसल को उगाया है। यह किसी एक जगह की समस्या नहीं है। आज इसका स्वरूप अंतर्राष्ट्रीय है.....और इसकी औलाद है आतंकवाद। आज का सबसे बड़ा सवाल इस आतंकगर्भी सांप्रदायिकता से निपटने का है। साहित्य और विशेष रूप से कथा साहित्य इस संबंध में क्या भूमिका निबाह सकता है, इसी बात को ध्यान में रखकर हमने इस अंक की योजना बनाई है।

.....अमन, चैन, किसी भी मुल्क, समाज और जाति की तरक्की के लिए बहुत जरूरी है। यदि हम अपनी सारी शक्तियाँ आपसी वैमनस्य बढ़ाने और लड़ाई-झगड़े में खर्च कर देंगे तो आगे बढ़ने के रास्ते कैसे तलाश कर सकेंगे?

देखा यह गया है कि सामान्य रूप से आम आदमी सांप्रदायिक नहीं होता, लेकिन सबसे जादा इस्तेमाल होता है। इस्तेमाल करनेवाली शक्तियाँ, यह भली-भांति जानती हैं कि जनसाधारण कच्चे माल की तरह है। खास करके कच्ची गिली मिट्टी की तरह और उसे किसी भी रूप में ढाला जा सकता है। उसे उसी कच्चे माल या कच्ची मिट्टी के रूप में बनाये रखना, इन शक्तियों के निजी हित में होता है। और वे उसे वैसा ही बनाये रखती भी हैं। लेकिन एक रचनाकार किसी भी व्यक्ति या भावना के गलत इस्तेमाल से अपने आपको बचाये रखता है। यदि वह ऐसा नहीं करता तो सही अर्थों में रचनाकार ही नहीं है। आग को हवा देना आसान होता है लेकिन वह फैल जाये तो उसे ठंडा करना बहुत मुश्किल होता है। रचनाकार भी हवा देता है लेकिन उतनी ही जितनी नये निर्माण के लिए जरूरी है। जब वह विनाश की ओर झुकने लगती है तो सही रचनाकार उसपर पानी के छींटे भी मार देता है, चूंकि उसका मूल उद्देश्य निर्माण होता है, विनाश नहीं।.....संपादकीय, सारिका सांप्रदायिक सद्भाव की कहानियाँ विशेषांक

अंक में अंतर्भूत कहानियाँ----

- 1) एक और कुंती : विष्णु प्रभाकर
- 2) सिक्का बदल गया : कृष्णा सोबती
- 3) टोबा टेकसिंह : सआदत हसन मंटो
- 4) उल्लंघन : भैरप्पा.....संक्षिप्त रूपान्तर.....बलराम
- 5) वैष्णव जन : राजेन्द्र राव
- 6) वह आदमी : इरविंग वेल्लेस.....अनुवाद.....हरि
- 7) अमृतसर आ गया है : भिष्म साहनी
- 8) जुलूस : फणीश्वरनाथ रेणु.....प्रस्तुति.....कान्ता
- 9) भाई अब्दुल रहमान : अमरलाल हिंगोरानी
- 10) यादों के पंछी : प्र.ई.सोनकांबळे
- 11) निलोफर : कृष्णा अग्निहोत्री
- 12) मुझे ले चले, बाबुल : खदिजा मस्तूर (पाकिस्तान).....अनुवाद.....सुरजीत
- 13) बंटवारे की आंच तले : हंसराज रहबर

- 14) शागिर्द : बाला दुबे
- 15) रंग में भंग : लैंगस्टन ह्यूजेज.....प्रस्तुति...हरि
- 16) पहला सूरज : भगवतीशरण मिश्र
- 17) गोरे अमेरिकी, काले अमेरिकी: जॉन स्टीनबैक
- 18) यादों के परदेस : आसीफ फरूखी रूपांतर महावीर
- 19) अंधेरा : गुरुबचनसिंह भुल्लर : संक्षिप्त रूपांतर.....जया रमेश
- 20) झूठी आंखें : रजिउद्दीन सिद्दिकी.....उर्दू से अनुवाद.....सुरजीत

प्रकरण १७

जब्तशुदा कहानियाँ / साहित्य

मनुष्य समाज में रहता है। समाज व्यक्तियों से बनता है। मानव इतिहास के शुरू से ही व्यक्ति के व्यवहार पर कई तरह के बंधन लगाये जाते रहे हैं। शुरू से ही ये लगाये जानेवाले बंधन या तो धर्म के द्वारा या फिर शासन/सत्ता के द्वारा लगाये जाते थे। अर्थात् दोनों के लिए, परिपालन में डर की भूमिका रहती ही है।

- जहाँतक धार्मिक बंधनों का संबंध है, वे पुराने समय में अधिक प्रभावी होते थे। चूंकि उनके पीछे किसी अव्यक्त बात का डर होता था। उस बात के पीछे कोई तर्क तो होता नहीं था ताकि व्यक्ति उसके लिए बौद्धिक स्तर पर सोचे। लेकिन मनुष्य में मानसिक स्तर पर वह इतनी गहराई तक बैठा होता था कि व्यक्ति बिना किसी ना नुकूर के उसका पालन करते रहता था। यह संस्कार का परिणाम था। लेकिन वे कारण अधिकतर अंधविश्वास के स्वरूप के होते थे।
- जहाँतक सत्ता द्वारा लादे गये बंधनों का सवाल है, उसके पीछे के कारण दिखने लायक होते थे। वे अधिकतर सत्ता के विरोध को कुचलने के लिए होते थे। कोई भी सत्ता चाहे वह अधिनायकवादी हो या लोकतांत्रिक पद्धति से आयी हो, वह किसी भी आधार पर अपना विरोध करनेवाले को सहन नहीं कर सकती।
- एक तीसरे तरह का बंधन होता है, नैतिकता का। उसे व्यक्ति बौद्धिक स्तर पर भी नकार नहीं सकता। नैतिकता ही वस्तुतः मानवीय मूल्यों की सुरक्षा की गॅरंटी है। यह धर्माचार्यों या समाज के नेताओं द्वारा प्रस्तुत की जाकर शिक्षा, संस्कृति और संस्कार द्वारा विकसित होती है और ग्रहण की जाती है। इसे न कोई तानाशाह किसी पर थोप सकता है, और न कोई कानून। इतिहास बताता है कि जब-जब ऐसा हुआ है तब-तब चाहे कोई तानाशाह हो या कोई कानून, उसका विरोध हुआ और इस विरोध ने ही अंततः विद्रोह की भूमिका निभाई है।

मनिषि तो मानते हैं कि दुनिया में साहित्य अथवा किसी भी बात के लिए बनाया गया कोई भी कानून तबतक प्रभावशाली नहीं हो पाता जबतक कि उसे जनसमर्थन प्राप्त न हो। दहेज कानून, शारदा एक्ट इसके उदाहरण हैं। वर्षों प्रसार और प्रचार के बावजूद उनका समाज में मन से पालन नहीं होता। राजनीति हो, धर्म हो या कुछ और, इनसे जुड़ा साहित्य समाज से कतराकर नहीं निकल सकता। इसे समाज की अनचिन्हीं कसौटियों पर उतरना ही पड़ता है। और तब सामाजिक नैतिकता ही इसके सही या जाली होने का निर्णय देती है।

- प्रतिबंध लगाते समय जो कारण दिये जाते हैं उनमें प्रमुख हैं—

- 1) ईशनिंदा : वास्तव में ईशनिंदा किसे कहा जाएं इसका कोई वस्तुनिष्ठ पैमाना नहीं है। चूंकि ईश का स्वयं का वस्तुनिष्ठ अस्तित्व न सिद्ध हुआ है न होने की संभावना है। यह केवल मानसिक व्यापार है। सन 1882 में जी.डब्लु. फुट को ईश्वर निंदा करने के अपराध में दंडित करने से इंकार करते हुए

जज सर विलियम हरकोर्ट ने कहा, “सरकार द्वारा खड़े किये गये ऐसे मुकदमों से सामाजिक नैतिकता को फायदा पहुँचने के स्थान पर नुकसान ज्यादा होता है। मैं समझता हूँ, ऐसी बातें अगर सहज सामाजिक स्विकार-अस्विकार के मत्थे छोड़ दी जाये तो समाज के बेहतर समझनेवाले लोग ऐसी बातों को अपने-आप तिरस्कृत कर देंगे।

2) सामाजिक स्वास्थ्य और तानेबाने को ध्वंस करनेवाली बात : इसके लिए भी हर बार तार्किक और वस्तुनिष्ठ कारण दिया जायेगा ही यह कोई जरूरी नहीं।

3) अश्लीलता का आरोप

श्लील-अश्लील पर सोचते समय कहा जाता है कि यह तो हमारे देखने की दृष्टि पर निर्भर है। यह दर्शक के मानसिक स्तर से जुड़ी है। एक चीज किसी के लिए अश्लील है तो किसी और के लिए साहित्य या कला का मास्टर पीस। प्रश्न सौंदर्यबोध की उपस्थिति का है। यह सभी कलाओं पर लागू होती है। अन्यथा हमें हमारी कई सांस्कृतिक धरोहरों का ध्वंस करना पड़ेगा।

सौंदर्यबोध और सौंदर्यानुभूति के संदर्भ में बहुत गंभीरता से की गयी एक जांच से पता चला है कि ज्यादातर लोग उस न्यूड फोटो को अश्लील मानते हैं जो श्वेत-श्याम रंग में होती है, तकनीकी रूप से घटिया होती है, और जिसमें प्रस्तुत मॉडल अनाकर्षक होते हैं। अगर वही बात सुंदर रंगों में प्रस्तुत की जाए, मॉडल आकर्षक हो और पृष्ठभूमि में प्राकृतिक दृश्य हो तो अधिकतर लोग उसे अश्लील नहीं मानते।

इसके तीन उदाहरण दिये जाते हैं।

मंदिरों पर काम कलाओं का चित्रांकन इसका प्रमाण है। भक्त जनों के लिए तो ये भगवान की मानवोचित लिलाएं होने के कारण पूज्य हैं। कला समीक्षकों के लिए महान कलाकृतियाँ हैं, और मनोविकार या सेक्स विकार से पीड़ित के लिए अश्लील और मानसिक स्खलन का कारण है।

यही बात जनजातियों और आदिवासियों के कबीलों के प्रत्यक्ष जीवन पद्धतियों और संस्कृति, सामाजिक संदर्भों के लिए भी सत्य है। उनके लिए अर्धनग्नता सांस्कृतिक धरोहरें हैं। उनके रहन-सहन का एक सहज तरीका है। आज कोई कहेगा कि इसका कारण आर्थिक है। लेकिन इसकी जड़ें मूलतः सांस्कृतिक हैं। ये अर्धनग्न या नग्न स्थितियाँ उनकी सामाजिकता या मानसिकता दूषित नहीं करतीं।

शहरों में भी भवन निर्माण के लिए ईट-गारा ढोती हुई लगभग अर्धनग्न श्रमिक महिलाएं आजुबाजु के लोगों के मन में कोई यौन विकार उत्पन्न नहीं करतीं। हां, कुछ अपवाद हो सकते हैं। अतः श्लील-अश्लील का निर्धारण व्यक्ति विशेष पर पड़ने वाले प्रभाव से नहीं तो समष्टि पर होने वाले प्रभाव से होना चाहिए।

- पोलैंड के प्रसिद्ध समाजशास्त्री और न्यायविद् डॉ. मेरियन फिलर के अनुसार दुनिया के कई देशों में व्यापक पैमाने पर हुए सर्वेक्षण के अनुसार इस धारणा के परखचे उड़ गये कि पोर्नोग्राफी की वजह से सेक्स संबंधी अपराधों में वृद्धि होती है। उलट डेनमार्क की रिपोर्ट के अनुसार पोर्नोग्राफी को

कानूनी मान्यता देने के बाद सेक्स अपराध कम हुए हैं। अर्थात् किसी भी चीज की अधिकता उसके प्रति विरक्ति पैदा करती है, यह बात यहाँ भी सत्य है।

- पुराने भारतीय साहित्य चिंतकों ने अश्लीलता के तीन लक्षण बताये हैं—जिस काम से हमें लज्जा आये, घृणा पैदा हो, दूसरों का मानसिक, शारीरिक, नैतिक, आत्मिक अथवा अन्य किसी तरह का अमंगल हो, वह काम अश्लील है।
- समाज के अलग-अलग कालखंडों में अश्लीलता के केंद्रों और उसके उद्देक की भिन्न-भिन्न परिकल्पनाएं थीं। विक्टोरिया काल में औरतों का वक्ष, कितना ही खुला रहे, लेकिन टांगों का खुलापन अश्लील माना जाता था। टांगे अश्लीलता का उद्देक स्थान था।
- जिन देशों में वास्तव की जगह तथाकथित आजादी है, उन देशों के रचनाकार प्रायः साहित्य के माध्यम से, अभी भी, किसी मुक्ति, किसी आजादी, किसी क्रांति के इंतजार में हैं। इस 'अमान्य' आजादी की मांग शुरू होती है तभी तथाकथित 'अश्लील' साहित्य की बाढ़ आती है और कुछ शब्द वातावरण में तन जाते हैं—'सेन्सर', 'जब्ती', 'अश्लील', 'आपत्तीजनक', 'विदेशी', 'भूमिगत'।

शोषण-दमन की प्रक्रियाओं पर प्रश्नचिन्ह लटकाना और उनके उत्तरों को टटोलकर उन्हें खोज निकालना। यह विरोधी साहित्य बारबार अहिंसक तरीके से अपनी युग की हिंसा को नंगा करता है। अपने इस नंगेपन को छिपाने के लिए राजनीति को साहित्य के खिलाफ जो हथियार उठाने होते हैं, उनमें 'अश्लीलता' (राजनीति के शब्दकोश में अंतर्भूत विकृतियां) उसका सर्वाधिक मारक हथियार साबित होता है। चूंकि रचनाकार उस समय केवल लेखक नहीं रहता बल्कि वह पीड़ित जनता की 'आवाज़', 'वाणी', 'ओज' और संघर्ष की आत्मा हो जाता है। दरअसल अनजाने में लेकिन अनिवार्यतः यह अश्लीलता, राजनीति द्वारा लेखक पर थोपी ही जाती रही है। स्वस्थ लेखन में कोई अश्लीलता नहीं होती। राजनीति स्वयं में एक अश्लील जीद होती है—सीधे-सीधे जनजीवन से, विकृत बलात्कार में संलग्न।-----राजकुमार गौतम

वेसे तो विचारों पर प्रतिबंध लगाने का सिलसिला तो सॉक्रेटिस काल से अस्तित्व में है।

वैसे किसी भी बात के लिए जबरन लगाया गया 'सेन्सर' होना चाहिए या नहीं, इसपर मनीषियों के अपने-अपने मत हैं।

अश्लीलता का आदिम स्वरूप उर्फ सामन्ती ऐयाशी-----अवध नारायण मुद्गल

- औरत और आदमी के दैहिक संबंध आदिम कार्य है, और आदिम आवश्यकता भी। लेकिन सभ्यता के विकास के साथ ही इसपर नियंत्रण की आवश्यकता भी अनुभव की गयी। और नये-नये नियामक बनते गये। आदि काल में ये कृत्य 'टैबू' रूप में थे और इनपर नियंत्रण के लिए भी नये टैबूज बने थे। बाद में कानून बने, दंडविधान बने।
- वैसे तो बाबिलोन में मुक्त यौनाचार के उदाहरण और कहानियाँ मिलती हैं। लेकिन वहीं दो हजार वर्ष पूर्व के कानून मिलते हैं। ऊर साम्राज्य के तीसरे सम्राट ऊर नामू ने कुछ इस तरह के कानून बनाये

थे कि अगर कोई आदमी किसी दूसरे के पत्नी का चुंबन लेगा तो तेज धारवाली छुरी से उसका निचला ओठ काट दिया जाएगा। किसी अन्य की पत्नी से शारिरिक संबंध रखने के जुर्म में मृत्युदंड या देश निकाला का विधान था। एक नियम यह भी था कि अगर कोई पुरुष अपनी पत्नी को दूसरे के संपर्क में देखता है, और दोनों का तुरन्त वध कर दे, तो उसे सम्मानित व्यक्ति समझा जाएगा।

- विश्व रेकॉर्ड के अनुसार चौदहवीं और पंधरहवीं सदियों में चीन में अश्लील साहित्य की शुरुआत हुई थी और चीनी सम्राट शिह-सुंग (सोलहवीं सदी का आरंभ) के समय तक वहां इस तरह का काफी साहित्य एकत्र हो गया था। आज उस युग की बहुत कम किताबें उपलब्ध हैं। उनमें से एक है ' श्यु ता येह शिह ' (एक बुनी हुई चारपाई की कहानी)

एक तरफ तो चीन में अश्लीलता इतनी बढी हुई थी कि हेन वंश के समय अश्लील सिक्के चलाये गये थे, जिन्हें वसंत के सिक्के कहा जाता था। इनके एक ओर देवी-देवताओं का अश्लील मुद्रा में चित्र होता था। इनके बारे में जनता में अंध विश्वास पैदा हुआ था कि ये बुरी आत्माओं को दूर रखते हैं। ऐसे सिक्के माँ-बाप अपने बच्चों में बांट देते थे।

सुंग वंश ने और भी ज्यादा अश्लील और उत्तेजक सिक्के चलाये जिन्हें ' बेड कर्टन स्प्रेडिंग क्वार्टिन ' कहा जाता था। ये सिक्के लड़कियों की शादी में दहेज का अनिवार्य अंग बन गये थे। सुहाग रात में इन्हें दुल्हन की सुहाग सेज पर बिछा दिया जाता था। ऐसा विश्वास था कि इसके कारण अधिक वैवाहिक सुख प्राप्त किया जा सकता है। ये सामन्ती ऐयाशी के प्रतीक थे।

तो किसी और समय के चीनी कानून के अनुसार बलात्कार की सजा के तौर पर हाथ-पांव काट दिये जाते थे, आंखें फोड़ दी जाती थीं और घावों में पिघला शीशा भर दिया जाता था।

- सोलहवीं शताब्दी में इंग्लैंड में अश्लील साहित्य की शुरुआत हुई और सत्रहवीं सदी के मध्य में अश्लील साहित्य की सबसे पहली महिला लेखिका सामने आयी। उसका नाम था-एफ्रा बेन(1664-1689)। यह एक नाई की लड़की थी। उसका बचपन सुरीनाम में गुजरा, फिर वह इंग्लैण्ड लौट आयी। उसने वहाँ के व्यापारी से शादी कर ली। यह अपने उपन्यास ' ओरोनोको ' के कारण प्रसिद्ध हुई। 1886 में उसने एक नाटक लिखा ' लवर्स वॉच ' जिसमें औरत के दैहिक सुख का खुलासा किया गया है।

विक्टोरिया काल में औरतों की टांगें दिखाई देना तो अश्लील माना जाता था लेकिन वक्ष दिखाई देना अश्लील नहीं। इस लिए औरतें ऊपर से ' लो कट ' लेकिन पैरों तक पूरा ढंकनेवाली पोशाक पहनती थीं। बाद में पूरे पाश्चात्य जगत में औरत की टांगें सौंदर्य का प्रतीक बन गयीं। (लेकिन प्राचीन ख्रिश्चन चर्च ने टॉपलेस ड्रेस को नरक का दरवाजा कहा था)

लॉर्ड चेंबरलेन ने इंग्लैंड के रंगमंच की सेंसरशिप के लिए कुछ नियम बनाये थे जिनका बड़ी सख्ती से पालन किया जाता था। कुछ नमूने—“ नाटक में जहां भी ' शिट ' शब्द आये, उसे हटा दिया जाए “, हत्या

के दृश्य पूरी तरह प्रेक्षकों के सामने न आने दिये जाए “, औरतों के अंगों पर खरोचें न डालीं जाए “, राष्ट्रपति जॉन्सन की मूर्ति के कपड़े न हटाये जाए ‘ ।

आत्मकथाएँ---

पादरियों की आत्मस्विकृतियों के रूप में चौथी शताब्दी में कुछ आत्मकथाएं लिखी गयी थीं। इनमें ऑगस्टाइन की आत्मस्विकृतियां काफी मशहूर हुईं।

विश्व की सबसे प्रसिद्ध अश्लील आत्मकथा वॉल्टर की ‘ माय सिक्रेट लाईफ “ है। इसके 400 पन्ने सिर्फ काम कलाओं से ही भरे हुए हैं। इसके ग्यारह भाग हैं। लेकिन पूर्ण रूप से यह लगभग अप्राप्य है। बताया जाता है की 1926 में इसकी प्रति सात हजार डॉलर में बिकी थी।

1785 में कैप्टन फ्रान्सिस ग्रास ने एक बृहद अश्लील शब्दकोश प्रकाशित कराया था, “द क्लासिकल डिक्शनरी ऑफ द वल्गर टंग “ । इसके प्रकाशन के बाद काफी हंगामा हुआ था।

ख्रिश्चन सम्राटों के नियम काफी सख्त थे। चौथी सदी में दूसरी के पति या दूसरे की पत्नी से संबंध रखनेवाले दोनों व्यक्तियों को जिंदा जला दिया जाता था। सन 364 में जोविएन कानून के अनुसार एक नन से शादी करना सबसे बड़ा अपराध था। बलात्कारी को मारने से पहले उसके नांक, कान, और ओठ काटकर उसे यंत्रणाएं दी जाती थीं।

कानून

1) प्रथम एंग्लो-अमेरिकन अश्लीलता कानून सन 1705 में बना और 1727 में कार्यरूप में आया।

- जब कर्ले नाम के एक व्यक्ति ने पोर्नोग्राफीक किताब ‘ नन इन हर स्मोक ‘ का प्रकाशन किया तो उसे अपराध घोषित किया गया।
- सन 1857 में ‘ आसिन पब्लिकेशन एक्ट ‘ पास हुआ जिसे लॉर्ड कैपबेल एक्ट के नाम से भी जाना गया। इसके अनुसार पुलिस अश्लील प्रकाशन की तलाशी ले सकती थी और न्यायाधीश उसे जब्त कर सकते थे।

अदालतों में साहित्य----

इस संदर्भ विशेष रूप से निम्न उदाहरण लिये जाते हैं-

भारतीय दंड संहिता की धारा 292 के अंतर्गत अश्लीलता की कसौटी क्या है?

संदर्भ : “ दोषी काश्मीर कादर उर्फ काश्मीर सिंह ने मासिक पत्रिका ‘ सुरजमुखी ‘ के सितंबर 1969 के अंक में ‘ तेज बदबू ‘ और ‘ प्यास ‘ नामक दो कहानियाँ प्रकाशित की हैं जिनके बारे में कहा गया कि उनकी विषयवस्तु अश्लील है।”

जांच पड़ताल के बाद दोषी पर भारतीय दंड संहिता की धारा 292 के अंतर्गत अश्लील साहित्य प्रकाशित करने के लिए मुकदमा दायर किया गया। आरोपी ने आरोप को नकार दिया और कहा कि उसपर मुकदमा चलाया जाय। दोनों कहानियों में अश्लील कुछ भी नहीं है।

न्यायालय: “ उपरोक्त धारा के प्रावधान के अंतर्गत इन कहानियों में अश्लीलता है या नहीं?

क्योंकि दंड संहिता में अश्लीलता शब्द की परिभाषा नहीं दी गयी है अतः इससे केवल शाब्दिक या शब्दकोश में बताया गया अर्थ ही लिया जाना चाहिए। अश्लील का अर्थ है जो पवित्रता और शालिनता के प्रति अपमान की भावना से परिपूर्ण हो, जो मशितष्क और विचार द्वारा कुछ ऐसी भावना व्यक्त करे या उसका प्रतिनिधित्व करे जिसे व्यक्त करने की , कोमलता, पवित्रता और शिष्टता द्वारा मनाही की जाती है। कोई भी वस्तु जो अपवित्र और कामुक विचारों को व्यक्त करे या उनके प्रति प्रेरित करे या स्वयं अपवित्र, अशिष्ट और कामुक हो, अश्लील हो सकती है। फिर भी एक धार्मिक और प्राचीन श्रेष्ठ रचना केवल इसलिए अश्लील नहीं हो जाती, क्योंकि उसमें कुछ आपत्तिजनक पंक्तियाँ हैं। क्योंकि ऐसे प्रकाशन का मंतव्य लोगों की मानसिकता के स्तर को गिराना या भ्रष्ट करना नहीं होता। प्रायः कला की वस्तुएं अश्लील नहीं समझी जातीं, जहाँ पर अश्लीलता और कला इतने अधिक घुले-मिले होते हैं, वहाँ सबसे महत्वपूर्ण और विचारणीय बात यह होती है कि, क्या कला इतनी अधिक छायी हुई है कि उसने अश्लीलता को दबा दिया और महत्वहीन कर दिया है।

अश्लीलता की सही परीक्षा जो अब तक पूर्णतः मान्य हो चुकी है, यह है कि क्या रचना सार्वजनिक नैतिकता का खंडन करनेवाली है और पाठकों के मन-मस्तिष्क के स्तर को नीचे गिराने और भ्रष्ट करने के लिए हानिकारक प्रभाव डालनेवाली समझी जाती है। कोकबर्न सी.जे. ने क्विन वी हिकलिन केस में अश्लीलता का परीक्षण बताया था कि जो कि इस देश की सभी न्यायालयों में मान्य है, “अश्लीलता का परीक्षण यह है कि रचना का उद्देश्य क्या उन लोगों को भ्रष्ट करना है जिनपर ऐसे अनैतिक प्रभावों का खुला प्रभाव पड़ता है और जिनके हाथों में ऐसा प्रकाशन आ सकता है।” यह परीक्षण 1952 की 212 नं. की राज्य विरुद्ध मुल्क राज् आदि अपील केस में भी मान्य कर लिया गया था। इसी प्रकार ए.आय.आर 1958 की धारा 210 में बताया गया है, “संहिता में अश्लीलता की व्याख्या नहीं की गयी है, परंतु इसे साधारण और साहित्यिक अर्थ दिया जाना चाहिए। स्वतंत्र विचारोंवाली प्रत्येक अशिष्ट या घृणास्पद या निकृष्ट रचना अश्लीलता की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आती। चाहे सभी अश्लील रचनाएँ अशिष्ट या निकृष्ट, घृणास्पद होंगी। एक रचना को अश्लील बताने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें उन लोगों की नैतिकता को भ्रष्ट करने के उद्देश्य हो, जिन्होंने इसे पढ़ना हो”

1956 की पी.एल.आर. 79 में पृष्ठ 83 पर एक उच्च न्यायालय ने भी कहा है कि अश्लीलता का निर्णय समय, क्षेत्र और मनुष्यों पर विभिन्न रूप से लागू होता है। वास्तव में इस संबंध में जो कुछ हो सकता है, वह यह कि कई परीक्षण किये जाय जोकि प्रत्येक के अश्लीलता के विचारों पर निर्भर हो। सुकान्ता हाल्डर बनाम राज्य इस एक केस में भी कहा गया है कि नैतिक मूल्यों का कोई अपरिवर्तनीय स्तर नहीं है।

एक पत्रिका में प्रकाशित छिटपुट गद्यांश और एकाध भ्रष्ट कहानी पाठकों की दृष्टि से बच सकती है किन्तु ऐसी कहानियाँ एकत्रित करके एक विशेष पुस्तक या पत्रिका के रूप में प्रकाशित करना, पाठकों के मन में विशेष भावनाओं उत्तेजित करने के उद्देश्य से होता है, यह निश्चित है। भावनाओं को उत्तेजित करने के लिए किया गया काम अश्लील है।

इन सारी बातों को ध्यान में लेते हुए न्यायालय ने दोनों कहानियों को अश्लील मानने से इन्कार कर दिया।

(जब्तशुदा कहानियाँ सारिका अंक तीन के सौजन्य से। दोनों कहानियाँ इसी अंक में अंतर्भूत हैं)

- उपरोक्त बात हुई तथाकथित अश्लील साहित्य के प्रकाशन की, एक अन्य मामला है ऐसे साहित्य के बिक्री का।

बम्बई के एक पुस्तक विक्रेता थे रणजीत उदेसी। वे इस आरोप पर गिरफ्तार किये गये थे कि वे डी.एच.लॉरेन्स की मशहूर किताब ' लेडी चॅटर्लीज लव्हर ' बेच रहे हैं। इस किताब को अश्लील माना गया। उन्हें धारा 292 के अंतर्गत गिरफ्तार किया गया था। लेकिन आरोपी ने सर्वोच्च न्यायालय तक लड़ाई जारी रखी।

भारत की पुरानी दंड संहिता की धाराएं 292-296 के अंतर्गत गंदे और अश्लील साहित्य के संदर्भ में यथासंभव विस्तृत व्याख्या करने की चेष्टा की गयी है। सुप्रीम कोर्ट तक कई बहसों भी हुईं। फिर भी इसकी स्पष्ट कसौटी की उपलब्धता नहीं है। यह काल और परिवेश सापेक्ष है।

दूसरी तरफ संविधान की अनुच्छेद 19, धारा 02 के अंतर्गत यह कहा गया है कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की मर्यादा क्या है। इनमें आठ बातों का बंधन है-राज्य की सुरक्षा, न्यायालय का अपमान, विदेशों के साथ के रिश्तों पर चोट पहुँचाना, किसी की मानहानि, अपराध कर्म को प्रोत्साहन देनेवाली सामग्री, देश की एकता और प्रभुसत्ता पर चोट पहुँचानेवाली सामग्री और जनादेश, शालिनता या नैतिकता पर चोट करनेवाली सामग्री को जप्त करने का प्रावधान है।

किसी भी कृति को तब तक अपराधी करार नहीं दिया जा सकता जब तक साफ़ तौर पर यह सिद्ध न हो कि इसका इरादा अपराधिक है। साथ ही ऐसी किताबों को रखने या बेचनेवाले को तबतक दंडित न किया जाय जबतक यह साबित न हो कि वह जन सामान्य की मानसिकता को दूषित करने के उद्देश्य से बेचा जा रहा है।

अदालत ने 'जानकारी' और गलत इरादे से दी गयी जानकारी इनमें भी फर्क किया। और दूसरे प्रकार को अपराध माना।

मुकदमे का फैसला रणजीत के विरुद्ध गया। फिर भी उनके वकील ने बारबार आग्रह किया कि अश्लील की व्याख्या हो। इसपर अदालत ने ' हिक्लिन जांच पद्धति ' का आधार लेने का निर्णय लिया। इस पद्धति के अनुसार समाज के खुले और स्वतंत्र विचार के लोगों के हाथ में पड़नेवाली ऐसी कोई भी सामग्री जो उन्हें अनैतिक विचारों से प्रभावित करने की कोशिश करती है, अश्लील है।

कामसूत्र पर पाबंदी—

‘ कामसूत्र पर’, अंग्रेजों के जमाने में और उसके बाद भी, देश के कई भागों में कई बार प्रतिबंध लगा और उठा। कामसूत्र के वे हिस्से आपत्तिजनक ठहराये गये जो चौरासी आसन प्रदर्शित करते हैं। प्रतिबंध अंग्रेजों ने भी लगाया। वास्तव में कामसूत्र आमतौर पर विस्मृत सा हो गया था। जैसा कि कई बातों में हुआ है। उसके पुनरुद्धार का काम भी चिकित्सक अंग्रेजों ने ही किया। दो अंग्रेज़ रिचर्ड बर्टन और एफ.एफ.आरबटनॉर्थ ‘ कामकला ‘ विषय पर अनुसंधान कर रहे थे। उन्हें किसी से वात्स्यायन के कामसूत्र का संदर्भ मिला। उन्होंने इस ग्रंथ का अनुवाद किया। लेकिन वे चमत्कृत हुए वात्स्यायन के पांडित्य और मनुष्य जीवन की इस अति आवश्यकता के प्रति उनके शास्त्रीय और व्यावहारिक दृष्टिकोण से। उन्होंने मौलिक टिप्पणी की, “कामकला भारतीय संस्कृति का एक अभिन्न अंग रही है। उन्होंने इसे त्याज्य नहीं माना। उनकी मान्यता थी कि काम वृत्ति के विरोधी होते ही मानव मन की सहज गति कुंठित हो जाती है। मानव जीवन का शुद्ध प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है। नवनिर्माण की शक्ति समाप्त हो जाती है। यही सिद्धांत कामसूत्र की आधारशिला है।”

• जब परिवार नियोजन अपराध था

संतती नियमन के लिए सबसे पहले आवाज उठानेवाली एक महिला थी, मार्गारेट सेंगर। इसने एक पत्रिका निकाली ‘ वूमेन रिबेल ‘ और इसके माध्यम से इस मुद्दे को दूर-दूर तक फैलाया। लेकिन कुछ ही समय बाद इस पत्रिका को जब्त कर लिया गया। इतना ही नहीं 1915 में सेंगर को उसके पति के साथ अमेरिकन पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। सभी धर्मगुरुओं ने भी उसकी इस काम के लिये खूब निंदा की और उसे अधार्मिक घोषित किया। लेकिन दुनिया भर के बुद्धिजीवियों ने उसके कार्य को सराहा और अमेरिकी अध्यक्ष से उसे मुक्त करने की अपील की। जेल से छुटने के बाद वह फिर अपने कार्य में जुट गयी। उसने इस विषय पर एक फिल्म भी बनायी।

• अधिनायकवाद के विरुद्ध साहित्य

विश्वप्रसिद्ध अमेरिकी लेखिका ‘ आयरन रैंड ‘ का पहला उपन्यास ‘ वुई द लिविंग ‘ सोवियत रूस विरोधी समझा जाता है। हालांकि लेखिका के अनुसार, “वह तानाशाही के विरुद्ध लिखा गया है-तानाशाही जो किसी भी प्रकार की हो, किसी भी देश में हो, किसी भी काल में हो।”

उपर्युक्त गलत धारणा के कारण ही दूसरे विश्वयुद्ध के दिनों में इटली की सरकार ने सोचा कि इस उपन्यास पर फिल्म बनाकर लोगों को दिखाने से लोग रूस के विरुद्ध और भी जोश से लड़ेंगे। कुछ ही महीनों में इटली के सर्वोत्तम कलाकारों को लेकर फिल्म बना ली गयी और जोरशोर से प्रदर्शित भी की गयी। लेकिन परिणाम उलट हुआ। इटली में अपने ही देश की तानाशाही के विरुद्ध आवाज़ उठने लगी। तब इस बढ़ते हुए खतरे को देखते हुए सभी सिनेमा घरों से फिल्म हटा लेनी पड़ी और भविष्य में उसके प्रदर्शन पर प्रतिबंध लगा दिया गया।

- आत्महत्या पर प्रतिबंध—(घरे से बाहर—द्वारकाप्रसाद के उपन्यास से) नायिका कहती है—

“ अगर तुम्हें कोई मार डालता है, तो राज्य का आदमी कम हो जाता है, यानी उसका नुकसान होता है। इसलिए मारनेवाले को दंड दिया जाता है। इसी तरह अगर कोई अपने आप को मार डालता है। तो भी वह सरकार के एक आदमी की हत्या करता है। मगर जो खुबी समाज की है वही सरकार की भी। तुम बेकारी से, भूख से, बिमारी से तड़प-तड़प कर मर जाओ, सरकार को कोई फिक्र नहीं। तुम्हारे बाल-बच्चे रोगों का शिकार होकर रोज़ मरते रहें, सरकार उसके लिए जिम्मेदार नहीं। वह इसका कोई इंतजाम नहीं करेगी कि तुम्हें काम मिले, खाना मिले, दवा मिले॥ यह तो उसके कर्तव्यों की सूची में आता ही नहीं। तुम्हें तिल-तिलकर मरने का हक है। तमाम दुःखों को एक साथ ही सदा के लिए समाप्त करने का हक नहीं।”

सन 1799 में प्रेस पर लगे प्रतिबंध (इंग्लैंड में)

- अखबारों के मालिक और संपादक अपने नाम और निवास की सूचना सरकार तक जरूर पहुंचाये ।
- अखबार के अन्त में मुद्रक का नाम जरूर छपना चाहिए।
- सरकार के सचिव की जांच के पहले कोई भी अखबार प्रकाशित न हो।
- इतवार के दिन कोई अखबार प्रकाशित न हो।
- इन तमाम कायदों को न माननेवालों को इंग्लैंड से निष्कासित कर दिया जायेगा।

अंग्रेज़ी हुकूमत में प्रेस पर प्रतिबंध लगानेवाले कायदे और कानून

- भारतीय अखबारों ने ब्रिटिश हुकूमत के विरुद्ध सन 1857 से ही विद्रोही दृष्टिकोण अपना लिया था। भले ही वह अखबार अंग्रेज़ों ने क्यों न निकाले हो। ‘बंगाल गॅजेट ‘ जैसे अखबार ने जब हेस्टिंग जैसे अधिकारी की खींचाई शुरू की तो अखबार की सुविधाएं वापस ली गईं औ कुछ ही समय बाद छापखाने पर भी कब्ज़ा कर लिया गया।
- जेम्स सिल्क बर्किंगम को भी अपनी तेज-तर्रार कलम की वजह से भारत से वापस जाना पड़ा था। बर्किंगम का ‘ कलकत्ता जर्नल ‘ अपने समय का सबसे ज्यादा बिकनेवाला अखबार था। सरकार की खामियों को सबसे अधिक प्रसिद्धी देनेवाला यही अखबार था।
- सन 1857 में ही लॉर्ड केनिंग ने भी प्रेस कानून द्वारा अखबारों पर अंकुश लगाने की भरपूर कोशिश की, लेकिन उसे उतनी सफलता नहीं मिली।
- 1870 में लॉरेन्स ने एक सरकारी समाचार एजेंसी का प्रावधान रखा लेकिन इससे भी ज्यादा जरूरी उसे यह लगा कि अभिव्यक्ति की खुली छुट पर नियंत्रण रखा जाय। तुरन्त ताजीराते हिंद में धारा 124 जोड़ दी गयी जो राजद्रोह की सूचक थी।
- तार्थ ब्रुक के वाइसराय काल के दरम्यान अखबार और सरकार इनके बीच लगातार टकराव होता रहा। अखबारों का प्रभाव बढ़ता जा रहा था। 1875 में बडौदा के महाराजा मल्हारराव गायकवाड पर

मुकदमा चलाकर उन्हें गद्दी से उतार दिया गया। इस घटना से जनता तथा अखबार दोनों का उत्तेजित होना स्वाभाविक था।

- बम्बई का ' इंदूप्रकाश ' तो सरकार के एकदम खिलाफ छपता रहा और सरकार का दुश्मन बन बैठा।
- लॉर्ड रिटन इस मामले में काफी सख्त था। उसने अखबारों से जमानत लेने की बात चलाई। पर मजे की बात यह रही कि इसका विरोध न केवल भारत के अखबारों ने किया बल्कि लंडन टाइम्स भी विरोध में शामिल हुआ।
- सन् 1906 में बंगाल विभाजन और तमाम दूसरी घटनाओं ने देशी लोगों में बारूद भर दिया। लॉर्ड कर्जन ने आग उगलते अखबारों से बचने के लिए अपराध भड़काने के विरुद्ध कानून लागू कर दिया। (Incitement to offence Act) | इसके अंतर्गत किसी भी अखबार का आसानी से शिकार किया जा सकता था और उसे कत्ल, हिंसा के लिए भड़कानेवाला घोषित किया जा सकता था। जिलाधिकारी इसके अंतर्गत छापखाने को जब्त कर सकता था। इसके अंतर्गत ही युगांतर, वंदेमातरम्, संध्या जैसे अखबार बंद हो गये। साप्ताहिक अखबार ' फॉरवर्ड ब्लॉक ' जिसके संपादक, सुभाषचंद्र बोस थे उन्हें भी बिना किसी सुनवाई के जेल में बंद कर दिया गया। गैरकानूनी तरीके से तो अंग्रेज़ी हुक्मत ने तमाम कारवाँइयों की ही पर मनमाने कानून बनाकर भी अपना दमन जारी रखा। उदा. इंडियन प्रेस ऐक्ट। डाकघरों के अधिकारी और चुंगी विभाग के अधिकारियों को यह अधिकार था कि वे संशयित आपत्तिजनक बंडल को रोक ले सकते थे।
- सन 1931 में ' भारतीय समाचार पत्र अधिनियम 1931 ' जारी हुआ। इसके अंतर्गत मैजिस्ट्रेट, मुद्रक से दस हजार तक जमानत मांग सकता था, जिसे जब्त भी किया जा सकता था। उल्लंघन करनेवाले को तुरन्त छह महीने की जेल भी हो सकती थी।
- सन 1932 में विदेश संबंधी अधिनियम पास हुआ। इसके अंतर्गत इंग्लैंड के मित्र देशों से संबंधित समाचार नहीं छापे जा सकते थे, जिससे वे नाराज हो सकते हो।
- सन 1934 : भारतीय राज्य सुरक्षा अधिनियम : इसके अंतर्गत राज्यों के प्रशासन पर अखबारों द्वारा की गयी आलोचना को रोकने का प्रावधान था।
- सन 1939 : भारत सुरक्षा अधिनियम
- आजादी के बाद सन 1948 में सर गंगानाथ झा की अध्यक्षता में ' प्रेस लॉज इन्क्वायरी ' ने इंडियन पिनल कोड में धारा 153 A जुड़वाई और उसके साथ ही विदेश संबंधी अधिनियम, इंडियन प्रेस इमरजेन्सी पॉवर ऐक्ट, इंडियन स्टेट प्रोटेक्शन ऐक्ट जैसे अधिनियम समाप्त हो गये।

प्रेमचंद की प्रतिबंधित रचनाएँ

- प्रेमचंद संभवतः हिन्दी-उर्दू के ऐसे कहानीकार थे जिन्हें ब्रिटिश सरकार का कोप सबसे अधिक झेलना पड़ा।

- सन 1878 में अर्थात् लॉर्ड रियन के शासनकाल में पुराना प्रेस कानून तो रद्द हो गया था। लेकिन 1907 में 'सेडिशन मिटिंग एक्ट' आया जिसने तथाकथित राजद्रोही सभाओं पर रोक लगायी और 1910 में अधिक कड़ा प्रेस कानून आया।
- 1908 में प्रेमचंद का पहला उर्दू कहानी संग्रह 'सोजेवतन' जमाना प्रेस कानपुर द्वारा प्रकाशित किया गया। लेकिन वह 'नवाबराय' के नाम से। इनको बुला कर जबरदस्त फटकार लगायी गयी और इसकी 700 प्रतियाँ कलेक्टर द्वारा आग के हवाले कर दी गयीं चूंकि इसमें देशप्रेम से भरी पांच कहानियां थीं—इश्के डुब्बे वतन, दुनिया का सबसे अनमोल रतन, यही मेरा वतन है, शेख मखमूर और सिल-ए-मातम। नवाबराय' के लिखने पर प्रतिबंध लग गया। इस घटना के कारण ही लेखक 'प्रेमचंद' का जन्म हुआ।
- इसके बाद प्रेमचंद ने 'हंस' का प्रकाशन शुरू किया तो यह भी कई बार सरकारी दमन का शिकार हुआ और शुरू-बंद होता रहा। समय-समय पर जमानत मांगी जाती रही। प्रेस जब्त होता रहा।
- यही बात 'जागरण' के बारे में भी होती रही।
- 1933 में प्रेमचंद का प्रसिद्ध कहानी संग्रह 'समय यात्रा' प्रकाशित हुआ। उसकी 24-03-1933 को 200 प्रतियाँ बनारस के एक खुफिया पुलिस इन्सपेक्टर दलीपसिंह द्वारा सरस्वती प्रेस से जब्त की गयीं।
- इसी तरह प्रेमचंद, उनकी 08-10-1936 को हुई मृत्यु तक अंग्रेज़ सरकार का दमनचक्र झेलते रहे।

(सामग्री स्रोत : डॉ. कमलकिशोर गोयनका)

- बीबी बसन्ती का कॉलम।

सन 1914 में एनी बेज़ंट द्वारा प्रकाशित अखबार 'थान्यू' ब्रिटिश हुकुमत के लिए इन दिनों नयी मुसिबत बन गया था। यह था तो अंग्रेज़ी दैनिक अखबार, लेकिन हर अंक में एक हिन्दी स्तंभ होता था। आग उगलते अखबार की लोकप्रियता बढ़ती ही जा रही थी। उन दिनों इस कॉलम की 'बीबी बसन्ती' दिन ब दिन लोकप्रिय हो रही थी। वह और कोई नहीं एनी बेज़ंट ही थी।....और फिर 15-06-1917 को वाडिया और अंडेल के साथ एनी गिरफ्तार हो गयी। लेकिन यह गिरफ्तारी इतनी खतरनाक सिद्ध हुई कि विद्रोह की चिनगारियाँ उठने लगीं। परिणामतः एनी को रिहा करना पड़ा।

सती प्रथा पर प्रतिबंध के पूर्व----

राजा राममोहनराय के अथक प्रयासों के बाद जब सति प्रथा के विरुद्ध खासा जनमत तैयार हो गया तब हिंदू समाज के कुछ कठमुल्लाओं ने राममोहन राय के विरुद्ध आवाज़ उठाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। 14-01-1830 के दिन कट्टरपंथियों ने गव्हर्नर जनरल को भेजी दरखास्त प्रकाशित की। इससे यह सिद्ध होता है कि किसी प्रगतिशील कदम के विरुद्ध रूढ़िवादी किस तरह अडंगे खड़े करते हैं---

“ हमें पता लगा है कि आप, कुछ लोगों के बहकावे में आकर सती प्रथा समाप्त करना चाहते हैं। यह हिंदू धर्म के रीति-रिवाजों में सरासर दखल अंदाज़ी है। हिंदू धर्म के लोग इसे एक गंभीर घटना के रूप में स्वीकार करते हैं। जो औरत अपने पति के साथ चिता पर चढ़ जाती है वह साढ़े तीन करोड़ वर्षों तक अपने पति के साथ स्वर्ग में सुखी जीवन बिताती है। साथ में अपने पति को भी नरक से बचा लेती है। यही नहीं वह अपने पिता और माँ के खानदान की तीन पीढ़ियों को नरक से उबार लेती है।”

प्रतिबंधित फिल्में---

- 1) सेक्सी दृश्यों के लिए : 1933 में बनी हेडी लामार की फिल्म ‘ एक्टेसी ‘ में पहली बार नायिका को पूर्णतः निर्वस्त्र दिखाया गया था। न्यूयार्क में यह फिल्म सात वर्षों तक प्रतिबंधित रही। क्योंकि नारी शरीर को नग्न दिखाना अपराध ही नहीं पाप भी समझा जाता था।
- ‘ ला बांबोले ‘ में प्रसिद्ध इतालवी अभिनेत्री जीना लोलोब्रिगेदा के अंग प्रदर्शन को अश्लील मानकर उसे अदालत में हाजिर होने का आदेश मिला था।

भारत में----

- भारत में ब्ल्यू फिल्म बनाना, दिखाना, देखना सदा से कानूनी अपराध रहा है। फिर भी हम वास्तवता से परिचित हैं।
- 1920-1940 के बीच पोस्टर साहित्य की भरमार रही। ब्रिटिश सरकार इसे देखती, बौखलाती और जब्त कर लेती। लेकिन इन पोस्टरों का प्रकाशन नहीं रुका। कई पोस्टर दोहरे उद्देश्य से भी छापे जाते थे। उन्हें छापकर उनकी कीमत रख दी जाती और बिक्री से जो लाभ होता था, उससे क्रांतिकारी अपने लिए असला एकत्र करते थे। लाहौर का प्रकाशन ‘ एन.डी सहगल एण्ड सन्स ‘ द्वारा छापे गये पोस्टरों उन दिनों काफी लोकप्रिय थे।
- भारत की पहली प्रतिबंधित फिल्म : ‘ सैरंध्री ‘ भारत की पहली फिल्म थी जिसके कुछ दृश्य फिल्म के प्रदर्शन के बाद काट दिये गये। इस फिल्म का निर्माण बाबुराव पेंटर ने किया था, जिनके बारे में कहा जाता है कि उन्होंने अपनी फिल्मों में कला पक्ष को विशेष महत्व देकर भारतीय फिल्म उद्योग में एक नये युग का सूत्रपात किया। उनकी इस फिल्म के हिंसक दृश्य सेंसर के चपेटे में आ गये।
- इधर हाल में ‘ मेरी आवाज़ सुनो ‘ फिल्म के कुछ स्वाभाविक दृश्यों को राजनीतिक कारणों से तथाकथित हिंसक ठहराकर काट दिया गया और फिल्म को केवल वयस्कों के लिए प्रमाण पत्र दिया गया। आश्चर्य की बात यह है कि यह फिल्म मूल रूप से कन्नड़ में बनी थी और उसे मनोरंजन कर से मुक्त किया गया था। फिल्म सबके लिए खुली थी और काफी सफल रही थी।

चाहे अंग्रेज़ी सत्ता हो या आजाद भारत की, उसे जब भी लगा कि फिल्म सत्ता के विरोधी विचार प्रसृत कर रही है, उसने उसपर अंकुश लगाने में बिल्कुल ही कोताही नहीं बरती।

- गुलज़ार की फिल्म ' आंधी ' पर शुरू में दो महीने के लिए प्रतिबंध लगाया गया। लेकिन बाद में 28 दृश्य काटने के बाद फिल्म प्रदर्शित हो सकी। फिल्म, प्रतिबंध के कारण अधिक प्रचारित हुई।
- ' किस्सा कुर्सी का ' आंधी इतनी नहीं चली।
- ख्वाजा अहमद अब्बास के ' नक्सलवादी ' को भी दिक्कतों का सामना करना पड़ा।
- यही हाल मराठी फिल्में ' गल्ली ते दिल्ली ', ' सिंहासन ', ' अंकित ' का भी हुआ।

प्रकरण १८

भावावेग की कहानियाँ

- मनुष्य कई बार अलग-अलग तरह के भावावेग के प्रभाव से गुजरता है और इस दरम्यान वह निष्क्रिय नहीं रहता। उसके हाथों कुछ न कुछ क्रिया होती ही है।
- इतिहास में जितनी भी सृजन या विनाश की घटनाएँ हुई हैं, उसके पीछे कोई न कोई सकारात्मक या नकारात्मक भावावेग रहा है।
- भावावेग जब नियोजित और नियंत्रित ढंग से उभरता है तो उससे नये सृजन का या निर्माण का जन्म होता है। लेकिन वह जब अनियोजित और अनियंत्रित ढंग से उभरता है तो पागलपन बन जाता है और पागलपन की स्थिति में विनाश ही होगा।
- यह आवेग व्यक्तिगत स्तर पर भी हो सकते हैं और सामूहिक स्तर पर भी।
- व्यक्तिगत स्तर पर जब व्यक्ति उसपर नियंत्रण कर लेता है तो जुनून में बड़े-बड़े काम कर जाता है। लेकिन आवेग अगर अनियंत्रित हो और उसके साथ विवेक न हो तो वह हत्या, बलात्कार, आगजनी जैसी घटनाओं का कारण बनता है।
- सामूहिक भावावेग को नियंत्रित करने के लिए सुलझे हुए नेतृत्व की आवश्यकता होती है। उदा. लाल क्रांति।
- और ऐसे नेतृत्व के अभाव में धर्माधता में उभार, दंगे, बड़े पैमाने पर विद्रोह की घटनाएँ सामने आती हैं।
- आजतक विश्व विजय का सपना पालनेवाले आक्रांताओं के कारण जितने भी युद्ध हुए वे ऐसे ही भावावेगों से संचालित थे। आज भी सत्ता की लालसा का भावावेग हमें देखने मिलता है। या फिर अन्याय के विरुद्ध होनेवाले आंदोलनों के पीछे भी भावावेग रहता ही है।
- और इन्हीं स्थितियों से जब साहित्य उभरता है तो वह भी इन्हीं भावावेगों से संचालित रहेगा।
- वास्तव में भावावेगों के लिए न कोई लकिरें खींची जा सकती हैं, न उसकी पहचान करानेवाला कोई फॉर्मूला है। कई बार कई आवेग एकदूसरे के साथ गुत्थमगुत्था रहते हैं। उनके संदर्भ भी बड़े और व्यापक रहते हैं।
- चरम आवेग में होनेवाले काम कितने सही और कितने गलत?

कुछ लोगों का कहना है कि चरम आवेग में किये गये काम ही सही काम होते हैं। लेकिन कुछ लोगों का मानना इसके ठीक विपरीत है। उनके अनुसार चरम आवेग में गलत काम ही होते हैं। इस ढंग का आवेग

एक ओर तो प्रतिरोध, संताप आदि में रूपान्तरित हो सकता है, या फिर एकदम दार्शनिक रूप में। और ये एक विशिष्ट मनोवृत्ति का निर्माण करते हैं।

- भावावेग तर्कसंगत और विवेकपूर्ण भी हो सकते हैं और इससे उलट भी। दूसरी स्थिति में मनुष्य के हाथों होनेवाले काम समाज में तनाव, हिंसा, वैमनस्य आदि पैदा कर सकते हैं।
- चरम आवेग की स्थिति कानून की दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण है। कई अपराध चरम आवेग की स्थिति में होते हैं। उसके पीछे कोई पूर्व नियोजित मंशा या प्लानिंग नहीं होती। कानून दोनों स्थितियों को अलग-अलग ढंग से देखता है। इसी संदर्भ में आधुनिक मनोविज्ञान के सामने एक प्रश्न रखा जाता है कि चरम भावावेग की अवस्था की अवधि क्या होती है या हो सकती है? लेकिन यह एक उलझा हुआ प्रश्न ही है।
- जहां तक साहित्य निर्माण का प्रश्न है, जानीमानी लेखिका मृदुला गर्ग का विचार है कि चरम आवेग के क्षणों के थमने पर आवेग के अनुभवों की भूमि पर, लिखी गयी रचना ही श्रेष्ठ होती है। जब रचनाकार तटस्थ होकर लिखता है, तो उसकी रचना दूसरे या तीसरे दर्जे की बन जाती है।
- प्रेम----

यह मनुष्य की भावनात्मक आवश्यकता है। यह एक ऐसी भावना है, जो उदात्त भी है और शाश्वत भी। इन्सान के लिए प्रेम के अलग-अलग रूप होते हैं। एक अध्ययन में पाया गया है कि शरीर के विभिन्न हिस्सों में अलग-अलग प्रकार के प्रेमों का अलग-अलग असर होता है।

फिनलैंड के अलाटो यूनिवर्सिटी के शोध समूह की अगुवाई में हुए अध्ययन में 558 फिनिश लोगों को शामिल किया गया और प्रतिभागियों को कई तरह के प्रश्न पूछे गये। इस अध्ययन में 27 प्रकार के प्रेमों की पहचान की गयी। जैसे भावनात्मक प्रेम, इन्सान के अलावा अन्य प्राणियों से प्रेम, प्रकृति प्रेम, विचारों के प्रति प्रेम आदि।

कई मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि प्रेमों के बीच स्पष्ट अंतररेखा नहीं होती। प्रेम की परिभाषा नहीं है। अध्ययन में पाया गया है कि जहाँ सच्चा प्रेम, जोशीला प्रेम, जीवन के प्रति प्रेम, शरीर पर सबसे अधिक असर डालते हैं, वही बुद्धिमत्ता से प्रेम, नैतिक प्रेम और व्यवहारिक प्रेम, तुलनात्मक तौर पर कुछ कम प्रभावित करते हैं। शक्तिशाली प्रेमों का असर पूरे शरीर पर होता है। सभी तरह के प्रेमों का असर सिर पर तो होता ही है। सामान्य तौर पर प्रेम शरीर के ऊपरी हिस्से को अधिक प्रभावित करते हैं। लेकिन जब शक्तिशाली प्रेम से कमजोर रूप में महसूस किये जानेवाले प्रेम की ओर जाने पर यह असर सीने के नीचे कम होने लगता है।

विचारों के स्तर पर व्यावहारिक प्रेम सबसे कमजोर प्रेम है। कमजोर प्रकार के प्रेम में छुने का महत्व कम हो जाता है। वही जो प्रेम शरीर में जितना ज्यादा महसूस होता है, वह दिमाग में भी अधिक अनुभूत होता है।

खूद के प्रति प्रेम सबसे अधिक नियंत्रण वाला प्रेम होता है। यह अध्ययन प्रेम की वैज्ञानिक समझ की दिशा में कदम हो सकता है।.....लोकमत समाचार, मेट्रो एक्सप्रेस : 13-12-23

- अतीव भावावेग के प्रभावांगत जीनेवाले पात्र हमें इतिहास, साहित्य, मिथकों में मिलते हैं। इन पात्रों के विषय में रमेश बतरा जी की टिप्पणी---

“ दरअसल प्रेम का आवेग, किसी रुकावट को स्वीकार नहीं कर पाता। लैला-मजनू आदि इन युगुलों का युग, परदे का युग था। नारी किसी भी संबंध के तहत पुरुष की सम्पत्ति थी। ऊंच-नीच, जांत-पात, अमीर-गरीब की खांड्यां अपनी रुढ़ियों समेत चौड़ी होती जा रही थीं। पुरुष को समाज में निरंतर अवांछित हैसियत प्राप्त होती जा रही थी। ऐसे में कोई पिता या भाई, कतई सहन नहीं कर सकता था कि कोई गैरजांतवाला, गरीब या अन्य गांववाला कोई युवक उनकी बेटी पर जान न्योछावर करे या उनकी बेटी उस युवक को स्वप्न में भी देखे। सामाजिक बंधनों और आडंबरों का अंबार था। जिगर साहब के अंदाज़ में ‘ एक आग का दर्या था और उसमें से डूबकर जाना होता था।’ बस, जो आग में डूब गये, वे तपकर सोना हो गये और जो घबरा गये वे मिट्टी के साथ मिट्टी। समय बदला, दर्या आग का न रहकर पानी का हो गया। इसमें नांव और जहाज चलने लगे। सामाजिक बंधन ढिले पड़ गये।.....किस्से बनने लगे....कहीं तलाक होने लगा, कहीं हत्या, कहीं सामुहिक आत्महत्या तो कहीं अत्याचार। जीने की चाह और प्रेम के भावावेग ने किसी को वेश्या बना दिया, किसी को रखैत तो किसी को एकला चलनेवाला संघर्षशील व्यक्ति। किसी को भिखारी, किसी को शराबी और किसी को बैरागी तो किसी को लिखारी। इन स्त्री-पुरुषों की कहानियाँ हमारे लेखकों ने एक बार नहीं कई बार अनेक प्रकार से अंकित की हैं। बस, फर्क पड़ा है तो यह कि इन पात्रों का नाम अमर नहीं हो पाया। चूंकि वे एक व्यक्ति के रूप में चित्रित नहीं हुए बल्कि उन्हें सामाजिक त्रासदी के शिकार के रूप में रेखांकित किया गया।

प्रेम और विवाह के बंधे-बंधाये और अंधे नियमों के शिकंजे को तोड़ने का मूल श्रेय इन्हें नहीं, बल्कि उन विख्यात युगुलों को जाता है, जिन्होंने इस ढांचे को उस वक्त चुनौती दी जबकि व्यक्ति, व्यक्ति नहीं आडंबरों का पुतला होता था। बेशक वे खुद नहीं रहे, परंतु उस पुतले में दरार जरूर डाल गये। उनका दुःखान्त उनके उदात्त चरित्रों को अवश्य उजागर करता है।

प्रेमी ने प्रेमिका को अपनी उपलब्धी नहीं माना न प्रेमिका ने प्रेमी को। उन्होंने अपने मन में जागृत हुए एकदूसरे के प्रति प्रेम के भावावेग को ही उपलब्धी माना, जहाँ आकर मिलन या बिछोह में कोई मूलभूत अन्तर नहीं रह जाता। मगर उन प्रेमियों ने उस युग में भी बाकायदा जतला दिया कि प्रेमी-प्रेमिका यानी स्त्री-पुरुष बाकायदा बराबरी का दर्जा रखते हैं।

जीवन की यह भटकन उनका भटकाव नहीं, पड़ाव था, एक व्यवस्था थी, जिसमें से वे जीवन की लौ तलाश करना चाहते थे।.....इन प्रेमियों ने दर्द और पीड़ा के अंबार को अपना सुख माना, ठीक इस धरती की तरह जिसने उन्हें परवान चढ़ाया। उन्होंने धरती को ही अपना आदर्श बना लिया।..... धरती जिसकी गोद में अथाह जलराशि है, मगर वह हमेशा प्यासी रहती है।.....हमेशा बरसात मांगती है।.....यह बरसात की प्यास ही तो है, जो धरती को माँ का दर्जा दे जाती है और प्रेमियों को महानता का।”

- अर्वाचीन विश्व साहित्य में भी प्रसिद्ध केरेक्टर्स मिलते हैं। साहित्य सृजन की प्रक्रिया के मूल में किसी न किसी प्रकार के आवेग का होना जरूरी है। यह आवेग किस प्रकार विश्व साहित्य में, विभिन्न रूपों में प्रतिफलित होता है तथा किस प्रकार अविस्मरणीय पात्रों के रूप में अपने को चिरंजीवी बना देता है इसका विश्लेषण कर रहे हैं ब्रजेश्वर मदान---

यहाँ एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि आदमी की मूल प्रकृति में जो मूल भावनाएं हैं, वह मानव विरोधी नहीं हैं। जो भावनाएं आत्मघाती सिद्ध होती हैं, वे आदमी अपनी प्रकृति को समझ नहीं पाता इस कारण। उन मूल भावनाओं का सप्रेषण करता है और वह समाज विरोधी रूप ले लेती हैं। यह टकराव की स्थितियाँ ही आदमी की भावनाओं को कहीं कमजोर बनाती हैं तो कहीं प्रबल।

भावावेग की स्थिति और चरित्रों को उनके समय के सामाजिक परिप्रेक्ष्य में देखा और परखा जा सकता है। यही वजह है कि 'अन्ना केरेनिना' में अन्ना केरेनिना का प्रवेश अठारहवें अध्याय में होता है, चूंकि टॉलस्टॉय जरूरी समझते थे कि पहले पाठक को उस सामाजिक परिप्रेक्ष्य से परिचित करवा दिया जाये जिसमें वह चरित्र उपजा है। उसी तरह फ्लाबेयर की 'मादाम बावेरी' को फ्रांस के तात्कालिक समाज में देखा जा सकता है, वह समाज जो सामन्तवादी औद्योगीकरण की ओर बढ़ रहा है। मादाम बावेरी उस संक्रमण काल में बदलते हुए रिश्तों और टूटते हुए मूल्यों का ही एक दस्तावेज़ है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि मादाम बावेरी को शुरू में अनैतिक रचना करार दे दिया गया था। उसी तरह डी.एच.लॉरेन्स का 'लेडी चैटर्लीज लव्हर' भी इंग्लैंड के अभिजात्य समाज की नपुंसकता से उत्पन्न हुआ था, जिसके नैतिक मूल्यों को लॉरेन्स ने तार-तार करके रख दिया। लेडी चैटर्लीज का पति, बच्चा स्वीकार कर लेता अगर वह किसी अभिजात से होता।

आज साहित्य में मादाम बावेरी, अन्ना केरेनिना, लेडी चैटर्ली, या दॉस्तोएव्स्की के इडियट में रोजोगिन और नताशा जैसे जो चरित्र हैं, वे आदमी की इन्हीं मूल भावनाओं और सामाजिक स्थितियों के टकराव से ही उत्पन्न हुए हैं। वे समाज की प्रचलित मान्यताओं के अनुसार चलने से इन्कार करते हैं। वे अपने समय और समाज की उन स्थितियों के खिलाफ पूरे पैशन से जिते हैं, जो उन्हें स्वीकार्य नहीं होतीं। दॉस्तोएव्स्की के चरित्र अपने व्यवहार और कार्य-कलापों में भावावेग की चरम स्थितियों तक पहुँचते हैं। चाहे वह रोजोगिन ही हो जो नताशा का कत्ल करके निर्लिप्त भाव से बैठा है। यही नहीं मूल भावनाओं के आवेग से उपजे उनके चरित्र समाज की विकृतियों को भी सामने लाते हैं।

ऐसे चरित्र हिन्दी साहित्य में भी मिल जाएंगे। समाज के साथ इन विरोधी स्थितियों के कारण ही साहित्य में सोनी-महिवाल, हीर-रांझा जैसे चरित्र आये हैं। रमेश बतरा की कहानी 'फाटक' में जानकी की शादी एक जमींदार से हो जाती है। वह बुढ़ा जमींदार जानकी से विवाह इसलिए करता है कि उसे जायजाद के लिए वारिस चाहिए। और जानकी इस विषम स्थिति का बदला इस तरह लेती है कि बच्चा गर्भ से निकलते ही उसे जांघों में दबाकर मार डालती है।

युधिष्ठिर जुएं में दौपट्टी तक हार जाता है। यह भावनाओं पर नियंत्रण न रख सकनेवाला सामंती समाज था। यह सामंती अहम था। उसे ही आज भी पूंजीवादी समाज के पारिवारिक संघर्ष और पतन का चित्रण करनेवाले साहित्य में देखा जा सकता है।

हमारे यहाँ नैतिकता और मूल भावनाओं में हमेशा लड़ाई रही है। इस दृष्टि से भगवतीचरण वर्मा की 'चित्रलेखा' को एक उल्लेखनीय रचना माना जा सकता है। जहाँ नैतिकता पर आदमी की मूल भावनाओं की विजय होती है।

बंधन आदमी की प्रकृति के, शुरू से विरुद्ध रहे हैं और अक्सर उससे अप्राकृतिक और अस्वाभाविक व्यवहार की मांग करते रहे हैं। यहाँ तक कि धर्म तो आदमी को बताता रहा है कि यह संसार सिर्फ मोह-माया है अतः वह उसकी मूल प्रवृत्ति के विरुद्ध विरक्ति का मार्ग दिखाता रहा है।

दुनिया के इतिहास में भी देखा गया है कि अक्सर पतन के बाद समाजों में सांस्कृतिक क्रांतियां होती हैं। पतन और संक्रमण काल ही साहित्य को डॉन क्विक्झोट जैसे चरित्र दे जाते हैं। यहाँ आदमी समाज से नहीं तो अपने मूल्यों से संचालित होता है। और कई बार वे मूल्य बहुत मानवीय होते हैं। ऐसे मूल्य सार्त्र और कामू को दूसरे महायुद्ध ने दिये। उनके यहाँ अपने-अपने मूल्यों के अनुसार भावावेग की स्थितियों को जीनेवाले और अपने समय की त्रासदियों को दर्शानेवाले चरित्र मिल जाएंगे.....हमारे समाज में रोजोगिन और नताशा हैं लेकिन उनकी त्रासदी को चित्रित करनेवाले डॉस्तोएव्स्की नहीं है।.....इस समाज ने औरत से किसी के लिए सहानुभूति दिखाने की भावना भी छिन ली है।.....साहित्य, हीर-रांझो जैसे पूरे भावावेग से जीनेवाले और मरनेवाले चरित्र निर्माण के लिए वारिसशाह जैसे लेखक की मांग करता है।

“ निजी संदर्भों में बोलू तो मुझ जैसे हजारों युवा प्रेमचंद और प्रसाद को पढ़-पढ़ कर अपनी जेहनियत संवारते रहे और बिना किसी जन समर्थन के अपनी-अपनी प्रेम की लड़ाई अपने-आप लड़ते रहे। कुछ टूट गये, कुछ झुक गये और कुछ जुझ कर विजय का सेहरा समाज से छीन लाये। लेकिन समाज ने उस सेहरे के अलावा उन्हें कुछ देना स्वीकार नहीं किया। सामाजिक कल्याण के लिए बने सैकड़ों संगठन, इन घटनाओं को निजी लड़ाइयों से जोड़कर देखने के आदि बन गये और प्रेम की गरिमा धीरे-धीरे पर्तों के अंदर लांछित होती रही। कहीं इसे अर्थव्यवस्था ने लांछित किया और कहीं वर्णव्यवस्था ने।.....प्रेम को अंधेपन का शिकार होने से बचाना है। प्रेम की सात्विकता उभरकर ऊपर आये और समाज की अहमियत को आंके, यही हमारा ही क्या समस्त कलाओं का परम उद्देश्य है कि वे मनुष्य को श्रेष्ठतम जीवन मूल्यों से जुड़कर जीने को प्रेरित कर सके।

जिन्दगी की छोटी-छोटी भावुकताएं हैं जो इन्सान की जिन्दगी को सही अर्थवत्ता देती रही हैं। भावना का यही ज्वार है जो किसी कर्म का गहन प्रेरक तत्व बनता है। “.....

कन्हैयालाल नंदन, कवि, पत्रकार, लेखक, संपादक।

“ सामाजिक इकाई के रूप में व्यक्ति, संघर्ष, संकर, क्रांति और युद्ध काल में प्रेम की आवश्यकता अधिक अनुभव करता है। “

कुछ चिंतकों के विचार---

“ यह अकेला एक शब्द ‘ प्यार ‘ असल में आदमी और औरत दोनों के लिए दो तरह के रूप लेता है। औरत प्यार को बहुत साफ समझती है। यह उसके लिए केवल भक्ति नहीं है, यह देह-आत्मा का समुचा दान है। बेहिचक, अनवरोध दान, और किसी चीज की पर्वा किये बिना दान। आदमी के लिए ऐसा नहीं होता। अगर ऐसा हो जाये तो वह आदमी, आदमी रह ही न जाये “

.....नित्से,

विश्वविख्यात दार्शनिक

“ मेरे प्रेम में देह गैरहाजिर नहीं रह सकती। “.....से.रा.यात्री द्वारा ली गयी खुशवंतसिंह की मुलाकात से

- सारिका ने अपने अंकों में कुछ बड़ी हस्तियों के प्रेमपत्र भी अंतर्भूत किए हैं—

असंभव शब्द जिसके शब्दकोश में नहीं था, उस योद्धा नेपोलियन का पत्र अपनी सर्वप्रथम प्रेमिका ‘ डिजायरी ‘ के नाम, जिसे वह उम्रभर नहीं भूल सका।

मामूली लकड़हारे का बदसूरत लड़का, जिसकी सिरत ने राष्ट्रपति बनकर, दासों के व्यापार के बदनुमा धब्बों को अमेरिका के चेहरे से मिटा दिया—अब्राहम लिंकन। उनका राष्ट्रपति बनने से कई साल पूर्व ‘ मेरी ओवंस ‘ को लिखा पत्र। मेरी ने लिंकन के विवाह प्रस्ताव को बड़ी बेरहमी से ठुकरा दिया था।

जिसने मार्क्स को किताबों से निकाल कर जिन्दगी में खड़ा किया—साम्यवाद के पिता ‘ लेनिन का रूसी क्रांति के दिनों में (09-07-1919 को मास्को से) लिखा गया एक पत्र ‘ ऋप्सकोया ‘ के नाम।

संत और राजनीतिज्ञ राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का दक्षिण अफ्रीका के जेल से लिखा गया पत्र पत्नी कस्तूरबा के नाम।

तुर्की के ज्वलंत क्रांतिकारी कवि, जिनके जीवन का दुःखद अन्त पागलखाने में हुआ, नाजिम हिकमत का पत्र पत्नी के नाम।

“ यह तुम कभी नहीं भूलना कि कैदी की पत्नी को हमेशा खुश रहना चाहिए। “

विराट भारतीय वेदान्ती, दार्शनिक, सन्त, और गणितज्ञ जिसने हिंदू धर्म का प्रचार सात समुद्र पार किया, स्वामी रामतीर्थ का पत्र किसी अनाम महिला के नाम—“ मेरे दिल पर तो एक भी धब्बा नहीं। “

फ्रांस के बेबाक कथाकार ‘ बालजक ‘ का पत्र ‘ हंसका ‘ के नाम, जिससे उन्होंने पचास वर्ष के उम्र में शादी की।

“सहजीवन का आधार प्रेम है, विवाह नहीं, मन बंध जाये तो लग्न चाहे बंधे न बंधे, कोई फर्क नहीं पड़ता। “ इस सूत्र को सिद्धान्त बनाकर जीनेवाले उपन्यास सम्राट प्रेमचंद का पत्र ‘ शिवरानी ‘ के नाम।

'आदमी का हर व्यवहार उसकी यौन भावना से जुड़ा होता है।' इस विवादास्पद सिद्धांत को प्रतिपादित करनेवाले विश्वविख्यात मनोवैज्ञानिक फ्रायड का पत्र 'मार्था' के नाम।

नजरूल इस्लाम-बंगाल का वह बब्बर शेर, जिसने अपनी हर सांस क्रांति की अगवानी के गीत गाने में होम कर दी और जब निराश हुआ तो पागल हो गया। उस इस्लाम का पहला और आखरी पत्र अपनी पहली पत्नी के नाम जो शादी के पंद्रह साल बाद लिखा गया।

जर्मनी का विश्वविख्यात यहूदी कथाकार फैंज काफ़्का का पत्र ईसाई प्रेमिका 'मिलेना' के नाम, जिसे नाज़ी यातना शिविर में मार डाला गया।

दोस्तोवस्की जिसे पहले राजद्रोह के अपराध में मृत्युदंड दिया गया। फिर उसे बदलकर सात साल के लिए सायबेरिया श्रम शिविर में भेज दिया गया। रूस के उस महान उपन्यासकार का मृत्यु से एक वर्ष पूर्व लिखा गया पत्र 'ऐना' के नाम।

• प्रतिनिधि कहानियाँ

भावावेग कहानियाँ विशेषांक

- 1) नागिन : ताराशंकर बंदोपाध्याय : विश्व साहित्य में स्थापित नाम। उनके उपन्यास 'गणदेवता' को 1966 का भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार।.....प्रस्तुति : सुरजीत
- 2) अंतरंग : जॉ पॉल सार्त्र : अस्तित्ववाद के प्रवर्तक सार्त्र की बहुचर्चित कहानी 'इंटीमिटी' का सारसंक्षेप : मनमोहन चड्ढा।
- 3) चित्रलेखा : भगवतीचरण वर्मा : यह उपन्यास प्रकाशित होते ही हिन्दी के समुचे साहित्य जगत पर छा गया। आज भी इसे हिन्दी जगत की एक प्रतिनिधि रचना माना जाता है।.....संक्षिप्त रूपान्तर : अलका पांडे
- 4) जरा सी बात : इस्मत चुगताई : नवम्बर 1970 अंक में प्रकाशित कहानी का पुनर्प्रकाशन।.....अनुवाद गाई द्र गुप्त।
- 5) पुनरुत्थान : लिओ टॉलस्टॉय : इनके अंतिम उपन्यास 'रिसरेक्शन' का संक्षिप्त रूपान्तर ; कान्ता चौधरी
- 6) बंसीकाका : बलराज वर्मा उर्दू कहानी का रूपान्तर : महावीर
- 7) न हन्यते : मैत्रेयी देवी बंगला उपन्यास का संक्षिप्त रूपान्तर : ललिता अस्थाना।
- 8) स्वप्न की तरह : आशिष सिन्हा
- 9) डोरियन ग्रे का चित्र : ऑस्कर वाइल्ड : अंग्रेज़ी साहित्य में 'कला के लिए कला' सिद्धांत के बहुत बड़े पैरवीकार के महान उपन्यास का संक्षिप्त रूपान्तर प्रेम जनमेजय

10) आदमी आत्महत्या करेगा : राजकुमार गौतम

11) सापों की पहाड़ी : मध्यम वर्गीय विसंगतियों के गंभीर चित्ते फ्रांस के विख्यात कहानीकार गाई द मोपासां की रचना का सुरजीत द्वारा किया गया अनुवाद।

12) दीवारोंवाला लैंडस्केप : एम.जे. फिट्जेराल्ड : ब्रिटिश लेखिका की कहानी अनुवाद : सु.उनियाल

13) शिशुतीर्थ : रविद्रनाथ ठाकुर।

“ ईसा के जीवन के अंतिम अंश की दुःखमय घटनाओं पर आधारित नाटक को “ पैशन प्ले ‘ कहा जाता है। यूं तो यह नाटक अधिकांश ईसाई देशों में खेला जाता है। लेकिन बावेरिया स्थित ‘ ओवर मेगर्न ‘ नदी के किनारे बसे एक गाँव के लोग इसे कुछ ज्यादा ही श्रद्धा के साथ खेलते हैं। उनकी श्रद्धा का अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि उसमें अभिनय करनेवाले सब कलाकार अभिनय से पूर्व, कई दिनों तक, शुचिता के सब नियमों का पालन कर ईसा के ध्यान में सदैव रहते हैं। कहा जाता है कि एक बार इस गाँव में हैजे की महामारी फैली थी। जो गाँववालों द्वारा किये गये ईसा के भजन, मनन-चिंतन से दूर हो गयी थी।

1930 में जब रविद्रनाथ म्यूनिख में थे तो उन्हें यह बात पता चली। उनके मन में नाटक देखने की तीव्र इच्छा हुई और वे वहाँ पहुँचे। नाटक इतना सम्मोहक था कि कई दिनों तक उनका मन ईसा के आत्मोसर्ग की पावन-प्रेरक गाथा से अभिभूत रहा। दो दिनों तक वे किसी से बोले नहीं और बराबर अंग्रेजी में काव्य लिखते रहे। यह उनके द्वारा अंग्रेजी में लिखा गया एकमात्र काव्य है, जो 1931 में ‘ चाइल्ड ‘ नाम से प्रसिद्ध हुआ। भारत लौटने पर उन्होंने इसका ‘ शिशुतीर्थ ‘ नाम से बंगला में अनुवाद भी किया। यह मुक्त छंद की 228 पंक्तियों में है। उसीसे, “संदेह के वशीभूत होकर हमने उसे मार्ग से हटाया, क्रोध के वशीभूत होकर उसे मार डाला, किन्तु अब हम प्रेम के वशीभूत होकर, उसे गले लगायेंगे। “

- प्रेमकथा विशेषांक एक और दो---

नया अनुबंध : मोपासां (1850-1893) : फ्रांसीसी कहानी : पत्नी की उपेक्षा करके जब आदमी बाज़ार होने लगता है तो दाम्पत्य प्रेम पर क्या अनहोनी गुजरती है? पत्नी और वेश्या, और वेश्या और पत्नी की सीमाएं निर्धारित करती, आधुनिक जीवन पर कटाक्ष करती कहानी। फिर भी---

कहा जाता है, मोपासां को तीन शब्दों ने तबाह किया- लेखन, औरत और शराब। मोपासां तकरीबन तीन सौ औरतों के साथ हमबिस्तर हुआ और उन्हीं में से एक द्वारा प्राप्त एक रोग से मरा।

बीच का फासला : बीर राजा

अलग-अलग समय : गोविन्द मिश्र : “ जज्बात होते ही अंधे हैं, और वही उनकी खूबसूरती है। “

स्मरणात्मक कथा रिपोर्ताज : यात्रा एक वेश्या नगर की : मुंगेर : रॉबिन शॉ पुष्प

किले की बाहों में यूँ कैद ,

मुंगेर का चुप सो जाना

विधवा की गोद में जैसे,

किसी बच्चे का मर जाना।

बायबल (नया नियम) का प्रथम हिन्दी अनुवाद, इसी मुंगेर में जॉन पार्सन ने किया था। हम सैर को निकले। गिरजे से निकलकर हम जा रहे थे। सामने एक टूटी सी कब्र। मैं ठिठक गया था। “क्या देख रहे हो?” मेरी जिन्दगी की पहली लड़की ने मुझसे पुछा। “ इस कवि के कितने ही गीत हम गिरजे में गाते हैं। ...लेकिन इस कब्र की हालत देखो।

ज्वार के उस तरफ : नार्वी

दुःस्वप्न : चंद्रशेखर अरोड़ा

ओ बेवफा : सआदत हसन मण्टो

माध्यम : दयानंद अनन्त :

तुमको हमारी उमर लग जाये : उमाकांत मालवीय : पुराणों में दहकते प्रसंगों के संदर्भ में ‘ भारतीय आख्यानों का अद्वितीय ‘ प्रेमोत्सर्ग ‘ की कहानियाँ।

ज्यादाती : शफीकुर रहमान।

एक अनजानी इतिहास कथा : इतिहास अतीत के हादसों की कब्रगाह है। किसी भी कब्र को कुरेदिये, आपको चिखते, कराहते पैशाचिक अट्टाहास लगाते नये-नये हादसे नज़र आयेंगे।

अपरिचिता : विजया राजाध्यक्ष : मराठी कहानी।

प्रेमज्वाला : ओ हेनरी : अमेरिकी कहानी

कोठे की अंगुठी : श्यामलाल शर्मा।

प्रेम में जोखिम तत्व : लक्ष्मीकांत वैष्णव : व्यंग

जल्मत में नूर : एमेलीन स्तानेफ : बल्गेरीयन कहानी

डेड लाईन : प्रेम प्रकाश : इन्होंने नक्सली आंदोलन पर विवादास्पद उपन्यास लिखा ‘ दस्तावेज़ ‘।

एक फुल की मौत : पूरबी बॅनर्जी : भारतीय अंग्रेज़ी कहानी।

टेलिफोन नंबर ग्रॉस वेनर 8829 : जेम्स लीज मिल्ली।

आप बड़े वो हैं : बलराम

कामना : इवान तुर्गनेव : रूसी कहानी

उन्नीसवीं शताब्दी में जन्मे सोवियत संघ के इस महान कथाकार का काफी समय, फ्रांस में, खास करके वहाँ के क्रांतिकारियों के साथ बीता। 'फर्स्ट लव्ह', 'स्प्रिंग टोरेटस' जैसी कथाओं की काव्यात्मकता इसका सबूत है कि शायद उसका जन्म प्रेम की गहरी अनुभूति व्यक्त करने के लिए ही हुआ था। 'फादर अँड सन्स', 'वर्जिन सॉयल', 'युर्दान' जैसी रचनाएँ तुर्गनेव की श्रेष्ठ रचनाएँ हैं।

वह अपने उपन्यासों में आये पात्रों के संबंध में डायरियों में काफी कुछ लिखता था। उनके विकास और कार्यकलापों पर अपनी प्रतिक्रिया लिखता रहता था। इस तरह यह डायरी उपन्यास के समकक्ष एक समानांतर रचना बन जाती थी। तुर्गनेव के अपने व्यक्तिगत जीवन में जिन लोगों का प्रवेश था उनके नाम तथा घटनाएँ उसके डायरी में अंकित हो जाते थे। वह विवादित स्थितियों से बचने के लिए, यह सावधानी बरतता था कि उसकी आत्मरचना पाठकों तक न पहुँचे।

'पोलिना विरादीत' फ्रांस की एक विवाहित प्रख्यात संगीतज्ञ थी। उसका 'आर्ट ऑफ लिविंग' में कई बार उल्लेख है। यह कृति तुर्गनेव ने पोलिना को ही सौंप दी थी। तुर्गनेव आजीवन अविवाहित रहा किन्तु पोलिना के साथ उसके संबंध हमेशा शालीनता के ही रहे। शायद यही कारण था कि जब भी उसे डायरी प्रकाशित करने का आग्रह किया गया, वह हमेशा टालता रहा। इस प्रेम की पवित्रता का परिचय टॉलस्टॉय के नाम लिखे, नेक्रोसोब के पत्र से मिलता है। लेकिन यही प्यार शायद कभी-कभी उसके मन में गहरी पीड़ा भी भर देता था।

'हंटरस् स्केचेज' नाम की उसके रेखाचित्रों की एक किताब है। इसमें उसने बतौर सैलानी रूस के किसानों, मजदूरों और निम्न मध्यम वर्ग के जीवन के प्रामाणिक और जिवंत चित्र खींचे हैं। कामना, उसीसे एक रचना है 'डिस्ट्रिक्ट डॉक्टर'।

प्रकरण १९

नोबेल पुरस्कार प्राप्त साहित्यिक और उनकी कहानियाँ

नोबेल पुरस्कार, विश्व में सबसे बड़ा पुरस्कार माना जाता है। 1901 से प्रति वर्ष यह पुरस्कार उन लोगों को दिया जाता है जिन्होंने भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, चिकित्सा विज्ञान, साहित्य और शांति के लिए विश्व में असाधारण काम किया। अर्थशास्त्र के लिए इसकी शुरुआत 1968 में की गयी। जब कभी पुरस्कार प्राप्ति के योग्य व्यक्ति एक से अधिक पाये जाते हैं तो पुरस्कार की राशि इनमें बराबर बांट दी जाती है। किसी वर्ष कोई योग्य व्यक्ति न मिले तो उस क्षेत्र का पुरस्कार नहीं दिया जाता।

अल्फ्रेड बर्नहार्ड नोबेल यह स्विडन में जन्मे वैज्ञानिक थे जिन्होंने विश्व को डायनामाइट जैसा विस्फोटक दिया। इस अनुसंधान से उन्होंने जो धन कमाया वह राशि उस जमाने में 10 लाख डॉलर तक पहुँच गयी। उन्होंने एक वसियतनामा बनाया जिसके अनुसार उनकी मृत्यु के बाद उनकी बची संपत्ति एक बैंक में जमा कर दी जाय और इसके ब्याज से मिलनेवाली राशि से उपरोक्त पुरस्कार दिये जाय। नोबेल पुरस्कार में नगद राशि के अतिरिक्त एक स्वर्ण पदक और मानपत्र भी होता है। यह एक विशेष बात है कि आज तक करोड़ों लोगों की जान लेनेवाले डायनामाइट के खोजकर्ता ने डायनामाइट के कारण एकत्रित हुई राशि में से ही विश्व शांति पुरस्कार दिया जाता है।

स्वीडन के स्टॉकहोम में 21-10-1833 को एक गरीब परिवार में जन्मे नोबेल के पिता सेना में इंजिनियर थे। 1842 में नोबेल अपने परिवार के साथ अपने पिता के पास पीटसबर्ग चले आये। वहीं रहकर पिता की फॅक्टरी में काम किया और रसायनशास्त्र का अध्ययन किया। लेकिन दुर्भाग्य से फॅक्टरी का दिवाला निकल गया। स्वीडन लौटने के बाद भी उन्हें काफी कष्ट झेलने पड़े। इसी विस्फोटक के कारण उनके भाई की जान चली गयी। लेकिन 1866 से उनके भाग्य ने पलटा खाया। एक दिन उन्होंने देखा कि 'नायट्रोग्लिसरीन' नामक विस्फोटक बंद डिब्बे से बाहर रिसने लगा है। यह डिब्बा एक विशेष प्रकार की मिट्टी 'किसलगुर' में पॅक था। यह पाया गया कि इस मिट्टी के बाद नायट्रोग्लिसरीन का उपयोग अपेक्षाकृत आसान और सुरक्षित हो गया है। इस सुरक्षित विस्फोटक को उन्होंने नाम दिया 'डायनामाइट'। इस कड़ी में 1887 में उन्होंने एक और पदार्थ बनाया 'बॅलिस्टाईट'। यह धुँआ रहित नायट्रोग्लिसरीन पावडर था। पूरी दुनिया इन पदार्थों की ग्राहक बन गयी। 10-12-1896 को नोबेल की मृत्यु हो गयी। उन्हें सम्मान देने के लिए जब विश्व में 402 वे मूलतत्त्व की खोज हुई तो उसे नाम दिया गया 'नोबेलियम'।

- वसियत के अनुसार, भौतिकी और रसायनशास्त्र के पुरस्कार स्वीडन की विज्ञान अकादमी, दवा और शरीर विज्ञान पुरस्कार स्टॉकहोम स्थित केरोलाईन इंस्टिट्यूट तथा साहित्य के लिए पुरस्कार स्टॉकहोम की अकादमी देगी। शांति पुरस्कार नॉर्वे की संसद द्वारा चुने गये पांच व्यक्तियों की कमेटी देगी। "यह मेरी इच्छा है कि पुरस्कार के लिए चयन के वक्त उम्मीदवारों की राष्ट्रीयता को जरा भी महत्व न दिया जाय अपितु उनकी योग्यता ही मानदंड बने।"

- साहित्य के लिए पुरस्कार देने की विधि

नोबेल के वसियतनामे में स्पष्ट लिखा था, "यह पुरस्कार उस स्त्री या पुरुष को दिया जायेगा जिसने गत वर्ष साहित्य के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण और आदर्शवादी स्वभाव की रचना लिखी होगी। इसकी व्याख्या यह की गयी कि साहित्य को मात्र रचनात्मक साहित्य तक सीमित न रखकर आदर्शवादी स्वभाव की किसी भी विषय की रचना को इस अंतर्गत लिया जाय।

पुरस्कार के लिए नाम, गत वर्ष में तैयार की गयी, लिखी गयी, या छपी पुस्तक होने पर ही प्रस्तावित किया जा सकेगा। यदि लेखक की मृत्यु हो गयी हो तो उसका नाम प्रस्तावित नहीं किया जा सकता। हां, नाम प्रस्तावित हो जाने के बाद, एरिक एक्सेल कार्लफेष्ट को 1931 में उनकी मृत्यु के बाद पुरस्कृत किया गया था।

पुरस्कार समिति प्रति वर्ष सितम्बर में जानकार व्यक्तियों से नाम प्रस्तुत करने के लिए कहती है। ये व्यक्ति निम्न लिखित ही हो सकते हैं—

1) स्वीडिश अकादमी या ऐसी ही अन्य संस्था के सदस्य जो स्वीडी अकादमी के विधान तथा मत से सहमत हों।

2) साहित्य तथा भाषा विज्ञान के, विश्वविद्यालय स्तर के प्राध्यापक।

3) पिछले वर्षों के नोबेल पुरस्कार विजेता।

4) विभिन्न देशों की प्रतिनिधि साहित्य समितियों के सदस्य। इनको अगले वर्ष की फरवरी की एक तारीख से पहले, अपनी शिफारिश तथा उसके लिए प्रमाण देने होते हैं। इसके बाद सितम्बर से पहले नोबेल कमेटी अपने प्रस्ताव स्वीडी अकादमी को भेजती है। अक्टूबर के अन्त तक स्वीडी अकादमी उनपर विचार कर नवम्बर के मध्य तक अपना निर्णय जाहिर करती है।

10 दिसम्बर को, नोबेल फाउंडेशन की जयंती के अवसर पर स्टॉकहोम कंसर्ट हॉल में एक बड़े समारोह में स्वीडी अकादमी का एक सदस्य पुरस्कार विजेता को लोगों के सामने प्रस्तुत करता है। और उसे पुरस्कार राशि का चेक, स्वर्ण पदक तथा डिप्लोमा प्रदान किया जाता है। स्वर्ण पदक के एक ओर डॉ. नोबेल की तस्वीर तथा दूसरी ओर लेखक के लिए प्रशस्ति लेख होता है। पुरस्कार विजेता के लिए आवश्यक है कि पुरस्कार पाने के छह महीने के अंदर अपने विषय से संबंधित एक व्याख्यान तैयार करे। इस व्याख्यान का स्थान भी स्टॉकहोम में ही होता है। यदि किसी वर्ष पुरस्कार के योग्य कोई काम पाया ही न जाय तो वह राशि अगले वर्ष के पुरस्कार के साथ जोड़ दी जाती है।

यह पुरस्कार लेने से कोई इन्कार भी कर सकता है-ऐसे प्रसंग -

1) सर्वप्रथम 1920 में जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ने इसे लेने से इन्कार किया था। लेकिन बाद में वे इसे लेने के लिए सहमत हो गये कि वे इस राशि का उपयोग साहित्य की भलाई के लिए करेंगे। फिर उन्होंने इंग्लिश-स्वीस लिटलरी फाउंडेशन की स्थापना की।

2) इसके बाद तीन और लेखकों ने इसे लेने से इन्कार कर दिया।--

अ) बोरीस पास्तरनाक। इन्हें यह पुरस्कार 1958 में घोषित हुआ था। उन्हीं दिनों उनके उपन्यास ' डॉ. झिव्गो ' को लेकर काफी शोर हो रहा था। इसमें लेखक ने रूसी क्रांति के विषय में निराशा व्यक्त की थी। रूस में इस उपन्यास के छपने का सवाल ही नहीं था। लेकिन इसकी पांडुलिपि चोरी-छीपे इटली पहुंच गयी। वहाँ यह प्रकाशित हुई और इसका अनुवाद लगभग सभी यूरोपीय भाषाओं में छपा। पास्तरनाक को नोबेल पुरस्कार उनकी कविताओं के लिए घोषित हुआ था। लेकिन प्रचार यह किया गया कि पुरस्कार डॉ. झिव्गो के लिए है। इस तरह के गलत प्रचार के कारण उन्होंने इसे लेने से ही इन्कार कर दिया। सोवियत सरकार के जबरदस्त नाराजी का मामला तो था ही।

आ) पुरस्कार ठुकरानेवाले दूसरे साहित्यिक थे ज्यॉ पॉल सार्त्र। इस फ्रांसीसी दार्शनिक के लिए पुरस्कार की घोषणा हुई थी 1964 में। इन्कार का कारण उन्होंने यह बताया--“ नोबेल पुरस्कार को अस्वीकार करके मैं स्वीडिश अकादमी और उसके सन्माननीय सदस्यों की अवहेलना या अनादर नहीं कर रहा हूँ। कारण, नितांत व्यक्तिगत और मेरी दृढ़ धारणाओं से जुड़ा है। मैं ऐसा मानता हूँ कि किसी साहित्य पुरस्कार को स्वीकार करते ही साहित्यकार की प्रतिबद्धता, जो उसकी संपूर्ण स्वतंत्रता, सत्य के शोध के साथ होनी चाहिए, पुरस्कार देनेवाली संस्था के साथ हो जाती है। लेखक के रूप में मैं यह मानता हूँ कि उसे न कोई संस्था का सन्मानपत्र स्वीकारना चाहिए न उससे जुड़ना चाहिए।

सार्त्र ने प्रथम मार्क्सवाद का विरोध किया। फिर बीस साल बाद उसे आधुनिक समाज रचना का आधार करार दिया। सार्त्र कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य नहीं रहे, तथापि कम्युनिस्ट विचारधारा के प्रति उनकी समर्पण भावना और लगन अत्युच्च रही। इतना तो निश्चित कि वे एक प्रतिबद्ध, ईमानदार और मानवता प्रेमी समृद्ध लेखक थे।

सार्त्र को पुरस्कार देते समय समिति ने अपने प्रशस्ति पत्र में कहा था, “ सार्त्र का लेखन वैचारिक समृद्धता से पूर्ण है और उसने स्वतंत्रता की खोज और सत्य के शोध के ईमानदार प्रयास के कारण आधुनिक काल को बहुत अधिक प्रभावित किया है।”

उनके नाटकों और उपन्यासों में पुरुष पात्र गौण हैं। प्रधान भूमिका नारी पात्रों की है और सभी नारियाँ विषयासक्त हैं, मगर बड़े सदे दंग से। बुद्धिमति होने के साथ-साथ वे आक्रामक भी हैं।

वे अपने माता-पिता की एकमात्र संतान थे। लेकिन रिश्ते की अपनी एक बहन के साथ कौटुंबिक व्यभिचार की एक घटना अंत तक उनकी एक मनोग्रंथि बनी रही और उसकी झलक उनकी रचनाओं (ओरेस्ती और एलेक्ट्रा, रोड्स टू फ्रिडम, एल्तोना) में दिखाई देती है।

इ) पुरस्कार न लेनेवालों में तीसरे हैं अलेक्ज़ांडर सोल्ज्नेनित्सिन (1974 में)। रूस में रहते हुए, रूस सरकार के विरोधी लेखन के लिए तरह-तरह की सजाएं भोगनेवाले इस लेखक को मजबूर किया गया कि वे पुरस्कार ठुकराये। बाद में रूस से निर्वासित होकर अमेरिका में बस गये।

- जहाँतक निर्वासित लेखकों का प्रश्न है, सर्वप्रथम नोबेल पुरस्कार पानेवाले रूसी लेखक थे ईवान बुनिन। उन्हें 1939 में यह पुरस्कार दिया गया। लेकिन वे सोवियत क्रांति के बाद 1919 से ही अपना देश छोड़कर फ्रांस में निर्वासित जीवन बिता रहे थे।
- साहित्य के लिए पहला नोबेल पुरस्कार 1901 में फ्रांस के कवि रेने फ्रान्सुआ अर्मा प्रुधो को दिया गया। इसके बाद दुनिया भर के लेखकों में विरोध की लहर उठी। अधिकांश का मानना था कि पुरस्कार के असली हकदार लियो टॉलस्टॉय थे। प्रत्यक्ष स्वीडन के 42 लेखकों ने इसका समर्थन किया और वैसा पत्र टॉलस्टॉय को लिखा।
- 1902 में साहित्य का पुरस्कार थ्योडोर मामसन को मिला। वे इतिहासकार थे। जिस पुस्तक पर यह पुरस्कार दिया गया वह 1850 में प्रकाशित हुई थी। जबकि नोबेल के वसियत के अनुसार पुरस्कार प्राप्त पुस्तक पिछले साल प्रकाशित होनी चाहिए थी। ब्रिटेन के भूतपूर्व प्रधानमंत्री विस्टन चर्चिल दूसरे व्यक्ति थे जिन्हें यह पुरस्कार इतिहास लेखन के लिए 1953 में दिया गया।
- दर्शन के लिए दिये गये पुरस्कार 1) क्रिस्तोफ यूकेन (1908), 2) हेनरी बर्गसन (1937), 3) बर्ट्रान्ड रसेल (1950)
- सबसे युवा प्राप्तकर्ता : रुडयार्ड किपलिंग (1907 में, 42 वर्ष की आयु में)। वे पुरस्कार पानेवाले पहले ब्रितानी। लेकिन यहाँ एक सवाल उठाया गया है। किपलिंग के माता-पिता भले ही अंग्रेज़ थे लेकिन उनका जन्म बम्बई में हुआ था। लेखक-पत्रकार के रूप में उन्होंने अपना जीवन भारत में ही शुरू किया था। उनका अधिकतर लेखन भारत से संबंधित ही रहा है। फिर उन्हें भारतीय लेखक क्यों नहीं माना गया। बर्नार्ड शॉ का जन्म आयरलैण्ड में हुआ था लेकिन अंग्रेज़ों से संबंधित लिखने के कारण उन्हें ब्रिटेन का लेखक माना गया था।.....(सुरेश उनियाल)
- मेरी दृष्टि में नोबेल पुरस्कार एक तरह से राजनीतिक पुरस्कार है। कुछ लेखक की भागदौड़ से और कुछ शिफारिशों से यह मिलता है। लॉटरी का टिकट और नोबेल पुरस्कार एक बराबर है। (रमेश बक्षी)
- वे सिर्फ आदर्शवादी लेखकों को ही देते हैं। ये नोबेल पुरस्कार जो हैं वह साम्राज्यवादी प्रचार का साधन है। यह उन्हीं लेखकों को देते हैं जो आदर्शवादी विचारधारा का प्रचार करते हैं। टैगोर को भी इसलिए दिया गया चूँकि ' गीतांजलि ' में सब रहस्यवाद है। जो साहित्य संघर्ष का हो, जनवादी हो उसपर यह पुरस्कार नहीं मिलता। भारत ही क्या, किसी देश में, किसी जनवादी लेखक को नहीं। चीन के ' शू ' क्रांतिकारी लेखक थे। माओ-त्से-तुंग ने उन्हें सांस्कृतिक क्रांति का सेनापति कहा। पर चीन के बारे में लिखनेवाली पर्ल बक को दिया। पर्ल ने चीन में लड़नेवाले किसान का कहीं चित्रण नहीं किया। उन्हें सिर्फ अंधविश्वासी, दूसरे द्वारा पिटते हुए दिखाया है, लड़ते हुए नहीं। चेखव, गॉर्की, टॉलस्टॉय, तुर्गनेव जैसे दुनिया के माने हुए लेखक इस पुरस्कार की गिनती में ही नहीं।

-----हंसराज रहबर

- समिति वामपंथी धारा को पसंद नहीं करती। समिति द्वारा अबतक दिये गये पुरस्कारों का यदि विश्लेषण करे तो पता चलता है कि यह समिति दक्षिण पंथी लोगों की है।.....जॉ.पॉल सार्त्र ने भी इसी कारण इसे लेने से इन्कार किया था।..... अब देखिए , जापान का उपन्यासकार कावाबाता बहुत अच्छा उपन्यासकार नहीं था। बल्कि उसीका समकालिन मिशिमा उससे कई बेहतर उपन्यासकार था। फिर भी पुरस्कार कावाबाता को ही मिला। मैं यही कहूंगा कि वहाँ राजनीति है, जो श्रेष्ठता को नहीं, समर्थन को देखती है।.....खुशवंतसिंह
- दुनिया में रेकॉर्ड के अनुसार 7151 भाषाएँ हैं। लेकिन पिछले 124 वर्षों में जिन भाषाओं में साहित्य के नोबेल पुरस्कार बांटे गये वे इस प्रकार हैं- अंग्रेज़ी-29, फ्रेंच-16, जर्मन-14 (लगभग आधे)। दुनिया में भाषा के अनुसार बोलनेवालों का प्रतिशत है-अंग्रेज़ी-18.8, मँड्रेईन (चीन)-13.8, हिन्दी-07.5, स्पॅनीश-6.9।

वर्षानुसार साहित्य नोबेल पुरस्कार प्राप्त करनेवालों की सूची उपलब्ध है:-

<https://www.thoughtco.com----list>

- नोबेल पुरस्कार आरंभ से ही इस तरह विवादास्पद रहे हैं। इरविंग वैलेस जैसे विख्यात उपन्यासकार ने तो इन धांधलियों पर ' द प्राइज ' नामक एक उपन्यास ही लिख डाला। इसके बाद यह बताने के लिए कि यह उपन्यास कैसे लिखा गया एक और पुस्तक लिखी ' द रायटिंग ऑफ ए नॉव्हेल '। द प्राइस के प्रकाशित होते ही नोबेल पुरस्कार समिति इतनी रुष्ट हुई कि स्वीडन में तो उसपर प्रतिबंध लगवा दिया। समिति के सदस्यों को भी उसके पढ़ने पर मनाही थी। नोबेल पुरस्कारों की राजनीति का पर्दाफाश करते किताब के कुछ अंश (द प्राइस लिखने का आरंभ लेखक ने 1946 में स्टॉकहोम में किया था।)

“ मैं एक अमेरिकी पत्रिका के लिए, हिटलर को विश्व के महानतम व्यक्तियों में से एक माननेवाले प्रसिद्ध स्वीडिश वैज्ञानिक डॉ. हेदिन से भेंट करने गया था। साक्षात्कार के अंत में उन्होंने बताया, 'आपको मालूम है या नहीं, मैं नोबेल पुरस्कारों का एक निर्णायक हूँ।'

मुझे यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ। बातचीत के दौरान मैंने पाया कि नोबेल पुरस्कार का वह निर्णायक विज्ञान और कला के क्षेत्र में काफी हदतक अज्ञानी तो था ही, पूर्वाग्रहग्रस्त और असहिष्णु भी था। मेरे मन में नोबेल पुरस्कार निर्णायक की जो छबि थी, एक निष्पक्ष और न्यायप्रिय व्यक्ति की, वह एकदम ध्वस्त हो गयी। डॉ. हेदिन 1913 में, स्वीडिश अकादमी के, जो नोबेल पुरस्कारों का निर्णय करती है, सदस्य बने थे, और चार में से तीन उपसमितियों के सदस्य थे। वैज्ञानिक होते हुए भी साहित्य का निर्णय करनेवाली उपसमिति के 18 सदस्यों में से एक सदस्य थे।

डॉ. हेदिन ने ही लेखक को बताये अनुसार ही 1938 में जब पहली बार उपन्यासकार पर्ल बक का नाम सुझाया गया था तो 18 में से 10 सदस्य पर्ल बक के पक्ष में नहीं थे। लेकिन हेदिन और सेल्मा लेजरलॉफ के जोरदार वकालत के बाद उनका नाम स्वीकृत किया गया। उसके प्रत्युत्तर में हेदिन ने लिखी चेंग-कै-शेक की जीवनी, पर्ल बक ने प्रसिद्ध की और वह भी बहुत ही कम मुआवजे में। (पर्ल बक को जब पुरस्कार का

पता चला तो उन्हें स्वयं विश्वास नहीं हुआ। क्योंकि वे स्वयं अपने एक प्रतिस्पर्धी थियोडोर ड्रेजियर को अपने से श्रेष्ठ साहित्यकार और पुरस्कार के असली हकदार मानती थी।)

हेदिन की कबुली के अनुसार जहाँ कई निर्णय एकदम सही और अत्युत्तम थे, वही कई अत्यंत मूर्खतापूर्ण, राजनीति और पूर्वाग्रहों से प्रेरित थे। टॉलस्टॉय, इब्सन, स्ट्रिटबर्ग जैसे चोटी के साहित्यकारों को नोबेल पुरस्कार इसलिए नहीं मिल सका, क्योंकि एक नियामक, समीक्षक और कवि डॉ. कार्ल डेविट ऑफ बिरसेन इन लेखकों के कट्टर विरोधक थे और समिति में उनके समर्थकों की संख्या अधिक थी। जहाँतक रूसी साहित्यिकों का सवाल है, महान साहित्यकारों के स्थान पर एक अज्ञात रूसी कवि इवान बुनिन को दिया गया जो रूस छोड़कर पेरिस में रहते थे।

स्वीडिश अकादमी सचिव डॉ. ऑस्टरलिंग एक स्पष्टवक्ता व्यक्ति थे। उन्होंने दी जानकारी के अनुसार , प्रायः लेखकों की पत्नियाँ ही पुरस्कारों के लिए नाम प्रस्तावित करती हैं।

इस संदर्भ जानकारी इकट्ठा करने लेखक जब स्वीडन गये तो उनकी मुलाकात पिछले चालीस वर्षों समिति कार्यालय सचिव रहे बैरन वॉन श्लोदर से हुई। बातचीत के दौरान उनसे पुछा गया कि यह पुरस्कार जेम्स जॉयस या वर्जिनिया वुल्फ को क्यों नहीं मिला। तो बैरन का उत्तर था कि इन रचनाकारों का तो उन्होंने अभी तक नाम ही नहीं सुना।(साहित्य तो बहुत दूर की बात है।)

वैलेस ने बैरन से विश्व की भाषाओं के संदर्भ में बातचीत करते हुए पुछा कि हिंदी के रचनाकारों को पुरस्कार क्यों नहीं? जिस भाषा की जानकारी अकादमी को नहीं है उसके किसी साहित्यकार को पुरस्कार देने के बारे में सोच भी कैसे सकते हैं? अगर यह समिति पचास साल बाद भी दुनिया की तीसरे नंबर की सबसे ज्यादा बोली जानेवाली भाषा के बारे में कुछ नहीं जानते तो इसपर क्या टिप्पणी करें? अगर रविंद्रनाथ स्वयं ‘ गीतांजलि ’ का अनुवाद अंग्रेजी में न करते तो? अर्थात् यह पुरस्कार पाने के लिए कुछ भाषाओं का प्रभुत्व स्वीकार करना आवश्यक है। तो फिर पुरस्कार के निस्पक्षता के दावे का क्या?

नोबेल फाउंडेशन के अधिकारियों का कहना है कि, “ सर नोबेल की इच्छा के अनुसार हम कुछ भाषाओं से बंधे हैं। पुरस्कार केवल उन भाषाओं के या उन भाषाओं में अनुदित कृतियों को ही दिया जा सकता है। इन अधिकारियों को चेखव और टॉलस्टॉय को पुरस्कार न देने का अफसोस तो है। उनके अनुसार एक कारण तकनीकी भी है। इनके नामों का प्रस्ताव किसी कमेटी मेंबर ने दिया ही नहीं। टॉलस्टॉय की मृत्यु 1910 में हुई तबतक 10 पुरस्कार बंट चुके थे। लेकिन टॉलस्टॉय की तुलना में उनमें से कितनों के नाम तुम्हें-हमें याद हैं? गांधी-नेहरू को कभी शांति पुरस्कार योग्य माना नहीं गया।

शोध के दौरान लेखक को कुछ बातें पता चलीं जैसे कुछ विजेताओं को स्वर्ण पदक के अलावा, उसकी पीतल की अनुकृति भी दी गयी। मूल पदक बैंक लॉकर में और अनुकृति लोगों को दिखाने के लिए।

रविंद्रनाथ टैगोर

- जन्म 06-05-1861 को कलकत्ता में। नोबेल पुरस्कार 1913 में ‘ गीतांजली ’ पर। साहित्य पर पुरस्कार पानेवाले एकमात्र भारतीय, और प्रथम एशियाई लेखक। विश्वभारती विश्वविद्यालय के संस्थापक।

कविता, कहानी, नाटक उपन्यासकार, चित्रकार। (1912 तक यह पुरस्कार केवल यूरोपियन लेखकों को दिये गये।) रविंद्रनाथ जी को मिला पुरस्कार उनकी मूल बंगाली कृति को नहीं मिला, उसके अंग्रेजी अनुवाद को मिला।

“ नोबेल पुरस्कार समिति के पास ऐसे साधन नहीं हैं कि वे भारतीय और एशियाई भाषाओं का अनुवाद करें या करवा लें। मूल भाषाओं के कृतित्व का परिचय तो उन्हें हो ही नहीं पाता। इस कारण भारतीय साहित्यकारों तक नोबेल पुरस्कार पहुँचने की संभावना कम ही है।”.....जैनेंद्रकुमार

रोडस्टाइन नाम के व्यक्ति ने रविंद्रनाथ और उनकी गीतांजली का परिचय पश्चिम के शीर्षस्थ साहित्यकारों से करवाया था और उन्हें नोबेल पुरस्कार मिलने की भूमिका तैयार की थी। उसके पहले भारत के अन्य प्रान्त के लोग भी, आज इतने, ‘ रविन्द्रनाथ ’ नाम से परिचित नहीं थे।

गीतांजली की कुछ प्रतियां सर्वप्रथम इंडिया हाउस की तरफ से प्रकाशित हुईं। बाद में ब्रिटेन की चोटी की प्रकाशन संस्था मैकमिलन कंपनी ने गीतांजली की सस्ती आवृत्ति प्रकाशित की। गीतांजली के बाज़ार में आते ही विश्व साहित्य क्षेत्र में धूम मच गयी। 28-01-1914 को कलकत्ता के गव्हर्नमेन्ट हाउस में बंगाल के गव्हर्नर लॉर्ड कारमायकेल ने रविन्द्रनाथ को स्वीडन अकादमी से प्राप्त नोबेल पुरस्कार स्वर्ण पदक और सम्मान पत्र अर्पित किया।

“ रविन्द्रनाथ को ‘ गीतांजली ’ पर नोबेल पुरस्कार दिया गया लेकिन यह उनकी श्रेष्ठ काव्य कलाकृति है, ऐसा कहना गलत है।”.....डॉ. नगेन्द्र

- रविन्द्रनाथ के गीतों की संख्या लगभग तीन हजार है।
- रविंद्रनाथ ने चित्र बनाने की शुरुआत बहुत बाद में की थी, 1928 में जब वे 67 वर्ष के थे। लेकिन उसके बाद मानो उनकी बाढ़ आ गयी। अपने पेंटिंग्स पर उन्होंने 1939 में कहा था, “ मेरे अधिकतर चित्रों में हंसी की कमी है। मैं नहीं जानता ऐसा क्यों है? क्योंकि मैं तो हंसना-हसाना खूब पसंद करता हूँ। शायद गहरे में कहीं, मुझमें पीड़ा ही है।”

रविन्द्रनाथ टैगोर की कहानियाँ

- कहानीकार की हैसियत से रविन्द्रनाथ का स्थान, टॉलस्टॉय, मोपांसा, चेखव की श्रेणी में आता है।....मोपासां सेक्स के प्रति और टॉलस्टॉय धर्म के प्रति सजग हैं। पर रविन्द्रनाथ आदमी के भीतर के आदमी को उजागर करते हैं। छुट्टी, काबुलीवाला, पोस्टमास्टर, समाप्ति, ठाकुर दा, रासमोरिरे धेले, दीदी, क्षुधित पाषाण, कंकाल, नष्ट नीड़ (जिसपर सत्यजित रे ने चारुलता फिल्म बनायी) आदि कुछ ऐसी रचनाएँ हैं, जो गीत-कविता, पारस्परिक स्नेह-ममता, रहस्य को अद्भुत अंतरंगता से रेखांकित करती हैं।.....आषिष सिन्हा
- छोटी कहानियाँ, रविन्द्रनाथ ने अधिकतर तब लिखीं जब वे जमींदारी की देखरेख के सिलसिले में सियालदेह में रहते थे और उत्तर बंग के गांवों में और नदियों में भ्रमण और निवास करते हुए विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों के संपर्क में उन्हें आना पड़ता था। उनकी अधिकांश कहानियों में प्रत्यक्ष देखे हुए

पात्रों की अवतारणा हुई है और प्रत्यक्ष अनुभूत घटनाओं और परिस्थितियों का वर्णन हुआ है। उन स्थूल घटनाओं और परिस्थितियों के भीतर जीवन के जो सूक्ष्म तत्व निहित थे, कवि की अंतर्भेदी और पारदर्शी दृष्टि में वे ठीक-ठाक उत्तर आये और उनकी अपूर्व सुंदर कलात्मक अभिव्यक्ति जो उन्होंने कहानियों के माध्यम से की|.....इलाचंद्र जोशी

- मैं अपने परिवेश के प्रति बहुत सतर्क रहता हूँ और जबतक उचित परिवेश न मिले, तब तक मैं कोई भी कलात्मक कार्य नहीं कर सकता। जब मैं युवक था, मैं जो कुछ देखता, वह करुणा के साथ घूलमिलकर मेरी रचनाओं में आ जाता। अतः मेरी नजर में उन रचनाओं का साहित्यिक मूल्य अधिक है। वे स्वयंस्फूर्त भी हैं। मेरी बाद की शैली इसलिए भी अलग है कि उसमें कहानी के लिए अलग तकनीक है|.....रविन्द्रनाथ
- सारिका द्वारा चयनित प्रतिनिधि कहानियाँ—1) छुट्टी : “ बच्चा जब पढ़ने लगता है तो उसकी जिंदगी में एक उम्र ऐसी आती है, जब उसे औरत स्वर्ग से उतरी किसी अप्सरा सी लगती है और औरत की तनिक भी उपेक्षा उसे बहुत तकलीफ देती है। वयःसंधि की उस तपती आयु का मनोवैज्ञानिक चित्रण करती एक यादगार रचना|....2) नन्हा मालिक : “ वात्सल्य का वह कौनसा रूप था कि रायचरण अपने बेटे को मालिक के बेटे के रूप में पालता रहा और अपना सबकुछ उसपर न्योछावर कर दिया। पर नतीजे में उसे क्या मिला? क्यों होता है ऐसा कि व्यक्ति अपने आपको त्याग और कर्तव्य की उस ऊंचाई पर पहुंचकर पाता है कि उसका अपना कुछ भी नहीं है, वह सबकुछ गंवा बैठा है।”

• प्रतिनिधि कहानियाँ-

लेखक नाम	नोबेल पुरस्कार वर्ष	कहानी
रुडयार्ड किपलिंग	1907	माली
हायनरिख व्योल	1972	चेहरा सॉल बैलों
इसाक सिंगर	1976	अनचाहा सच
मिरोज जोसला	1978	चिमनियों साफ करनेवाला
येजिदा हेलेदा	1980	फटा हुआ बुट
अर्नेस्ट हेमिंग्वे		जीना-मरना
एलियास कानेती		मौत
विलियम फोकनर		भालू
यासुनारी कावाबाता		सोयी हुई रूपसियांरविद्रनाथ
अनातोले फ्रांस	1913	छुट्टी+नन्हां मालिक
सिकलेयर लेविस	1921	शरीफ जोद/ अनोखी प्रार्थना
जॉन गाल्सवर्दी	1930	तुम मुझे पसंद हो
लुइगी पिरांदेलो	1932	वह असफलताओं से खेलता रहा
पर्ल बक	1934	युद्ध / पुष्पहार
एमिल सिल्लापा	1939	बुडी हवेली
हरमन हेन्स	1946	(लघुकथाएं)मार्गदर्शक/बकलम खुद
पार लागरक्विस्त	1951	यही है वह
पास्तरनाक	1958	निलामी
जॉन स्टॅनबॅक	1962	नियो भी मनुष्य बनना चाहते हैं, खेतों से टूटे हुए
मिखाइल शेलोजोव	1965	विवश
मिगेल अस्तुरिआस	1967	लोरी
सॅम्युएल बैकेट	1969	निर्वासित

प्रकरण २०

कथा साहित्य, उसका फिल्मांकन

(संदर्भ : सारिका फिल्म साहित्य कथा अंक, वर्ष 25, अंक 375, फरवरी 85 द्वितीय पक्ष)

विश्व की दस कालजयी फिल्में : चयनकर्ता : सुरेश उनियाल

कालजयी किसे कहेंगे? कालजयी होने के लिए महान होना ही काफी नहीं है। वह तो उसे होना ही चाहिए। इसके अतिरिक्त उसे वक्त की सीमाओं को तोड़ते हुए सर्वकालिकता और सर्वग्राहकता की परिधि में आना होगा।

इस वर्ष सिनेमा अपनी आयु के नब्बे वर्ष पूरे कर चुका है। इस लम्बे दौर में उसने क्या कुछ ऐसा भी दिया है कि आनेवाली पीढ़ियाँ उसे याद रख सके। ऐसी दस फिल्मों का चुनाव करना एक बहुत कठिन काम था। कालजयी होने की कसौटी पर कसे जाने के लिए 25 साल का समय तो कम से कम बीच में होना ही चाहिए। बात शुरू होनी चाहिए विश्व सिनेमा के पितामह D.W. Griffith की फिल्म ' बर्थ ऑफ ए नेशन ' से।

1) बर्थ ऑफ ए नेशन (बर्थ ऑफ ए सिनेमा) :

यों तो 1895 में लुमिएर भाइयों ने पहली फिल्म बनायी थी। पर वे सभी एक शॉट की फिल्में थीं। जॉन मेलिए ने पहली बार दो शॉट्स को मिलाने की तकनीक का प्रयोग किया। एडिसन ने पहली बार ऐसी फिल्म बनायी जिसमें यह तकनीक भी थी-द ग्रेट रॉबरी।

ग्रिफिथ ने 1908 में फिल्में बनाना शुरू किया था। ' ए अंडर्व्हेचर ऑफ डॉली ' में उसने पहली बार अभिनेताओं को लिया और शॉट लेने से पहले बाकायदा रिहर्सल करवायी। ' एनक आर्डन ' में क्लोज अप लिया। ' रमोना ' में पनोरामा शॉट लिये। ' द लनडील ऑपरेटर ' में पहली बार कैमरे को गति दी और कटिंग का बहुत अच्छा उपयोग किया। ये सभी एक रील की फिल्में थीं। पहली बार उसने दो रील की फिल्म बनायी ' मैन जेनेसीस '।

1914 में जब ' बर्थ ऑफ नेशन ' बनायी तो यह सिनेमा के क्षेत्र में एक क्रांति थी। यह 13 रील की, पूरी लम्बाई की पहली फिल थी। इससे पहले इतनी लम्बाई की फिल्म बनाने का साहस किसीने नहीं किया था और किसीको यह विश्वास नहीं था कि इतनी लम्बी फिल्म देखने का धैर्य दर्शकों में होगा। पर इस फिल्म ने बॉक्स ऑफिस पर भी तहलका मचा दिया। तकनीकी दृष्टि से भी कोई पहलू ऐसा नहीं था जिसका प्रयोग ग्रिफिथ ने इसमें न किया हो। विख्यात फिल्म निर्देशक हिचकॉक का मानना है कि आज आप फिल्म में जो कुछ देखते हैं, उसकी शुरुआत ग्रिफिथ से ही हुई है।

2) बेटेलशीप पोटेमकिन :

बर्थ ऑफ नेशन के लगभग 10 साल बाद 1924 में रूस में बनी सर्गेई आर्जेस्टाइन की फिल्म ' बेटेलशीप पोटेमकिन ' को मैं मूक फिल्म युग की दूसरी कालजयी फिल्म मानता हूँ। 1905 में ओडेसा में नौसैनिकों की क्रांति, इस फिल्म का विषय था। पर यह मात्र उस क्रांति का फिल्मांकन ही नहीं है। यह पूरे संघर्ष की कथा है। एक गतिमयता और लयात्मकता इसके हर फ्रेम में है। दरअसल यह सिनेमा के इतिहास की पहली कलाकृति है। तकनीक, संरचना और विषयवस्तु का समन्वय इतनी खूबी से हुआ है कि सबकुछ जिवंत हो उठा है। ओडेसा की सीढ़ियों का दृश्य संयोजन तो सिनेमा के इतिहास में अपनी किस्म का एक ही है। मूक फिल्म होते हुए भी हम सैनिकों द्वारा चलायी गयी गोलियों की आवाज़ें और लोगों की चीख-पुकार महसूस कर सकते हैं। उस औरत की चिंख को भला कौन भूला सकता है, जिसके बेटे को गोली लगी है। कुछ लोग भव्य दृश्य संयोजन के लिए आइजेस्टाइन की सवाक फिल्म ' इवान ए टेरेबल ' को बेहतर फिल्म कह सकते हैं, उसमें कई तरह के ट्रिक् शॉट्स का काफी अच्छा इस्तेमाल है। पर जिस तरह से विद्रोह की पूरी प्रक्रिया को व्यक्ति से समूह और समूह से जनमानस तक फैलने की अंतर्निहित गतिशीलता को आइजेन्स्टाइन ने पोटेमकिन में चित्रित किया है, वही इसे एक कालजयी फिल्म बनाने के लिए पर्याप्त है।

3) द पैशन ऑफ जॉन आर्क :

1929 में कार्ल द्रेये ने यह फिल्म बनायी थी। यह वह समय था जब ध्वनि, फिल्मों में प्रवेश कर रहा था। अमेरिका में ' द जॉज सिंगर ' बन चुकी थी, जिसकी दस में से चार रिलों में ध्वनि अंकित था। ' जॉन आर्क ' एक मूक फिल्म थी। कैथॉलिक धर्माधिकारियों के न्यायालय में जॉन आर्क से की जानेवाली पुछताछ को ध्वनि की जरूरत नहीं है। धर्माधिकारियों की क्रूरता तथा पाखंड और जॉन आर्क की असहाय स्थिति और मन की दृढ़ता बिना किसी ध्वनि के सीधे दर्शक के हृदय में पैठ जाती है। इस फिल्म की दूसरी विशेषता है मानवीय चेहरों के लैंडस्केप। मानवीय चेहरों का क्लोजअप या क्लोज मीट शॉट (अधिकतर) में विलक्षण संयोजन पहली बार हमें इस फिल्म में मिलता है। इसका प्रयोग बाद में रोजेलिनी, बर्गमैन और सत्यजीत रॉय जैसे परवर्ति फिल्मकारों ने किया। एक शॉट के बाद दूसरे शॉट में कटिंग इतनी लयात्मक है कि दर्शक को इसे देखते हुए संगीत लहरी का सा आभास होता है।

4) रूल्स ऑफ द गेम

द्वितीय विश्व युद्ध से पहले के यूरोप के सवाक सिनेमा में एक महत्वपूर्ण नाम है फ्रांस के ' ज्यॉ रेनुआ ' का। उसने 1939 में ' रूल्स ऑफ द गेम ' बनायी थी। पर युद्ध की छाया इस फिल्म के रास्ते में बराबर रुकावट डालती रही। दो बार यह फिल्म जब्त हुई। फिर युद्ध की बमबारी ने इसे लगभग नष्ट ही कर डाला। 1946 में जाकर दो फ्रांसीसी उत्साही युवाओं ने अथक परिश्रम से इसके बचे-खुचे हिस्सों को इकट्ठा कर कर फिर इसे पुनर्जिवित किया। यह फिल्म युद्ध पूर्व के यूरोप के समाज पर एक सीधी टिप्पणी है। एक ही घर में, एक ही पार्टी में, दो समाज एक दूसरे के समांतर, एक दूसरे के अस्तित्व से अप्रभावित, काम कर रहे हैं। एक समाज है मालिकों का और एक नौकरों का। एक व्यक्ति है, जो इन दोनों से अपने को जोड़ता है। वह है ऑक्तेव्ह, जिसकी भूमिका स्वयं रेनुआ ने की है। इस बुर्जुआ समाज के कुछ

नियम हैं। इन नियमों का उल्लंघन करते हैं दो व्यक्ति। मालिकों के वर्ग का युरियो और नौकरों के वर्ग का शुमाखर। गलतफहमियों के एक सिलसिले के बाद युरियो, शुमाखर की गोलियों का निशाना बनता है और मारा जाता है। दरअसल यह फिल्म कई स्तरों पर एक साथ चलती है। पारंपरिक फ्रांसीसी थिएटर की शैलीबद्धता के साथ अपने समकालीन यथार्थ जगत के विषयों और व्यक्तियों का सम्मिश्रण, रेनुआ ने बड़ी खुबियों से किया है। उसने एक हल्की-फुल्की कॉमेडी को एक त्रासद मानवीय नाटक के साथ मिश्रित किया है। इसके पात्रों में, कोई भी पात्र, खलनायक नहीं है। सभी के प्रति निर्देशक की सहानुभूति है पर उनके व्यवहारों के द्वारा समाज की विसंगतियों को बड़ी खुबी से निरूपित किया है। यही सादगी इस फिल्म को शाश्वतता देती है।

5) सिटिजन केन :

द्वितीय विश्व युद्ध के आग में जहाँ यूरोप जल रहा था और वहाँ के कला और संस्कृति जगत पर एक प्रकार से मौत का सन्नाटा छाया हुआ था, वहाँ अमेरिका में सिनेमा तथा अन्य कलाएं फल-फुल रही थीं। 1941 में आरसन वेल्स नामक एक 26 वर्षीय युवक ने एक फिल्म बनायी ' सिटिजन केन '। यह एक आत्मकथात्मक फिल्म थी। इसमें चार्ल्स फोस्टर केन नाम के व्यक्ति के पूरे जीवन को समेटा गया। उसके उत्थान और पतन को भी।

दरअसल यह एक संपूर्ण फिल्म है, जो मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, नाटकीय, कामदीय सभी स्तरों पर खरी उतरती है। इसमें मनुष्य की इच्छाशक्ति की प्रबलता को दिखाया गया है, वहीं उसकी क्षुद्रता को भी। इस फिल्म का तकनीकी पक्ष भी मजबूत है। केन की भूमिका स्वयं वेल्स ने की थी।

6) सायकल थिच्ज

युद्ध के बाद इटली में एक नये सिनेमा आंदोलन का सूत्रपात हुआ। इसका नाम था ' नवयथार्थवाद ' या ' न्यूवो रियलिज्म '। उसके सूत्रधार थे ' वित्तोरिया डी.सिका, रोजेलिनी, विस्कोती ' आदि। यह पहला बड़ा आंदोलन था, जिसने पूरी दुनिया के फिल्मकारों को प्रभावित किया। भारत में भी विमल रॉय से लेकर सत्यजीत रॉय तक इससे अप्रभावित नहीं रह सके। ' दो बिघा जमीन, पथेर पंचाली ' जैसी फिल्में बनीं। इस पूरे आंदोलन में जिस फिल्म की सबसे अधिक चर्चा हुई, वह थी वित्तोरिया डी.सिका की 'बायसिकल थिच्ज '।

कहानी मात्र इतनी है कि युद्ध के बाद टूटे हुए इटली में बेरोजगारी की जो भयंकर लहर आई, उसमें अंतोनिओ को किसी तरह पोस्टर चिपकाने की नौकरी मिल गयी। पर शर्तें थीं कि उसके पास उसकी अपनी सायकिल हो। वह घर की और चीजें गिरवी रखकर, अपनी गिरवी रखी सायकिल छुड़ाता है। लेकिन दुर्भाग्य से नौकरी के पहले दिन ही उसकी सायकिल चोरी हो जाती है। पूरी फिल्म उस सायकिल की तलाशी की है। फिल्म देखते हुए दर्शकों को भी इच्छा होती है, वे भी इस तलाशी अभियान में शामिल हों। इसकी सबसे बड़ी पूंजी इसकी सहजता है। पटकथा से लेकर तकनीक तक सब कुछ जैसे बड़ी सहजता से तैयार किया गया है। पर प्रभाव की दृष्टि से यह अंदर तक कुरेद जाती है। यही गुण इसको शाश्वत मूल्य देता है।

7) रशोमन

यूरोप और अमेरिका के फिल्मकारों ने पचास के दशक से पहले एशिया के फिल्मकारों को कोई महत्व नहीं दिया था। लेकिन पचास के दशक में जपान में अकिरा कुरोसावा और भारत में सत्यजीत राय के अभ्युदय के बाद एशियाई सिनेमा को नजरअंदाज करना उनके लिए संभव नहीं रहा। 'रशोमन' (1951) कुरोसावा की एक बहुत ही जटिल फिल्म है।

तेरहवीं सदी के जापान की पृष्ठभूमि की यह कथा हर देश और हर काल के इस सत्य को उदघाटित करती है कि किसी भी व्यक्ति के लिए सत्य वह नहीं है, जो घटता है, बल्कि सत्य वह है, जैसा कि वह उसे घटते हुए देखना चाहता है। मनुष्य और मनुष्यता के प्रति अविश्वास से शुरू हुई यह कहानी, विश्वास पर समाप्त होती है।

एक घटना है—एक डाकू जंगल में एक समुराई के सामने ही उसकी पत्नी के साथ बलात्कार करता है और समुराई मारा जाता है। चार व्यक्ति—डाकू, समुराई की पत्नी, समुराई (जिसकी आत्मा को एक माध्यम द्वारा, अदालत में गवाही के लिए बुलाया जाता है) तथा इस घटना को छिपकर देखनेवाला एक लकड़हारा— इस घटना को अपने-अपने ढंग से सुनाते हैं और चारों के सत्य एकदूसरे से भिन्न होते हैं।.....जहाँ लकड़हारा स्वेच्छा से उस बच्चे को गोद लेने के लिए तैयार हो जाता है, जिसे कोई, रशोमन गेट पर छोड़ गया था।

8) पथेर पंचाली

यह सत्यजीत राय की प्रथम फिल्म थी 1955 में बनायी हुई। उस समय भारत एक सामाजिक परिवर्तन के दौर से गुजर रहा था। लगभग इसी तरह का सामाजिक परिवर्तन का दौर 1910 के आसपास भी था, जब भारत में औद्योगिक क्रांति की शुरुआत हुई थी। दोनो बार गाँव के लोग शहर की तरफ आने लगे थे। इसलिए जब राय ने 1955 में 1910 के पृष्ठभूमि की कहानी उठायी तो वह पूरी तरह से सामयिक थी। पर राय ने जिस तरह परिवार में एक व्यक्ति और गाँव में एक परिवार के अंतर्संबंधों का चित्र इस सामाजिक परिवर्तन के दौर में खींचा, वह अपने-आपमें अद्वितीय है। इस कहानी का सच जहाँ बंगाल के उस क्षेत्र विशेष का सच है, वही वह पूरे भारत का, पूरी दुनिया का औ सार्वकालिक सच भी बन जाता है।

पथेर पंचाली को हम फिल्म के व्याकरण की पाठ्यपुस्तक भी कह सकते हैं।

9) वाइल्ड स्ट्राबेरीज (1957)

इग्मार बर्गमैन की फिल्मों की विशेषता यह है कि वे कैमरे से व्यक्ति के बाहर का ही नहीं, भीतर का भी साफ-साफ चित्र खींचते हैं। यथार्थ और फंतासी का एक अनोखा मिश्रण वे तैयार करते हैं।

उनकी एक फिल्म का नाम लेकर नहीं कह सकते कि वह बाकी सबसे अच्छी है। लेकिन जब एक का चुनाव करने की बाध्यता आ ही जाये तो मैं 'वाइल्ड स्ट्राबेरीज' का ही चुनाव करूंगा। यह बूढ़े इसाक बोर्ग के जीवन के एक दिन का चित्रण है।..... जब वह लूड विश्वविद्यालय से अपनी ज्यूरिबिली डॉक्टरेट लेने

के लिए कार से जा रहा है। यह यात्रा जितनी सड़क पर हो रही है, उतनी बॉर्ग के भीतर भी है, जहाँ उसका अतीत एक भयावह सपने की तरह उसे कौंचता रहता है।

10) हिरोशिमा मोन अमार

फ्रांसीसी न्यू वेव्ह सिनेमा ने गोदार, शबरोल, त्रुफो जैसे महान फिल्मकार दुनिया को दिये। पर जब दुनिया की दस कालजयी फिल्मों को चुनने की बात आती है तो मैं ' लेस कजिन्स (शबरोल), ज्यूल्स एट जीम, फोर हंड्रेड ब्लोज (त्रुफो), विकएंड, ब्रेथलेस(गोदार), आदि की बजाय एलन रेने की फिल्म ' हिरोशिमा मोन अमार(1959) का चुनाव करता हूँ। रेने हांलाकि तीनों से बड़े कलाकार नहीं है, लेकिन हिरोशिमा मोन अमार निश्चित रूप से इस आंदोलन की एक श्रेष्ठ फिल्म है।

1958 में एक फिल्म शूटिंग के लिए एक फ्रांसीसी अभिनेत्री हिरोशिमा जाती है और वहाँ उसकी मुलाकात एक जापानी आर्किटेक्ट से होती है। लड़की युद्ध के दिनों में एक जर्मन सिपाही से प्रेम करती थी, जिसे गोली मार दी गयी थी। यह एक त्रासदी है, उस लड़की की त्रासदी, उसे रेने जोडता है एक युग की त्रासदी से। हिरोशिमा पर परमाणु बम गिरने की घटना से। ये दोनों व्यक्ति प्रतीक बन जाते हैं दो नगरों ' नेबिए '(जहाँ लड़की रहती थी और उसके प्रेमी को गोली मारी गयी थी) तथा हिरोशिमा ' के। फिल्मकार ने जानबुझकर इन पात्रों को कोई नाम नहीं दिये ताकि दर्शक इन व्यक्तियों से उलझने के बजाय उन त्रासदियों पर केंद्रित हो सके।

भारतीय परिप्रेक्ष्य

बंगाली क्लासिक और हिन्दी फिल्मांकन

देवदास : शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय : बंगला उपन्यास : संक्षिप्त रूपान्तर-सु.उ.

बंगला के इस बहुपठित उपन्यास में, ऐसा क्या है कि इसे बार-बार फिल्माने की जरूरत अनुभव होती रही। पहली बार (1936) पी.सी.बरुआ के निर्देशन में, देवदास और पार्वती की भूमिकाएं निभाई थीं के.एल.सहगल और जमुना ने। दूसरी बार बिमल राय के निर्देशन में दिलीपकुमार और सुचित्रा सेन ने (1956)। और तीसरी बार.....

गुलज़ार की टिप्पणी :

- भारतीय सिनेमा में साहित्यिक कृतियों पर सबसे अधिक फिल्में सत्यजीत राय ने बनायीं।
- बरुआ साहब ने जब फिल्म बनायी, तब हिन्दी का बोलता सिनेमा करीब-कतील जन्म ले रहा था। न उनके पास अच्छे उपकरण थे, न आऊटडोर शूटिंग की सुविधाएं थीं, न विकसित तकनीक थी। हर बात के लिए इनडोर शूटिंग पर निर्भर करना पड़ता था। आप देखें तो कहीं-कहीं, पर्दे, पेड़-पौधे हिलते नजर आएं। फिर भी उनके लिए यह काम बहुत बड़ा जोखिम भरा और चुनौतीपूर्ण था, जिसे उन्होंने बड़ी हिम्मत और खूबसूरती से पूरा किया। बिमल राय के समय तक हमारे सिनेमा की स्थिति काफी सुधर गयी थी। अब देवदास का दृश्यांकन बरुआ साहब से अधिक सही और वास्तववादी हो सका।

- लेकिन इन दोनों ही निर्माताओं ने पारो और चंद्रमुखी के चरित्रों को ज्यादा अहमियत नहीं दी। ये दोनों महिलाएं, देवदास का रिफ्लेक्शन बनीं रहीं। सारा ड्रामा देवदास के इर्द-गिर्द घुमता रहा। जबकि मुझे शरतबाबू के इस उपन्यास में देवदास ही सबसे कमजोर चरित्र नजर आता है। देवदास पूरी जिन्दगी एडेलोसंट एज से बाहर नहीं निकल पाया। उसने कहीं भी स्थितियों से संघर्ष नहीं किया और जिन्दगी से भागता रहा। इन दोनों ही फिल्मकारों ने सिनेमैटिक लायसेंस के रूप में नाच-गानों की जो भरमार की है, वह स्थिति भी पूरी फिल्म को नौटंकी बनाकर रख देती है।
- दोनों औरतें सबसे ज्यादा अहमियत रखती हैं। बावजूद तमाम मान्यताओं और परंपराओं के निर्वाह के इन दोनों में बोल्डनेस है। वे परिस्थितियों से जुझना जानती हैं। उनमें देवदास के प्रति प्यार के साथ ही साथ त्याग की भावना भी है। वे दोनों देवदास की तरह स्वार्थी नहीं हैं।

(गुलज़ार ने कुछ साहित्यिक कृतियों पर बनायीं फिल्में—समरेश बसू की ‘ पथिक ‘ पर ‘ किताब ‘ और ‘ अकाल बसंत ‘ पर ‘ नमकीन ‘, शरत बाबू की ‘ पंडित मोशाय ‘ पर ‘ खुशबू ‘, आंधी, मौसम ।“ इन फिल्मों को बनाते समय दृष्टि मेरी अपनी ही रही है और मैं अपनी दृष्टि के बारे में बहुत स्पष्ट हूँ कि वह व्यवसायिक नहीं है। मैंने अपनी फिल्मों को कभी सफलता-असफलता के तराजू में नहीं तोला, अच्छी और बुरी के तराजू में ही तोला।”)।

साहिब, बीबी और गुलाम : विमल मित्र : संक्षिप्त रूपान्तर—धीरेन्द्र

भूतनाथ को तब कुछ भी नहीं पता था , जब उसने जवा से कहा कि अस्थाना की बचपन में जिससे शादी हुई थी, वह मर गया हो तो वह सुपवित्र से शादी कर ले। लेकिन जब जवा ने उसे वह कागज दिया तो आखिर क्या लिखा था उस कागज में, जिसने भूतनाथ को ताउम्र अविवाहित रहने को मजबूर कर दिया। बंगला के बहुपठित उपन्यास का सार-संक्षेप

गुरुदत्त ने इसी उपन्यास पर इस नाम से फिल्म बनायी। फिल्म का निर्देशन अबरार अलवी ने किया। वह अपने समय की सफलतम फिल्मों में थी। हालांकि गुरुदत्त ने कई जगह ‘ सिनेमैटिक लिबर्टी ‘ ली है, लेकिन उपन्यास के अन्त को विशेष रूप से बदला है। दर्शकों को यह लिबर्टी, यह बदलाव बहुत पसंद आया था। हो सकता है, आपने उपन्यास न पढ़ा हो, लेकिन फिल्म अवश्य देखी होगी। संभव है, यह सार संक्षेप आपके निर्णय में सही मदद करें....

पथेर पंचाली : सत्यजीत राय : प्रस्तुति ---सु.उ.

यह सत्यजीत राय की पहली फिल्म थी और पहली फिल्म थी जिसने भारतीय सिनेमा को आन्तरराष्ट्रीय स्तर पर मान्यता दिलवायी।

पथेर पंचाली के दर्शक अच्छी तरह जानते हैं कि यह फिल्म दर्शकों के जीवन का अनुभव बनकर कितने गहरे में उतर जाती है। विभूतिभूषण बंदोपाध्याय के उपन्यास ‘ पथेर पंचाली ‘ पर सत्यजीत राय जैसे वरिष्ठ और चर्चित निर्देशक ने तीन खंडों में फिल्मांकन किया—पथेर पंचाली, अपराजितो और अपुर संसार। यह सिक्वेंस पथेर पंचाली से है जो हमें कहानी के प्राणतत्त्व से तो जोड़ता ही है.....पिशी में वृद्धावस्था

के अवसाद और उसकी मौत पर दुर्गा की सहजता और पटकथा के सबल तकनीकी पक्ष की छबि भी इस सिक्वेन्स के बहाने देखी जा सकती है।

अशनि संकेत : विभूतिभूषण बंदोपाध्याय संक्षिप्त रूपान्तर...हिमा कौल

“ झूठ, भूख से भी भला कोई मरा है?.....जिस देश में खाने-पीने की इतनी चीजें हो, वहाँ लोग निराहार कैसे मर सकते हैं? पूरे भारत के संदर्भ में भूख, जिन्दगी और मौत की विडंबना के विभिन्न पहलुओं को उजागर करती एक कहानी जिसपर सन् 1973 में सत्यजीत राय के संगीत और निर्देशन में इसी शीर्षक से एक बहुचर्चित फिल्म भी बनी। प्रमुख भूमिका में थे सौमित्र चॅटर्जी, संध्या राय, बबिता एवं नानी गांगुली आदि।

खंडहर : सोमेन्द्र मित्र :

“ स्मृतियाँ और फंतासी जब मिलती हैं, तो कैसे अनोखे संसार की सृष्टि होती है। सोमेन्द्र मित्र की कहानी पर आधारित मृणाल सेन की चर्चित फिल्म ‘ खंडहर ‘ का यह सिक्वेन्स, कहानी के उस मार्मिक अंश को सामने रखता है, जो समूचे फिल्म का प्राणतत्व है। यह सिक्वेन्स इसी फिल्म के संवाद लेखक प्रस्तुत कर रहे हैं.....

हिन्दी :-

सद्गति : प्रेमचंद

“ क्या प्रारंभिक नीतिकारों ने कभी सोचा होगा कि उनके द्वारा कि गया वर्ण विभाजन इतना विकृत रूप भी ले सकता है, जिसमें आदमी, आदमी के साथ जानवरों जैसा व्यवहार करने लगेगा? स्वातंत्र्य पूर्व भारत में यह व्यवस्था अपने विकृततम रूप में मौजूद थी। उसीका एक रूप प्रस्तुत किया है कथा सम्राट प्रेमचंद ने इस कहानी में, जिसपर सत्यजीत राय जैसे महान फिल्मकार ने फिल्म बनायी। यह फिल्म दूरदर्शन के लिए बनायी गयी थी। निर्देशन के अतिरिक्त पटकथा और संगीत भी सत्यजीत राय का ही था। इसमें काम करनेवाले कलाकारों में मुख्य थे, पं.घासीराम की भूमिका में मोहन आगासे, दुखी चमार की भूमिका में ओम पुरी तथा झुरिया की भूमिका में स्मिता पाटील। “

यही सच है : मन्नु भंडारी

अठारह वर्ष की आयु में किया प्यार भी कोई प्यार होता है भला। वह तो निरा बचपना होता है।....फिर भी उसके टूटने पर आह और आंसुओं के दौर से क्यों गुजरना पड़ता है?.....क्या प्यार जीवन में एक ही बार, कि एक से ही किया जा सकता है?.....फिर साथी के दूर होते ही, दूसरे साथी की तलाश क्यों होती है? नये साथी के साथ संबंध पुख्ता होते न होते, अगर बचपन का साथी फिर अचानक जीवन में आ जाये तब.....। प्रेमिका किसका वरण करें?.....दोनों में से कौन सच्चा है? वह या यह, या जो सामने है वही सच है, शेष सब मिथ्या, मृगतृष्णा.....प्रेम संबंधों के दोराहे पर खड़ी एक युवती की प्रेमगाथा, जिसपर कुछ

वर्ष पहले, ' रजनीगंधा ' फिल्म बनायी थी बासु चॅटर्जी ने। उनके द्वारा बनायी गयीं अन्य फिल्में हैं, राजेंद्र यादव का ' सारा आकाश ', शरत् ब्राबू का ' स्वामी ', ' छोटी सी बात '।

सिंहासन : अरुण साधु : मराठी.....संक्षिप्त रूपान्तर...प्रभाकर द्विवेदी

“ यह क्यों संभव नहीं होता राजनीति में कि लोग अपने निहित स्वार्थों को छोड़कर देशहित में लग जाये? क्यों राजनेता एकदूसरे की टांग खींचने के लिए मौके की तलाश में रहते हैं? सिंहासन के लिए ऐसी ही एक छीना-झपटी की कहानी आपको सुना रहे हैं मराठी के कथाकार अरुण साधु। इसपर मराठी में फिल्म बनायी थी युवा फिल्मकार जब्बार पटेल ने। इसके साथ ही नासिरुद्दीन शाह की कुछ और फिल्मों और भूमिकाएं.....चक्र में कोढ़ी, अर्धसत्य में पियक्कड़, अल्बर्ट पिंटो...में, एक तुनकमिजाज, मोहन जोशी हाजिर हो में मवक्किलों को चुसनेवाला वकील, स्पर्श में अंधा।

कन्नड़ : संस्कार : यू.आर.अनंतमूर्ति....सं.रूपांतर...महेश दर्पण

कौन जीतेगा? रुढ़िवादी कर्मकांड या लोकतांत्रिक समाज?....कौन हारेगा.....अच्छुतों के सामने भगवान के ठेकेदार या भगवान के ठेकेदारों के सामने तथाकथित अच्छुत?.....समाज में व्याप्त जड़ संस्कारों पर प्रहारकर्ता एक उपन्यास, जिसपर कन्नड़ ही में इसी शीर्षक से गिरीश कर्नाड के निर्देशन में एक बहुचर्चित फिल्म बनी थी।

मलयालम : मछुआरे : तकषि शिवशंकर पिल्लै सं.रू. हिमा कौल

एक लड़के को प्यार करने के बावजूद, उस लड़की की शादी अन्य लड़के से कर दी गयी। शादी से किसे क्या हासिल हुआ? यह सवाल पुछता, मछुआरों की जिन्दगी पर लिखा गया यह मलयाली उपन्यास, फिल्म के लिए भी बहुत सार्थक साबित हुआ। इसमें प्रमुख भूमिकाएं सत्यन और शीला ने निभाईं। इसके निर्देशक थे रामू करियात। प्रस्तुत है, इस बहुचर्चित उपन्यास ' चेम्मीन ' का सार संक्षेप।

- “ हिन्दी में जब-जब साहित्य कृतियों पर और विशेष रूप से हिन्दी की साहित्य कृतियों पर फिल्में बनीं तो वे पूरी तरह पीट गयीं। जबकि यह बात विदेशी फिल्मों और अन्य भारतीय भाषाओं की फिल्मों के बारे में इतनी सच नहीं है। आखिर इसका कारण क्या है?

प्रेमचंद की आधा दर्जन से अधिक कहानियों या उपन्यासों पर फिल्में बनीं। लेकिन आम दर्शक उन्हें लगभग भूल चुका है। कम से कम ' साहिब, बीबी और गुलाम ' के मुकाबले में तो भूल ही चुका है। जबकि प्रेमचंद जनमानस के चितरे के रूप में विमल मित्र से कहीं बड़े और महत्वपूर्ण लेखक है। हिन्दी का पाठक भी विमल मित्र की अपेक्षा प्रेमचंद से अधिक जुड़ा है। फिर फिल्मों के स्तर पर यह बात प्रेमचंद के साथ क्यों न हो पायी? इसका एक कारण यह हो सकता है कि फिल्म जगत में हिन्दी साहित्य की समझ रखनेवाले फिल्मकार या तो हैं ही नहीं या बहुत कम हैं। उर्दू, पंजाबी या बंगला को समझनेवाले लोगों का वर्चस्व पूरे हिन्दी फिल्म जगत पर छाया हुआ है। उनकी नजर में हिन्दी की साहित्यिक कृतियाँ, उनके व्यवसाय को चौपट कर सकती हैं, लेकिन बढ़ा नहीं सकतीं।

‘ सारा आकाश, ‘ उसकी रोटी, ‘ भुवनशोम, ‘ 27 डाउन ‘ आदि फिल्मों में प्रायोगिक सिनेमा के नाम पर बनायीं तो गयीं, लेकिन डिब्बे में बंद होकर रह गयीं। जिन्दगी से कटी हुई कलात्मकता, हर क्षेत्र में अपना असर खो चुकी है, चाहे वह साहित्य का क्षेत्र हो, या फिर फिल्मों का। फिर भी हमें ‘ सारा आकाश ‘ से शुरू हुए, आज के नये, सार्थक या सही सिनेमा की भूमिका से, भविष्य के लिए अच्छी आशाएं ही बंधती हैं।
“.....संपादकीय।

- सार्थक सिनेमा से दर्शक विमुख क्यों?.....परिचर्चा.....प्रायोजक.....प्रफुल्ल शहा।

(“ सार्थक सिनेमा के अधिकांश फिल्मकारों ने आम आदमी की आसान सी बात उठायी। फिर क्या कारण है कि उनकी फिल्मों में आम आदमी ने स्वीकार नहीं की? क्या उनका प्रस्तुतिकरण जटिल था या कि सार्थक सिनेमा के नाम पर वे जटिल सिनेमा का निर्माण करते रहे। यदि कल का अनपढ़ और गरीब दर्शक सामाजिक समस्याओं को झेलती, ‘बंदिनी’, सुजाता ‘ या दो बिघा जमीन ‘ देखता, समझता था तो आज का दर्शक सार्थक सिनेमा से विमुख क्यों है? इन और ऐसे ही तमाम सवालों के जबाब दे रहे हैं सार्थक सिनेमा से जुड़े फिल्मकार--)

निःसंदेह सिनेमा सर्वाधिक शक्तिशाली व लोकप्रिय माध्यम है। ललित कलाओं के संगम स्वरूप यह माध्यम सामाजिक-राजनीतिक चेतना का साधन बनने के साथ-साथ जनसाधारण को शिक्षण प्रदान करने की महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने की क्षमता रखता है। मगर दुःख के साथ कहना पड़ता है कि भारत में बहु-उपयोगी सिनेमा माध्यम को धनोपार्जन का साधन ही माना गया है और लोगों को सिर्फ सस्ता और भौंडा मनोरंजन ही परोसा जाता है।

एकतरफ सिर्फ पैसे से सारोकार रखनेवाले फिल्मकारों की बहुत बड़ी जमात है। जिसके बरक्स बहुत कम फिल्मकार कुछ नया, विचारोत्तेजक, समकालीन, कलात्मक और प्रयोगात्मक देने का प्रयास करते हैं। इन गिने-चुने फिल्मकारों को व्यावसायिक फिल्मकारों के साथ साधनों की अनुपस्थिति में असमान प्रतियोगिता करनी पड़ती है। उनका मार्ग कल भी कठिन था, आज भी कठिन है। आज भी उन्हें दूर-दूर तक मंजिल नहीं दिख रही है। वे अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए सदैव संघर्षशील रहते हैं।

आम आदमी को प्रतिबिंबित करनेवाली फिल्मों से दर्शक विमुख ही रहते हैं। फिर भी पिछले कुछ समय में, ‘मोहन जोशी हाजिर हो ‘, ‘ जाने भी दो यारों ‘, ‘ अर्थ ‘, ‘ अर्ध सत्य ‘ और सारांश आदि फिल्मों को दर्शकों ने खुशी से स्वीकृति दी है।

कुंदन शहा : पहली फिल्म थी ‘ जाने भी दो यारों ‘

कुछ फिल्मों अपने वक्त से आगे होती हैं। और सालों गुजरने के बाद उनकी कदर होती है। ‘ कागज के फूल ‘, ‘ साहिब बीबी और गुलाम ‘, ‘ बंदिनी ‘, और ‘ धर्मपुत्र ‘ जैसी कितनी ही फिल्मों अपने वक्त से बहुत आगे थीं और तत्कालीन वर्षों द्वारा पसंद नहीं की गयीं। साहिब बीबी और गुलाम तो भारत की प्रथम सिनेमास्कोप फिल्म थी। गुरुदत्त को जितना सन्मान आज दिया जाता है उतना उन्हें अतीत में नहीं मिला।

हमें एक बात दिमाग में रखनी चाहिए कि दर्शकों का प्रमुख उद्देश्य मनोरंजन था और रहेगा। अच्छाई के बावजूद शास्त्रीय संगीत की तरह सार्थक सिनेमा देखनेवालों की संख्या हमेशा कम ही रहेगी।

साहित्य और सिनेमा कला के अलग-अलग माध्यम हैं। उनका व्याकरण और प्रस्तुति भिन्न हैं। यही वजह है, एक माध्यम का दूसरे माध्यम में रूपान्तर होने पर फर्क महसूस होता है। साहित्यिक कृति के फिल्म रूपांतर से शायद ही कभी किसी को संपूर्ण संतोष मिला हो। देखिये, ' इडियट ' की पांच, दोस्तायवस्की की एक कहानी पर बारह बार और ' हेम्लेट ' की कितनी ही फिल्मी आवृतियां बन चुकी हैं और भविष्य में भी बनेगी। कुछ फिल्मकार अपने समय के मुताबिक भी रचना का नया अर्थ प्रस्तुत करते हैं। इससे कृति में तब्दीली भी आती है। जैसे कि जापान के ' कुरोसावा ' मॅकबेथ के फिल्मीकरण के वक्त मूल नाटक की सीमा से कहीं आगे निकल गये थे।

कांतिलाल राठौड़

हमारे शिक्षित फिल्मकार विश्व सिनेमा से अच्छी तरह परिचित होते हैं। वे भारतीय सिनेमा के परंपरागत रूप को अपनाने के बजाय कुछ नया अर्थात् विदेशी बनाना चाहते हैं। वे विश्व सिनेमा के श्रेष्ठ सृजकों को चुनौती देना चाहते हैं। हम किसीसे कम नहीं। अंततः वे कला, श्रेष्ठता और प्रायोगिकता के नाम पर (भारतीय लिहाज से) कुछ करते रहते हैं। ये लोग माने या ना माने मगर इगो प्रॉब्लेम के शिकार होकर वे सबक्वांशियसली भी विश्व के उत्कृष्ट सृजकों से टक्कर लेना चाहते हैं और इस प्रतियोगिता में अंततः लाचार दर्शक ही मारा जाता है।

कुछ साल पहले रूस में टॉलस्टॉय के ' वॉर अँड पीस ' पर बारह घंटे की फिल्म बनी थी। पर लोगों ने इसी कहानी पर बनी हॉलीवुड की डेढ़ घंटे की फिल्म ज्यादा पसंद की।

- कॅमेरे की आंख से, कलम की बात पर्दे पर रूपांतरित करना आसान खेल नहीं है। दो सौ पृष्ठों की कहानी की सभी घटनाओं को सिर्फ दो घंटों में समाविष्ट करना असंभव है। अंततः कुछ घटनाओं को छोड़ दिया जाता है या उनका सारांश ही फिल्माया जाता है। यही वजह है, प्रायः निदेशक पर कहानी के प्रति इमानदार न रहने का आरोप भी लगता रहा है।
- साहित्यिक कृतियों को फिल्माने के खतरे : फिल्म समीक्षक ब्रजेश्वर मदान

@ कथा रचना में लेखक को केवल शब्द देने होते हैं। जबकि उसे फिल्माते समय फिल्मकार को उसे इमेज में रूपांतरित करना होता है।

@ फिल्म के दो रूप पूरी दुनिया में जाने जाते हैं। एक कथाचित्र और दूसरा वृत्तचित्र।

@ सिनेमा को ऐसा स्वरूप मिला, जो तकनीक के विकास के साथ दर्शकों को गुलाम बनाता गया। उसका काम दर्शकों का भावात्मक और ऐंद्रिक शोषण करके उन्हें लूटना और सिनेमा घर के अंधेरे में उसकी सभी ऐंद्रिक शक्तियों को नियंत्रित करके, उनकी सोचने-समझने की शक्ति नष्ट करना हो गया। देखनेवाले को सिनेमा के सामने बेबस नहीं होना चाहिए और अंधेरे में दर्शक को ' हिप्नोटाइज ' करनेवाला प्रभाव भी खत्म होना चाहिए।

@ सिनेमा के विकृत स्वरूप को बदलने के लिये जरूरी है कि उसमें ' इमोशन ' को कम करके विचार को सामने लाया जाये। इसका उद्घाटन, कुमार सहानी की ' तरंग ' में मिलता है। उन्होंने फिल्म महाकाव्य शैली में बनायी है। वे उसे पूंजीवादी और विकृत सिनेमा के अंधेरे से बाहर निकालते हैं।

@ हांलाकि व्यावसायिक सिनेमा ने दर्शक की रुचि को इतना भ्रष्ट किया है कि उन्हें जीवन को जीवन जैसा देखना उबाऊ लग सकता है। भारत में भी अब ऐसे फिल्मकार हैं, जो दर्शक को उसकी सोचने-समझने की शक्तियाँ वापस करने की कोशिश कर रहे हैं। नीरद महापात्र की ' मायामृग ' ऐसी ही फिल्म है। जिसमें ओजुवाली शैली का इस्तेमाल था। इस फिल्म को देखना साहित्य पढ़ने जैसा हो सकता है। देखनेवाले को सोचते-समझने और विचार करने का मौका देती है।

- ग्लैमर की अंधी गली से बाहर टंगे हुए कुछ नाम : सुमन सरीन

अच्छी फिल्मों की बहस बहुत पुरानी है। कला फिल्म, न्यू वेव फिल्म, समानांतर फिल्म, और न जाने किन-किन लेबलों से होती हुई अब अंततः सार्थक फिल्मों के अर्थ तक पहुंची है।

यह एक शुभ लक्षण है कि आते हुए लोग जैसे प्रकाश झा, गौतम घोष, केतन मेहरा, अरुणा देसाई, सिम्मी गरेवाल यह लड़ाई लड़ने-दर्शक खींचने की लड़ाई-पर आमादा दिखते हैं.....युगांक

कुछ कलाकार ग्लैमर की अंधी गली में, खुशबू और रोशनी की खोखली चकाचौंध में नहीं वरन एहसास की, त्रासदी की ठोस जमीन पर चरित्र गढ़ते रहे हैं। किसी न किसी रूप में हमारा, आपका, हम सबका प्रतिनिधित्व करते रहे हैं....

\$ ओम पुरी : ये बेहद इमोशनल है और बेहद इन्वॉल्व हो जानेवाला कलाकार है।

\$ नासिरुद्दीन शाह : कहते हैं, व्यावसायिक सिनेमा के स्टार रहे हैं अमिताभ बच्चन और कला फिल्मों के स्टार बन गये हैं नासिरुद्दीन शाह। कन्नड़, गुजराती और बंगला फिल्मों में उन्होंने अपनी अहमियत सिद्ध की है। मूल कन्नड़ फिल्म ' गोधूली ' की सराहना उसके हिन्दी संस्करण से ज्यादा हुई।

\$ स्मिता पाटील : वैसे सिलसिला तो श्याम बेनेगल की फिल्म ' निशान्त ' से ही शुरू हो गया था। जब्बार पटेल की मराठी फिल्म ' जैत रे जैत ', मुजफ्फर अली की ' गमन ', श्याम बेनेगल की ' भूमिका ', आदि उल्लेखनीय रहीं। जैत रे जैत में उसे स्थानीय फिल्म में सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिला। फिर आयी ' कोंडुरा, 'अकालेर संचाने ', ' भवनी भवाई ', जिनसे उसे राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय ख्याति मिली।

\$ शबाना आजमी : अंकुर से हुई शुरुआत। खंडहर, लोरी, पार कितने पड़ाव....

\$ कुलभूषण खरबंदा

\$ दीप्ति नवल

\$ स्वस्थ हास्य से भरी फिल्में : चश्मे बददूर, रंग-बिरंगी, किसीसे ना कहना,

\$ गंभीर फिल्में : एक बार फिर, साथ-साथ, कथा, चिरुथा, हम पांच, अंगूर, दामूल, कमला, हिप् हिप् हूर्यो आदि।

- कुछ फिल्में----

\$ महेश भट्ट : अर्थ से मैं फॉर्म में आया। इस कारण मिली सुविधाएं न मिलतीं तो यह तय ही था कि सारांश न बनती।

\$ देव आनंद । इन्होंने ' गार्ड ' के बाद साहित्य कृति पर कोई फिल्म नहीं बनायी।

\$ बी.आर.चोपड़ा : धर्मपुत्र के बाद वैसा प्रयास दोबारा नहीं किया।

\$ राजकपूर तक ने सर्वोत्तम जर्मन पुरस्कार जितनेवाली ' जागते रहो ' जैसी साहित्यिक फिल्म बनाने के बाद वैसा कोई प्रयास नहीं किया।

\$ अरुणा विकास (देसाई) : रविन्द्रनाथ ठाकुर की ' नौकाडूबी ' जब बम्बई टॉकीज में ' मिलन ' बनकर आयी तो सफल रही थी।

\$ गोविन्द नहलानी : जिसमें दर्शकों का हित निहित हो वह फिल्म अगर कलात्मकता से बनायी जाये तो वह साहित्यिक परिवेश में नजर आती है, चाहे वह किसी साहित्य पर आधारित हो या काल्पनिक। ' आक्रोश ' इसी तरह का प्रयास था जो फिल्म साहित्य में विशिष्ट स्थान पा गया। उसी तरह यो तो ' अर्धसत्य ' श्री.दा.पानवलकर की एक लघुकथा ' सूर्य ' पर आधारित थी मगर पटकथा तैयार करते-करते उसके बस पात्र ही रह पायें। जो रचना तैयार हुई वह हर किसीके हृदय में बसी हूक बन गयी।

\$ चित्रलेखा उत्तम उपन्यास पर आधारित थी। मगर जो चुनौती 'स्वयंसिद्धा ' में थी वह लाजबाब थी।

\$ पार्टी में वार्तालाप ही ज्यादा थे चूंकि वह कहानी ही एक दावत की है, जहाँ बस बातें ही होती हैं। '

\$ आघात में ट्रेड यूनियनों का पक्ष-विपक्ष पेश करने की कोशिश की गयी है।

निश्चित ही दोनों उत्तम साहित्य बन पड़ी हैं।

\$ चाहे वह शांताराम हो, केदार शर्मा हो, बी.आर.चोपड़ा हो या शक्ति सामंत(जिन्होंने क्रमशः शकुंतला, चित्रलेखा, अफसाना और आनंद मठ का रिमेक किया) प्रथम संस्करण बॉक्स ऑफिस पर सफल हुआ था। वे उसी सफलता को भुनाना चाहते थे, लेकिन मार खा गये।

- सागर सरहदी :

हिन्दी सिनेमा में तीन बड़ी पर्सनालिटीज हैं—बिमल रॉय, मेहबूब खान और गुरुदत्त। उन्होंने अपनी बहुत बड़ी शख्सियत लेकर, सुझबुझ लेकर कलात्मक बॅकग्राउंड के साथ भरपूर तरीके से इस मुल्क में एक अच्छा सिनेमा शुरू किया, जिसे हम भारतीय सिनेमा कह सकते हैं।

पूरे भारतीय सिनेमा में एक नाम और है जिसे बड़ी पर्सनालिटी कहा जा सकता है। वह है सत्यजीत राय। वे ओरिजिनल फिल्ममेकर हैं, क्लासिकल फिल्ममेकर हैं, एपिकल फिल्ममेकर हैं। लेकिन जब उनके बारे में एनलाईज किया जाता है, तो लगता है कि उन्होंने भी अपने मुल्क के बारे में तस्वीरकशी की है। जो सिनेमा दिया है, जो फॉर्म दिया है, वह वेस्टर्न माइन्डेड है। अधिकांशतः उनके सामने विदेशी दर्शक रहे हैं।

श्याम बेनेगल, गोविन्द निहलानी और सईद मिर्जा जैसे लोग आज कुछ बड़े और अच्छे काम कर रहे हैं। 'अर्धसत्य' एक साफसुथरी और अच्छी फिल्म है। लेकिन उसके बारे में मेरे एक पत्रकार मित्र ने बताया कि वह इतालवी उपन्यास पर आधारित है। अगर यह बात सही है तो मुझे बहुत तकलिफ होगी। दरअसल हम फॉर्मूलाबाजी के आदि हो गये हैं। इसलिए मेहनत करने से कतराते हैं। कच्चे-अधकचरे आयडिया लेकर अच्छी-बुरी, जैसी भी फिल्में बन पाती हैं, बनाकर दर्शकों के आगे फेंक देते हैं।

- और कुछ अच्छी फिल्में : कुंवर नारायण

पार : गौतम घोष, पार्टी ; गोविन्द निहलानी ---- इनमें सभ्यता या समाज के तथाकथित पिछड़े वर्ग, कथानकों का मूल विषय है।

उत्सव : इसकी पृष्ठभूमि प्राचीन भारत है। शुद्रक के प्रसिद्ध नाटक 'मृच्छकटिक' पर आधारित फिल्म 'उत्सव' सामान्यतः बननेवाली हिन्दी फिल्म से अलग तरह की कोशिश है। अधिकांश संस्कृत नाटकों की राजसी पृष्ठभूमि से हटकर लोकजीवन के मनोरंजक और ऐयाश पक्ष को प्रहसन और चुहल का निशाना बनाकर चलनेवाले नाटकों में 'मृच्छकटिक' बेजोड़ है। चरित्र-चित्रण और वातावरण को 'उत्सव' फिल्म में 'मृच्छकटिक' के अनुरूप ही काफी हद तक ठीक पकड़ा गया है। शुद्रक का मृच्छकटिक भास के जिस 'दरिद्र चारुदत्त' का विस्तार माना जाता है, उस चारुदत्त का चरित्र भी रेखा के सामने दबा-दबा सा ही रहता है।

जब हम अपने वर्तमान या प्रत्यक्ष को सोचते हैं तब तो हमारी दृष्टि यथार्थवादी, भौतिक और आलोचनात्मक होती है। लेकिन जब हम अपने अतीत या भविष्य को सोचते हैं, हमारी दृष्टि भावूक, आदर्शवादी, सरल विश्वासी और पक्षपाती होती है।

भारत में आज हर दूसरी फिल्म किसी न किसी रूप में आदिवासियों या पिछड़ी जातियों या किसान-मजदूरों की जिंदगियों से जुड़ी हुई बन रही है—गौतम घोष की 'दखल' और 'पार' फिल्में उसी कड़ी की नई रचनाएँ हैं। जिसका सबसे रियाटिकल रूप 'मृगया' और 'आक्रोश' रही हैं। और जिसकी सबसे सौम्य और कलापूर्ण शुरुआत सत्यजीत राय की 'पथर पंचाली' रही है। जिस आदिवासी जिन्दगी का नमूना हमारे लिए स्वप्न नहीं यथार्थ है और कभी-कभी बड़ा कटू यथार्थ है, जिसके पीछे सदियों के शोषण और अज्ञान की दहला देनेवाली यादें हैं। हमारे लिए कुछ स्वप्न होगा तो शायद थोड़ी सी वह प्रगति या आधुनिकता (जिसका आधार मानवता हो)। लेकिन इस विषय में हमारा दृष्टिकोण स्पष्ट होना चाहिए और भारतीय होना चाहिए। एक देश के अन्दर आदिवासी से लेकर आधुनिक तक सभ्यताओं और संस्कृतियों के कई स्तर या वर्ग बनते या बनाये जाते हैं। तो उसका मतलब है उनके बीच उस भेद को मान्यता देना, जिसकी जड़ों में

गैरबराबरी, अशिक्षा, शोषण के बीज हैं। आधुनिकता के जो भी लाभ हैं उनसे आदिवासियों को वंचित रखकर ही उनके आदिवासी स्वरूप की रक्षा संभव है। उन्हें या गाँव की जिन्दगी को लेकर भावुक होना एक बात है लेकिन उस जिन्दगी के कटू यथार्थ को झेलना बिल्कुल अलग बात है। भारतीय अतीत आज भी हमारे बीच कहीं-कहीं इतने सड़े हुए रूप में जीवित है कि उसकी ओर मुंह करते हुए दहशत होती है। इस दहशत को कोई अभारतीय नहीं महसूस कर सकता। चूंकि वह हमारी तरह उस अतीत के अंधरों और घुटन में नहीं जी रहा। जिससे बाहर निकलने के लिए हम छटपटा रहे हैं। 'आक्रोश', 'सद्गति', या 'पार' जैसी फिल्मों जिस यथार्थ का चित्रण है, उसका हल कम से कम अतीत में नहीं, भविष्य में है और भविष्य को हमारी फिल्मों जादातर नियतिवादी ढंग से निबटाकर छुट्टी पा लेती हैं। उसे समस्यामूलक मानती नहीं लगती। शायद इसीलिए उनमें विचारों की कोई प्रखर चुनौती या द्वंद्व नहीं उभर पाता। गौतम घोष की पार, मुझे इस माने में अधिक आत्मविश्वासी और शायद इसीलिए विश्वसनीय लगी चूंकि वह परिवर्तन की जरूरत को लेकर भडभडियां नहीं है। वह उस जिजिविषा और हिम्मत की बात करती है, जिसके बिना परिवर्तन संभव नहीं।

अतीत और वर्तमान को लेकर पाश्चात्य जीवन में मूल्यों का जो संकट है उसके लिए इतिहास पर सोच-विचार उनके लिए मूलतः विश्लेषणात्मक और शास्त्रीय है चूंकि आधुनिकता उनके लिए एक ऐसा यथार्थ बन चुका है जिससे वे भाग नहीं सकते। इसके बरक्स हम जब अतीत, परंपरा या आदिवासियों की बात करते हैं तब हम इस यथार्थ से नहीं भाग सकते कि हमारे जनजीवन का एक बहुत बड़ा हिस्सा आज भी आदिवासी स्तर का है, जिसे बदलना है, और बहुत कुछ आधुनिकता की दिशा में ही बदलना है। गोविन्द निहलानी की 'पार्टी' आधुनिकता और आदिवासियों के सवाल को एकसाथ उठा लेती है। लेकिन दोनों को झेल नहीं पाती।

कुमार साहनी की 'तरंग' इस बात को सिद्ध करती है कि भारतीय फिल्मकार अब इस बात को लेकर सचेत है कि राजनीति का मतलब कला में वही नहीं हो सकता जो राजनीति में होता है। जीवन के साथ 'कला' एक आत्मीय रिश्ता बनाने की कोशिश है।

प्रकरण २१

ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त लेखकों की कहानियाँ

अखिल भारतीय प्राच्यविद्या सम्मेलन के अवसर पर वाराणसी में एकत्र मनिषियों में तीव्रता से इस बात की आवश्यकता जगी कि कोई एक ऐसा संस्थान हो जो भारतीय चिंतन, संस्कृति और साहित्य के प्रति संपूर्णता के साथ समर्पित हो। बड़ा प्रश्न था सामने, यह कि जो राजे-महाराजे परंपरा से ऐसे कार्य-दायित्वों को संरक्षण देते आये थे, वे अब रहे नहीं। तो इसकी अगुआई कौन करें? यह तो यथार्थ में वही कर सकता था जो साहित्य और संस्कृति के प्रति स्वयं समर्पित हो तथा उसमें यह भार उठाने की क्षमता हो। उस विद्वत् मंडली ने देश के एक प्रमुख उद्योगपति साहू शांतिप्रसाद जैन के सम्मुख प्रस्ताव रखा और वैसे ही हाथों-हाथ 18-02-1944 को वाराणसी में भारतीय ज्ञानपीठ की स्थापना हो गयी। साहू शांतिप्रसाद जैन प्रतिष्ठापक थे और उनकी प्रबुद्धमना धर्मपत्नी श्रीमती रमा जैन उसकी अध्यक्षा।

ज्ञानपीठ के संकल्पपत्र के अनुसार संस्था का उद्देश्य इन शब्दों में व्यक्त किया गया—“ ज्ञान की विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्री का अनुसंधान तथा लोकहितकारी मौलिक साहित्य का निर्माण ” अभिप्राय था: लुप्त ग्रंथों का उद्धार, अलभ्य और आवश्यक ग्रंथों का सुलभीकरण; प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत, कन्नड़, तमिल आदि के वाङ्मय का मूल और यथासंभव अनुवाद रूप में प्रकाशन । लुप्त और नष्ट समझे जानेवाले कतिपय ग्रंथों का अपने मौलिक रूप में पुनरुद्धार। हिन्दी में लोकोपकारी मौलिक साहित्य की रचना का प्रोत्साहन और प्रकाशन। वास्तव में यह यात्रा की प्रथम मंजिल थी।

दूसरी मंजिल के संदर्भ में, हिन्दी में मौलिक और अनुदित साहित्य देवनागरी लिपि में प्रस्तुत करना।

तीसरा चरण था, ज्ञानपीठ का साहित्य पुरस्कार। ‘ ज्ञानोदय ’, ‘ ज्ञानपीठ ’ पत्रिकाओं का प्रकाशन।

ज्ञानपीठ प्रकाशन मालाएं : 1) मूर्तिदेवी ग्रंथमाला 2) लोकोदय ग्रंथमाला

कुछ दिनों बाद, दो और आनुषांगिक ग्रंथमालाएं, मूर्तिदेवी ग्रंथमाला के साथ संयुक्त हो गयीं : माणिचंद ग्रंथमाला और कन्नड़ ग्रंथमाला।

लोकोदय ग्रंथमाला के साथ भी सहयोगी बनी राष्ट्रभारती ग्रंथमाला।

मूर्तिदेवी ग्रंथमाला का क्षेत्र : संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हनेगन्नड और तमिल भाषाओं में उपलब्ध ज्ञान की अप्राप्य सामग्री का अनुसंधान और व्यवस्थित रूप में प्रकाशन।

लोकोत्तर ग्रंथमाला का क्षेत्र : हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के समकालीन सर्जनात्मक साहित्य को प्रकाश में लाना तथा प्रोत्साहित करना।

सर्वप्रथम उठाया गया असाधारण दायित्व : सुदूर दक्षिण में मूडबिद्री स्थित एक मंदिर में सदियों से ताडपत्रों पर हस्तलिखित एक ग्रंथ रखा हुआ था। दूर से विद्वान एवं भक्तयात्री उसका दर्शन करते, बिना

जाने कि वह किस लिपि में है तथा उसका विषय क्या है? ज्ञानपीठ के अनथक प्रयासों से यह प्रकट हुआ कि वह हनेगन्ड लिपि में लिखित कर्मसिद्धांत विषयक एक महान ग्रंथ है। लगभग उस समय 90,000 रु. व्यय करके ज्ञानपीठ ने उसका लिप्यंतरण एवं हिन्दी अनुवाद कराया तथा ' महाबंध ' शीर्षक से बड़े-बड़े सात खंडों में उसे प्रकाशित कराया।

संगोष्ठी को आये दिन आयोजित करना, साहित्यिक भी और सांस्कृतिक भी।

भारतीय संस्कृति के प्रमुख आधार ग्रंथों से, अंग्रेज़ी भाषी पाठकों को अवगत कराने के उद्देश्य से एक अंग्रेज़ी ग्रंथमाला भी शुरू की।

कला एवं पुरातत्व के क्षेत्र में : सबसे अधिक उल्लेखनीय है, बड़े-बड़े आकार के तीन खंडों में प्रकाशित, ' जैन आर्ट अँड आर्किटेक्चर ' और उसीका हिन्दी रूप ' जैन कला और स्थापत्य '। कला एवं पुरातत्वविज्ञों द्वारा 650 एकरंगी और 50 बहुरंगी कलाकृतियों के चित्रों सहित 1400 पृष्ठों की एकत्र सामग्री एक बहुमूल्य उपलब्धि है। इसी विषय से संबंधित ज्ञानपीठ का दूसरा कार्ययोजन है पूराचित्रागार। एकत्रित किये 14000 छायाचित्रों के संग्रह में से कुछ चुने हुए चित्रों की एक प्रदर्शनी । भगवान महावीर के 2500 वे निर्वाण महोत्सव का अवसर था। उक्त आयोजना-योजना का तीसरा अंग है : रमा जैन कला दीर्घा।

यह सब करते समय ज्ञानपीठ का लक्ष्य व्यावसायिक लाभ नहीं रहा।

ज्ञानपीठ पुरस्कार

अच्छा साहित्य आदमी को, आदमी से जोड़ने का काम करता है। आदमियों का यही जुड़ना किसी भी देश को शक्ति और दृढ़ता देता है। अच्छा साहित्य जहां सामाजिक बदलाव के लिए वैचारिक जमीन तैयार करता है वही समाज को एक दिशा और दृष्टि देने में भी सार्थक भूमिका निभाहता है।

- 22-05-1961 का दिन साहू शांतिप्रसाद जैन जी का जन्मदिन, ज्ञानपीठ पुरस्कार योजना के लिए और संपूर्ण भारतीय साहित्य के लिए एक ऐतिहासिक और महत्वपूर्ण दिन। इसी दिन रमा जी ने ज्ञानपीठ पुरस्कार का संकल्प लिया था। (साहू जी जब अपने पांव पर खड़े हुए और सहायता देने योग्य हुए तो आपने एकमुश्त इतना द्रव्य दिया था कि उसके ब्याज से ही सालों से गरीब विद्यार्थियों को लगभग 50,000 की छात्रवृत्ति दी जाती रही।) शुरू में डेढ़ लाख रु. का पुरस्कार दिया जाता था। लगभग इतनी राशि उसकी प्रक्रिया पर खर्च होती थी। लेखक को नगद राशि के अलावा एक कांस्य प्रतिमा - वाग्देवी की अनुकृति - भी भेंट की जाती। इसे प्रसिद्ध मूर्तिकार रामसतार बनाते रहे हैं। और एक प्रशस्ति पत्र (जो अष्ट धातु का पट्ट होता है, जिसमें कलात्मक स्वस्तिक शुभ चिन्ह आदि अंकित होते हैं) भी भेंट किया जाता है। शुरू में पुरस्कार के लिए पुस्तक का चयन करते समय, पहले होता यह था कि एक अवधि तय कर दी जाती थी और उस अवधि के दौरान प्रकाशित पुस्तकों में से ही सर्वश्रेष्ठ का चयन होता था। ऐसा करने से प्रायः बहुत महत्वपूर्ण रचनाकार भी पुरस्कृत होने से रह जाते थे। लेकिन यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता था कि चयनित पुस्तक पुरस्कार के लिए सर्वथा योग्य है। लेकिन बाद

में पुरस्कार के लिए पुस्तक का चयन न करके लेखक का चयन किया जाने लगा। अब लेखक का समस्त कृतित्व सामने रखा जाता है। अठारहवें पुरस्कार से यह प्रक्रिया आरंभ हुई।

- भारतीय ज्ञानपीठ, भारत की पंद्रह मान्य भाषाओं में से साहित्य / साहित्यकार का चयन करता है। शुरू के उन्नीस पुरस्कारों में से सत्रह पुरस्कार हिन्दीतर भाषाओं को मिले। पुरस्कार का एक नियम यह भी है कि जिस भाषा को जिस वर्ष पुरस्कृत किया जाता है, उससे अगले तीन वर्ष तक पुरस्कारों के लिए उस भाषा को विचारार्थ नहीं लिया जाता। चयन प्रवर परिषद् में सर्वसम्मति से होता है। किसी भी भाषा से उसके सर्वश्रेष्ठ को चुनना अपने आपमें बहुत ही कठिन लेकिन महत्वपूर्ण कार्य है।
- पहला पुरस्कार 29-12-1965 को मलयालम की काव्यकृति ' ओडक्कुणल ' के लिए महाकवि शंकर कुरूप को दिया गया।
- सबसे रोमांचक खोज थी वाग्देवी की प्रतिमा की। इसे पुरस्कार के प्रतीक के रूप में निश्चित किया गया। यह मूर्ति ब्रिटिश संग्रहालय में है। इसे राधानगरी में सन् 1035 में राजा भोज ने अपने सभामंडप में स्थापित किया था। शिल्पी श्री चिंतामणिकर ने इस मूर्ति के चित्र पर से अनुकृति तैयार की। संग्रहालय में स्थित मूर्ति का एक हाथ खंडित है।
- ज्ञानपीठ का एक और पुरस्कार : मूर्तिदेवी साहित्य पुरस्कार : पुरस्कार वर्ष से एक वर्ष पूर्व तक प्रकाशित किसी भी जीवित भारतीय लेखक की, किसी भी भारतीय भाषा या अंग्रेज़ी में लिखी गयी पुस्तक इस पुरस्कार के लिए विचारार्थ, स्वीकार्य है। शर्त यह है कि लेखक भारत का नागरिक हो। प्रतियोगिता के लिए कृतियां कोई भी लेखक, पाठक, प्रकाशक या संस्था भेज सकती है अथवा विवरण सहित प्रस्तावित कर सकती है। निर्णायक मंडल स्वयं भी पुरस्कार हेतु उपयुक्त कृतियों पर विचार कर सकता है। निर्णायक मंडल का गठन ज्ञानपीठ न्यासी मंडल करता है। यह पुरस्कार प्रति वर्ष ऐसे लेखक को दिया जाता है जिसकी कृति आधारभूत जीवनमूल्यों अथवा उनके पक्ष विशेष को साहित्यिक संरचना की दृष्टि से, श्रेष्ठ रूप से प्रतिपादित करती हो। इस संदर्भ में जीवनमूल्यों से तात्पर्य है सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकांत, समता, शांति, संयम, त्याग, जनकल्याण के सिद्धान्तों और भावनाओं का उन्नयन। साहित्यिक संरचना से अभिप्राय है, कृति के सृजन में विषय की प्रभावकारी परिकल्पना और शैली-शिल्पका आकर्षण, पौराणिक आख्यान, कथा-कहानी, उपन्यास, नाटक, काव्य, ललित निबंध या प्रबंध, जीवन-वृत्तांत, संस्मरण, आत्मकथा, ऐतिहासिक एवं आध्यात्मिक प्रसंग, चिंतन आदि विधाएं।

प्रथम पुरस्कार कन्नड़ कथाकार श्री सी.के. नागराजराव को उनके बृहत् ' शांतला ' के लिए दिया गया था। इसमें 11000 र. की राशि दी गयी थी।

- प्रवर परिषद् का प्रारंभ और दुःखद घटनाएँ

लगभग दो वर्षों की साधना, श्रम और साहित्यकारों के देशव्यापी सहयोग के कारण जब पुरस्कार योजना को व्यवस्थित आकार प्राप्त हुआ, प्रवर परिषद् का गठन हो गया और उसकी अध्यक्षता के लिए डॉ. राजेन्द्रप्रसाद जी की स्वीकृति मिल गयी तो परिषद् की पहली बैठक मार्च 1963 में बुलाने का उन्होंने आदेश दिया। साहूजी और रमाजी इसके लिए अधीर हो गये। निर्णय किया गया कि जितने जल्दी हो सके, सब प्रक्रिया पूरी करके पुरस्कार समारोह डॉ. राजेन्द्र बाबू की अध्यक्षता में कर लें। 27 फरवरी को

राजेन्द्र बाबू का पत्र प्राप्त हुआ कि बैठक 16-03-1963 को बुला ली जाय। उनका पत्र हमारे हाथों में ही था कि 28 फरवरी को उनके निधन के हृदयविदारक समाचार ने हमें आहत कर दिया। सारा देश शोक में डूब गया।

साहूजी और रमाजी ने यह उचित समझा कि प्रवर परिषद् की पहली बैठक राजेन्द्रबाबू ने निश्चित की तारीख को ही (अर्थात् 16 मार्च) सम्पन्न कर ली जाए। परामर्श के बाद निश्चित किया गया था कि परिषद् का अध्यक्ष श्री पतंजलि शास्त्री को बनाया जाए। शास्त्रीजी देहली तो आ गये लेकिन बैठक में नहीं पहुंच पाये। वे देहली आते ही अस्वस्थ हो गये थे। बैठक तो खैर सम्पन्न हो गयी। लेकिन अगले ही दिन अस्पताल में पतंजलि जी का निधन हो गया।

प्रवर परिषद् के दोनों अध्यक्षों का उसकी पहली बैठक के पहले ही एक के पीछे एक निधन हो गया। यह दुःखभरी छाया अधिक काली और लम्बी होती दिखाई दी थी।

- अगोचर नदी जैसा व्यक्तित्व : श्रीमती रमा जैन---कुबेरनाथ राय

इस संसार में कुछ ऐसे भी व्यक्ति जन्म लेते हैं, जिनका 'मैं' एक समूहवाचक संज्ञा बन जाता है। वे ऐसा जीवन जीते हैं, गोया वे व्यक्ति न होकर कोई संस्था हो।

प्रसिद्ध उद्योगपति श्री रामकृष्ण डालमिया के परिवार में जन्मी, गांधी जी के वर्धा आश्रम में, श्री जमनालाल बजाज की देखरेख में पली-बढ़ी, श्री मदनमोहन मालवीय द्वारा चुने गये योग्य वर साहू शांतिप्रसाद जैन से ब्याही गयी, पत्नी के रूप में परम समर्पिता, माँ के रूप में बड़ी प्रवीण ममतालू, एक विलक्षण व्यक्तित्व, जिसमें अपूर्व आत्मसंयम हो, जिसे अध्ययन-मंथन का चाव हो, जो सुरुचि सम्पन्न होते हुए भी सरल जीवन और उच्च विचारों में आस्था रखे, देश के प्रति अनुराग ने जिसे देश की कला-संस्कृति और साहित्य-सम्पदा के प्रति अनुराग सिखाया हो - इन सबको जिस एक व्यक्ति ने चरितार्थ किया, वह थी भारतीय ज्ञानपीठ और ज्ञानपीठ पुरस्कार की प्रवर्तिका श्रीमती रमा जैन-

भारत के बहुत लोगों को यह बात खलती रही कि केवल एक ही भारतीय श्री रविन्द्रनाथ को अबतक साहित्य में नोबेल पुरस्कार मिल पाया। जबकि इसके योग्य कमसे कम छह व्यक्ति निकल ही आएंगे, विविध भारतीय भाषाओं में, जिनकी रचनाएँ पश्चिम के नोबेल पुरस्कार प्राप्त साहित्यकारों से कदापि हीन नहीं कहीं जा सकती। मेरा तात्पर्य इकबाल, सुब्रमण्यम भारती, शरतचन्द्र, प्रेमचंद, 'सावित्री' के कवि अरविन्द और कामायनी के कवि प्रसाद जैसी प्रतिभाओं से है। परंतु भारतीय साहित्यकारों की कौन कहें, समूचे एशिया की उपेक्षा हुई। कमसे कम दो नाम अत्यंत प्रभावशाली रहे-खलील जिब्रान (अरबी) और नागूची (जापान)।

ऐसा अनुभव किया जाने लगा कि नोबेल पुरस्कार के समकक्ष भारतीय साहित्य जगत में भी ऐसा पुरस्कार हो। दो व्यक्ति इसके प्रति सक्रीय चिंता से व्याप्त थे। एक थे राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद और दूसरी व्यक्ति थी श्रीमती रमा जैन। इस पुरस्कार की प्रेरणा वही है। इसके विधान की कल्पना में उनका ही हाथ है और उपरोक्त धनराशि का स्रोत भी उनके पारिवारिक सम्पत्ति के ट्रस्टों से आता है। तो भी उन्होंने नोबेल

महाशय के विपरीत इस पुरस्कार को ज्ञानपीठ संस्था के नाम से ही नामांकित किया, किसी व्यक्ति के नाम से नहीं।

• चयन की गयी कहानियाँ---

- 1) गणदेवता : बंगला उपन्यास : ताराशंकर बंदोपाध्याय : (108 ग्रंथ---50 उपन्यास + 41 कथा संग्रह)
‘ गणदेवता ’ पहली कथा रचना है जिसे ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया। यहाँ इसका संक्षिप्त रूपान्तर है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले, दो भागों में लिखे गये इस उपन्यास की प्रासंगिकता आज भी कम नहीं हुई है। देबू, अनिरुद्ध, जगन डॉक्टर जैसे जुझारू चरित्रों से आज भी हमारी मुलाकात हो सकती है तो दूसरी ओर छिपुराल जैसे लोग भी इस समाज के लिए अभी अजनबी नहीं बन पाये हैं। ----
- 2) अवगुंठन : हिन्दी कहानी : सुमित्रानंदन पंत
“ नारी जीवन का वह कैसा अनुभव होता है, जहाँ वह अपने अंतःकरण में लबालब भरे हुए स्नेह को बांटती है। पर कितना अंतर होता है स्नेह की मात्रा में? कैसा होता है, उसका मानदंड?.....जो एकसाथ कई लोगों में अलग-अलग मात्रा में अपना स्नेह बंटने देता है.....? “
- 3) उपनिषद का जन्म : कन्नड़ कहानी : मास्ति व्यंकटेश अय्यंगार : फरवरी 1961 में प्रकाशित उत्कृष्ट कथा का पुनर्प्रकाशन।
महर्षि ने कहा, “ भाई , समस्त चराचर सृष्टि ही ईश्वर है।”
“ हम इसीलिए कष्ट भोगते हैं कि हम परस्पर पुरक वस्तुओं को परस्पर विरोधी बनाये रखते हैं।”
इस कहानी पर श्री विष्णु प्रभाकर जी की टिप्पणी—
“ उपदेश देना लेखक को बहुत प्रिय नहीं है। वे जीवन के प्रति ममता पैदा करना चाहते हैं, कर्म के द्वारा। हर प्रश्नकर्ता के लिए उनका एक ही उत्तर है, “ अपनी बात को आधार बनाकर स्वयं सोचिए, सत्य की प्राप्ति हो जाएगी। मास्ति इस कहानी के माध्यम से यह निश्चित करते हैं कि,” शरीर की परम सत्ता के प्रति, सर्वोत्तम प्रार्थना कर्म है।”
- 4) नाम याद नहीं : उडिया कहानी : गोपीनाथ महांती : जन्म--04-04-1914 | 1973 (दसवें) ज्ञानपीठ पुरस्कार के सहविजेता : 19 उपन्यास और 08 कथा संग्रह : लगभग तीन दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित। पुरस्कृत उपन्यास ‘ माटिमटाल ’ | पुरस्कार में समर्पित प्रशस्ति में कहा गया है, “ आदर्श और यथार्थ के समन्वयी, शक्तिशाली उपन्यासकार श्री महांती के कथा साहित्य का परिदृश्य अधिवासित है, प्रायः पददलित हरिजन और मूक आदिवासी द्वारा, चिरशोषित कृषक और औरनगरपले बाबूवर्ग द्वा, जो अस्तित्व-रक्षा के संघर्ष में ही निःसत्त्व हो रहा है। उनकी शैली में महाकाव्य की गरिमा है और भाषा में लोकवाणी की सरसता। उनकी नविनतम व्यंग्य रचना---
- “ जीवन ने केवल मधुरता ही दी है, न दुःख न मृत्यु। “ “ लोगों की यह आस्था और विश्वास अजेय मानव चेतना का प्रतीक है।”
“ शोषित वर्ग का विद्रोह केवल किसी अन्य वर्ग से सामाजिक न्याय पाने की प्रक्रिया मात्र न रहकर मनुष्य का नियति की क्रूरता से अपनी रक्षा करने की सार्वभौमिक प्रयास बन जाता है।”

विषयवस्तु के स्तर पर उन्होंने निर्धन शोषितों, पददलित असहायों और निरीह आदिवासियों का सदा समर्थन किया है।

- 5) दामात्य का भ्रम : कन्नड़ उपन्यास का अंश : शिवराम कारंत : जन्म-10-10-1902, कोट(कर्नाटक) गाँव में। उन्हें अध्यायन के अतिरिक्त कपड़ा बेचने का धंधा भी करना पड़ा। उन्हें यक्षगान का कलागुरु भी माना जाता है। लगभग दो सौ कृतियों के इस लेखक को कन्नड़ साहित्य का 'मूकजिजय कनसुगलु' जैसा अतिरिक्त कथालोक प्रदान करने के उपलक्ष में 1977 के भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से अलंकृत किया गया।

“ हम यौन शिक्षा की बात अक्सर करते हैं, पर क्या कोई ऐसा स्कूल है जो दांपत्य के लिए आवश्यक शिक्षा प्रदान करता हो। यह काम न आनेवाली शिक्षा, कोई कितनी भी प्राप्त कर ले, उससे दांपत्य जीवन को क्या लाभ? पारिवारिक जीवन के एक नाजुक मोड़ की संवेदनापूर्ण झलक प्रस्तुत करती, लेखक के चर्चित उपन्यास 'सरसम्मा की समाधि' का एक महत्वपूर्ण अंश---

- 6) सिस्तर के वास्ते : महादेवी वर्मा : जन्म 1907 फर्रुखाबाद : 'यामा' और 'दीपशिखा' के लिए सन् 1982 के ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित वरीष्ठ छायावादी कवियित्री।

अपने अतीत से वह इतना जुड़ा था कि दूसरे देश पहुंचकर भी उसने अपनी बहन खोज ही ली। कैसा था उसका अतीत.....और कैसी है उसकी विदेशी बहन जिसपर अनायास ही वह इतना अधिकार पा सका? अपने मार्मिक कथात्मक रेखाचित्रों के लिए चर्चित लेखिका का अनुठा रेखाचित्र-

- 7) कठपुतलियाँ : विष्णु सखाराम खांडेकर : जन्म 19-01-1898 सांगली, महाराष्ट्र

'ययाति' उपन्यास के लिए 1974 का ज्ञानपीठ पुरस्कार दिया गया। इसे साहित्य अकादमी पुरस्कार भी मिल चुका है। खांडेकर जी को पद्म विभूषण पुरस्कार भी मिल चुका है। मराठी लघुकथा को स्वतंत्र साहित्यिक विधा के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय इन्हें ही दिया जाता है।

“ प्रत्येक व्यक्ति में कुछ काव्यात्मकता होती ही है और उसके भीतर एक छोटा-बड़ा अभिनेता भी छिपा रहता है। दिल को छुनेवाली कोई घटना होते ही दिल के तार झनझना उठते हैं और उसकी अभिनय क्षमता भी ऐसे मौकों पर रंग लाती है और तब.....कठपुतली की तरह अभिनित होने लगते हैं हम लोग। जीवन का यही पक्ष उकेरती मराठी कहानी---

- 8) यह कैसा संबंध : तेलुगु कहानी : विश्वनाथ सत्यनारायण : जन्म-06-10-1895 नंदपुर आंध्रप्रदेश

कवि-सम्राट उपाधि से विभूषित इस रचनाकार के ग्रंथों की संख्या सौ से अधिक है। इनमें साठ से अधिक उपन्यास हैं। लेकिन इनके महाकाव्य 'रामायण कल्पवृक्षम्' को 1970 में ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ।

‘ वह लड़की कौन है, तुम्हें मालूम है? जिसने तुम्हें लौंगी मिर्च खिलाई थी। वही है यह.....तुम्हारा पद पढ़ना, सुनकर सभी बातें लड़की को याद आ गयीं। “

स्मृतियाँ कभी तो बहुत सुख देती हैं और कभी बहुत दुःख। सबको मिलाकर देखने पर हमारे हाथ क्या लगता है? यही बता रही है यह कथा-----

विशेषांक-दो

1) चिक्कबीर राजेन्द्र : मास्ति व्यंकटेश अय्यंगार

“ क्या अंग्रेज़ी साम्राज्य को भारत में जमाने के लिए अंग्रेज़ों की धूर्त नीतियाँ ही जिम्मेदार थीं? क्या भारत के छोटे-छोटे रजवाड़ों के भीतर चल रहे कुचक्रों ने इन जड़ों को खाद-पानी नहीं दिया? और क्या उन राजाओं की विलासिता भी इसके लिए जिम्मेदार नहीं रही? ऐसे ही कुचक्रों का साक्षी रहा है दक्षिण भारत का कोडग राज्य और वही है इस उपन्यास की विषयवस्तु—

“ मद्रास के गवर्नर और बंगलूर के रेजिडेंट ने जो आपसमें चिट्ठी-पत्री की थी, उससे स्पष्ट था कि अंग्रेज़, राजा के पापाचार से असंतुष्ट थे और राजा को गद्दी से हटाना चाहते थे। ईसा मसीह के पवित्र वचनों का प्रसार करके यहाँ की जनता के दिलों के अंधकार को दूर करके उनका उद्धार करना भी अंग्रेज़ों का एक उद्देश्य था।”

2) पुरुष का भाग्य : अज्ञेय

क्या आगे-पीछे ही जीवन का क्रम है? तब फिर नारी विद्रोह करना क्यों चाहती है? पुरुष को पाने और खोने का सिलसिला किस हद तक प्रभावित करता है एक नारी को? फिर भी वह क्या है, जो नारी को अपने जने हुए पुरुष के भाग्य को लेकर सोचने पर विवश करता है? हिन्दी के ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता कवि, ‘ शेखर एक जीवनी ’, एवं ‘ नदी के द्वीप ’ के यशस्वी कथाकार अज्ञेय की प्रतिनिधि कहानी, जो एक नारी और माँ के मन की कथा को रेखांकित करती है—

3) ऊंट : मलयालम कहानी : एस. के. पाट्टेकाट : जन्म-कोझीकोट(कालीकत) :

60 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित। सन 1964-73 के लिए प्रदत्त सन् 1980 का ज्ञानपीठ पुरस्कार आपकी उपन्यासकृति ‘ ओरु देशतिते कथा ’ को समर्पित किया गया था।

4) बंद दरवाजे के सामने : बंगला कहानी : आशापूर्णा देवी

इनके उपन्यास ‘ प्रथम प्रतिश्रुति ’ को सन् 1960-69 के बीच प्रकाशित भारतीय साहित्य में सर्वश्रेष्ठ घोषित करते हुए उन्हें 1976 का भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार समर्पित किया गया।

5) पाताल के झरने तक पहुंच जाने की तसल्ली : अमृता प्रीतम

1965-74 की सर्वश्रेष्ठ कृति ‘ कागज ते कैनवास ’ (पंजाबी) के लिए 1981 की भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेती।

“ आज साहिर आये, हार्ट अटैकवाले हादसे के बाद उन्हें पहली बार देखा था। सीढ़ियों में आगे होकर उन्हें बांह का सहारा दिया, तो उसी पुरानी हंसती हुई आवाज़ में वे कहने लगे, “ कुछ भी नहीं हुआ, बिल्कुल ठीक हूँ।” पर साथ ही सांस रोककर बोले “ सिर्फ दिल, फेफड़ा और किडनी खराब हो गये हैं। बाकी ठीक हूँ।”

सपनों की जिंदगी और जिंदगी के सपने कितने खूबसूरत होते हैं? अतीत को जीना कितना मीठा लगता है? इसी खूबसूरती और मीठेपन को उजागर कर रहे हैं, अमृता जी की निजी डायरी के ये पन्ने—

6) बसेरा : तमिल कहानी : अखिलज

सन 1975 के भारतीय ज्ञानपीठ के साहित्य पुरस्कार से सम्मानित तमिल कथाकार पे.वै.अखिलदम ' अखिलज ' नाम से सुपरिचित है। ' चित्तरप्पावै ' (चित्रित प्रतिमा) इनका बहुचर्चित उपन्यास है जिसे 1959-1968 के बीच प्रकाशित सर्जनात्मक साहित्य में सर्वश्रेष्ठ घोषित करते हुए यह पुरस्कार प्रदान किया गया।

“ कैसा होता है यह मोड़ जो जीवनधारा की दिशा ही बदलकर रख देता है। और कैसी होती है नारी की वह दिव्य शक्ति जो पुरुष को निराशा के अंधेरे से उबार लेती है?.....आखिर वह कौनसा मोड़ है जिसपर आकर आदमी अपने सार्थक होने का अहसास पाता है? क्या शक्ति पाने के लिए किसी सहारे की जरूरत होती है।

7) सहारा : असमिया कहानी : विरेन्द्रकुमार भट्टाचार्य

“ मुझमें निरंतर आत्मविश्लेषण की प्रक्रिया चलती रहती है।” वि.भट्टाचार्य

असम के पूर्वी अंचल के एक चाय बागान परिसर में 14-10-1924 को जन्मे और बीस से अधिक उपन्यासों के सृजेता विरेन्द्र कुमार, जिन्हें उनके बहुचर्चित उपन्यास ' मृत्युंजय ' पर 1979 का ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला। श्री ए.के.मिस्तल के साथ हुई बातचीत में वे बताते हैं कि यह उपन्यास लिखते समय उन्हें किन-किन चुनौतियों का सामना करना पड़ा।

8) वह अज्ञात वीर : कन्नड़ कहानी : डॉ. कुपल्लि वेंकटप्प पुट्टप्प

ये कन्नड़ के सुविख्यात रचनाकार रहे हैं। इन्हें सन 1968 के लिए गुजराती के सुविख्यात कवि उमाशंकर जोशी के साथ संयुक्त रूप से ज्ञानपीठ पुरस्कार दिया गया। उनका उपनाम ' कुर्वेपु ' है। उनकी ' श्री रामायण दर्शनम ' सुविख्यात कृति है।

“ पल-पल आतंक में जीते हुए लोगों की जिंदगी कैसी होती है? और कैसे उबर पाते हैं वे आतंक के महौल से? बाढ़ के आतंक में डूबते-उतराते लोगों की मार्मिक कथा।

9) कोणार्क की मृत्यु : विष्णु डे : अनुवाद - सिद्धेश

उड़ीसा के सूर्य मंदिर, कोणार्क की यात्रा कवि ने लगभग 1958 में की थी। उस काल में कोणार्क की दशा-दिशा पर कवि को चिंता हुई थी। उसीको आधार मानकर इस संस्मरण की रचना हुई, जो बंगला की एक साहित्यिक पत्रिका में छपी थी।

“ हरे मुंगे से जड़ित एक दुर्लभ पत्थर, जो प्रवेशद्वार का अंग है, पेड़ के नीचे औंधा होकर पड़ा है। माथा नीचे तथा पैर ऊपर करके। इस तरह बहुत सारी मूर्तियों को उनके निर्दिष्ट स्थान से खींचकर इस तरह अन्यत्र फेंक दिया गया है कि भविष्य में कोई उनके अस्तित्व के बारे में निर्णय नहीं ले सकता।

10) मेरी चंपा का वर : गुजराती कहानी : उमाशंकर जोशी

1967 के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित। वे मूलतः कवि हैं। यह पुरस्कार उन्हें उनके काव्य संग्रह ' निदृशीथ ' के लिए मिला। कविता, कहानियाँ, नाटक, उपन्यास, निबंध, आलोचना आदि भी उनकी देन हैं।

क्या हमारे समाज में संबंध केवल रिश्तों तक ही सीमित रहते हैं? क्या होता है तब, जब रिश्ते और संबंध एकदूसरे के विरुद्ध द्वंद्व की स्थिति में आ खड़े होते हैं? माँ, बेटी और दामाद के बीच के रिश्तों और संबंधों का टकराव प्रस्तुत कर रहे हैं गुजराती के वयोवृद्ध रचनाकार—

इस कहानी के अतिरिक्त उनकी एक कविता ' हिरोशिमा ' भी यहाँ अंतर्भूत है, जो उन्होंने 1946 में अखबार की एक खबर के आधार पर लिखी थी।

11) उर्वशी : रामधारी सिंह दिनकर

दिनकर जी की कविता की ऊँचाई मापनी हो तो निर्विवाद रूप से ' उर्वशी ' पढनी होगी। यह संशय और द्विधा से आक्रांत एक ऐसा काव्य है, जो कालसत्य को ही नहीं, कालातीत सत्य को भी रूपायित करता है। इसीका महत्वपूर्ण अंश—(उर्वशी पर उन्हें 1972 में ज्ञानपीठ पुरस्कार दिया गया)

“ अपने स्वप्न की व्याख्या कवि स्वयं नहीं कर सकता। ”---दिनकरजी

दिनकरजी की पचास से ऊपर रचनाएँ हैं, जिनमें गद्य से अधिक काव्य-कृतियाँ हैं। महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं ' संस्कृति के चार अध्याय ', परशुराम की प्रतीक्षा, ' कुरुक्षेत्र ' आदि

कुछ और ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त लेखक और उनके विचार अभी तक हमने कई भारतीय भाषाओं की कहानियों का उल्लेख किया। अब उर्दू का उल्लेख किये बिना विषय पूरा नहीं होगा।

फिराक गोरखपुरी (रघुपति सहाय) : जन्म-28-08-1886, मृत्यु-1981

1950-62 की सर्वश्रेष्ठ कृति ' गुलेनगमा ' (उर्दू) के लिए 1969 के पुरस्कार विजेता। भारतीय उर्दू काव्य के स्वर और संस्कार के नये रूप के जन्मदाता। उनके आत्मकथा के कुछ अंश---

“ जीवन का काव्यात्मक और कलात्मक अनुभव प्राप्त करना और दूसरों तक इस अनुभव को पहुँचाना साहित्य का एकमात्र लक्ष्य है।

जिसे हम भौतिक कहते हैं, वही दिव्य भी है और उसके अतिरिक्त कोई विचार दिव्य नहीं है।...दिव्यता, भौतिकता से पृथक वस्तु नहीं है। में प्रकृति या परमाणुओं के अतिरिक्त, आत्मा या परमात्मा अलग और स्वतंत्र अस्तित्व को नहीं मानता। संस्कृत काव्य में रसों का सिद्धांत, भौतिकता में नीहित गुणों के अनुभव करने-कराने का ही दूसरा नाम नहीं है?

महान से महान कार्य जो संसार में हो रहे हैं, वे साहित्य के सहारे हो रहे हैं। साहित्य किसी राजनीतिक दल का सदस्य नहीं है। वह इतिहास का स्वयंसेवक भी नहीं है। साहित्य हमारी चेतना की वह तपस्या है, वह साधना है जिससे हमारी विश्व या आत्म चेतना दिव्य बन जायें।

मैंने अपनी रचना में यही प्रयास किया है कि हम काव्यात्मक और कलात्मक चेतना से, मनन और विवेक से ऐसे अनुभव प्राप्त कर सके जिससे संसार से अलग किसी खुदा, ईश्वर, मजहब, पूजा-पाठ, सिजदा, दंडवत या सांप्रदायिकता का कोई स्थान न हो। हिंदू विचार सांप्रदायिक विचार नहीं है। किसी विशेष जाति या सांप्रदाय को दूसरी जातियों और संप्रदाय से अलग करके हिंदू विचारों का निर्माण नहीं हुआ है। जब ये विचार ईश्वरवादिता से मुक्त हैं तो सांप्रदायिकता में जकड़े कैसे रह सकता है?

ऐसा नहीं कि मैंने सामाजिक या राजनीतिक जागृति पैदा करने के लिए कविताएँ रचीं ही न हो। ‘ धरती की करवट ‘, मार्क्स और लेनिन की सेवाएँ, इकाबे-बीन-रोटियाँ आदि में कर्म के महत्व को समझने के लिए समाज को ललकारा गया है।

शब्दों और वाक्यों में भाव और रस तभी पैदा होता है, जब भावनाओं से प्रेरित होकर सैकड़ों बरस तक जनसाधारण की शब्दावली में अपने आंतरिक अनुभवों को व्यक्त करें। कविता की भाषा न कोषों में दफन रहती है। न दवात की रोषणाई में। करोड़ों की बोलचाल को सुसंगठित करके कविता की भाषा बनती है।

कार्लाइल ने ठीक ही कहा है कि पूरा समाज गुप्त और अर्धचैतन्य ढंग से जिन बातों को धुंधलके में अनुभव करता है, कवि उन्हीं अनुभवों को धुंधलके से उभारकर खुली रोशनी में प्रस्तुत करता है। “

@ वैसे उर्दू साहित्य को समृद्ध करनेवाले पांच प्रमुख कहानीकार हैं—

राजेंद्रसिंह बेदी, कृष्ण चंदर, ख्वाजा अहमद अब्बास, सआदत हसन मण्टो और इस्मत चुगताई।

- दत्तात्रेय रामचन्द्र बेंद्रे : 1973 के ज्ञानपीठ पुरस्कार के सहविजेता द.रा.बेंद्रे, जो 31-07-1896 को धारवाड (कर्नाटक) में एक परिवार में जन्मे थे। उनकी अबतक 50 से अधिक कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं, जिनमें अधिकांश काव्य हैं। कविता संग्रह ‘ नाकुतंती ‘ पर उन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला था। बता रहे हैं, कहानी क्या होती है, कहानी में क्या-क्या होना चाहिए और क्या-क्या नहीं?

“ कहानी की मनोरचना अलग प्रकार की होती है और गीत की अलग प्रकार की। पहला बाह्य घटनाओं से संबंध रखता है तो दूसरा अंतर की लहरों और कल्लोल का खेल है। कहानी हड्डी की तरह कड़ी होती है और गीत रक्त की भांती मृदु और तरल फिर भी गीतों के भावों में, कहानी की संक्षिप्तता में एक भाव-समानता है। यह भाव-तंतु प्राणों का सूक्ष्म तंतु है। उन्हीं घटनाओं को बुनकर कहानी बनती है, मनका-मनका पिरोकर गीत बनता है। वह छोटा सा स्वर, वह भाव दोनों में समान होता है। कहानियों में घटनाओं के घटने की अपेक्षा सूक्ष्म भाव का लीला-विलास ज्यों-ज्यों बढ़ता है त्यों-त्यों उनमें भावगीत का सा रूप आ जाता है।.....कहानी चाहे एक पगली के जीवन का सपना हो, चाहे एक बुद्धिमान के जीवन की कोई समस्या हो, पाठक को उस व्यथा का, उस आनंद का अनुभव कराये बिना नहीं रहती। “

प्रकरण 22

नारी यातनाओं की कहानियाँ

हिन्दी के प्रख्यात कवि, विचारक और लेखक श्री विजयदेव नारायण साही ने किसी बातचीत में कहा था, “ हिंदुस्तानी होना बहुत अच्छी बात है। औरत होना भी बहुत अच्छी बात है। लेकिन आज के युग में हिंदुस्तानी औरत होने से ज्यादा तकलीफ़देह बात कुछ नहीं।” यह साहीजी की एक संवेदनशील चिंता थी, भारतीय नारियों को आज के समाज में हर स्तर पर मिलनेवाली यातनाओं के प्रति। सारिका के नारी-यातना विशेषांक भी इसी चिंता के मूर्त रूप हैं।.....संपादकीय से

‘ नारी मुक्ति आंदोलन ’ का सिलसिला काफी पुराना है। लेकिन नारीवर्ष के साथ कुछ ज्यादा तेज हो गया है। हमारे यहाँ प्राचीन काल से ही नारी की पूजा और सम्मान की बात कही गयी है। भारतीय ऋषियों के मन में यह बात तभी आयी होगी जब उन्होंने सामाजिक स्तर पर नारियों का अपमान महसूस किया होगा। अपमान के अभाव में सम्मान की बात उठायी ही नहीं जा सकती। रामायण काल, महाभारत काल और हमारे पुराने नारी यातनाओं की घटनाओं के प्रमाण हैं—सीता वनवास, अहिल्या शाप, श्यामवर्ण घोड़े के शुल्क पर माधवी की कोख, रामराज्य में धोबी का अपनी पत्नी को पीटना, महाभारत में राजाओं द्वारा हाथियों, घोड़ों और गायों के साथ सुंदर युवतियों को उपहार में दिया जाना। अनेक संदर्भ हमारे सामने हैं। नारी को नर्क का द्वार भी हमहीं ने बताया है, बताया क्या बनाया है। दास-दासियों की बिक्री का सिलसिला किसी न किसी रूप में आज भी दुनिया के हर कोने में जारी है।

नारी यातना का सबसे घिनौना रूप है दहेज प्रथा। पूरे देश में दहेज हत्या की सैकड़ों घटनाएँ रोज होती हैं। नारी यातनाओं की ऐसी घटनाओं के पीछे अधिकांशतः कोई न कोई नारी ही होती है। चाहे वह सांस हो या ननंद। वह अक्सर भूल जाती है कि उसकी बेटियों के लिए भी स्टोव्ह फट सकते हैं।

बलात्कार के पीछे किसी तरह की बदले की भावना कम, पुरुषत्व का अहम ज्यादा होता है और यह अहम उसे पशुत्व की श्रेणी में ला खड़ा कर देता है। अपहरण के मामले में भी यह अहम अर्थ के साथ जुड़कर सक्रिय हो जाता है। ये सारी स्थितियाँ अपराध की स्थितियाँ हैं। लेकिन नारी को यातना देनेवाले अपराधों की रोकथाम कानून के स्तर पर नहीं तो समाज-चेतना के स्तर पर अधिक कारगर ढंग से की जा सकती है।

नारी यातना जैसी सामाजिक समस्या को कथा साहित्य के स्तर पर कैसे, कितना और किस रूप में लिया गया इसीकी एक सही और प्रामाणिक झलक सारिका के अंकों की कहानियाँ मिल सकती है। लेकिन जबतक हमारे युवक सड़ी हुई मान्यताओं और मूर्दा परंपराओं को छोड़कर पूरे साहस के साथ सामने नहीं आते तबतक इस दिशा में क्रांति नहीं हो सकती।

- बच्चे पैदा करने की बिकाऊ मशीन

नारी जाति पर अत्याचारों का एक भयंकर रूप सामने आता है, निग्रो और हब्शी स्त्रियों के रूप में जिनपर कई शताब्दियों तक गोरों और मुस्लिमों ने अत्याचार किये। कई यूरोपीय देशों में इन अभागी स्त्री-पुरुषों की मंडियां थीं जहां इन्हें भेड़-बकरियों से भी बदतर स्थिति में बेचा-खरीदा जाता था

अमेरिका में निग्रो स्त्रियों पर होनेवाले जुल्मों का हूबहू ब्यौरा इस विज्ञापन में है-“ निग्रो युवती बिकाऊ है। उम्र 20 वर्ष। वर्जिनिया में पली। दो बच्चे, उम्र छह और तीन वर्ष। काफी तगड़ी और स्वस्थ। कभी किसी बिमारी की शिकार नहीं हुई। प्रजनन के उत्तम गुणों से युक्त। उनके लिए सुनहरा अवसर जो तगड़े और स्वस्थ गुलामों के परिवारों को बढ़ाना चाहते हैं।”

इन स्त्रियों पर यह जुल्म गुलामों की नस्ल पैदा करने के लिए ढाया जाता था। ये अपने मालिक की जिवंत जायजाद होती थीं। इनके पास अपनी रक्षा का कोई कानूनी अधिकार नहीं था और स्वामी की इच्छा के विरोध का मतलब होगा चाकू या कोड़े या बंदूक की गोली। गुलाम पैदा होते ही उनकी खरीदी-बिक्री शुरू हो जाती थी। आठ-नऊ साल का होते ही उसके हिस्से में कड़े से कड़े परिश्रम आते थे।

उस जमाने में वर्जिनिया, स्पेन और पोर्तुगाल गुलामों के बाज़ार के प्रमुख केंद्र थे। 'प्लांटेशन कानून' भी अत्याचार और बर्बरता से परिपूर्ण था। इसके अनुसार किसी भी गुलाम स्त्री का अन्य गोरे स्वामी के संग सहवास घोर अपराध था। अपने गुलाम स्त्री के साथ संभोग करके या करवाकर बच्चे जनवाना मालिक का ही अधिकार था। कई बार प्रसव के तुरन्त बाद ही दूसरे बच्चे की तैयारी शुरू हो जाती थी। दर्द से चिल्लातीं इन औरतों से गोरे, हृदयद्रावक और मनमाने ढंग से यौन तृप्ति करते और करवाते थे। एक निग्रो स्त्री को इसलिए फांसी दी गयी थी कि उसने अपने अवांछित बच्चे की हत्या कर दी थी। कारण था, मालकिन द्वारा उसके बच्चे को अमानुष ढंग से यंत्रणा देना चूंकि वह जान गयी थी कि यह बच्चा उसके पति का है। वह स्त्री अपने बच्चे पर यह अत्याचार सहन न कर सकी।

स्पेनी नारियों पर बरपायी जानेवाली क्रूरता का वर्णन करते हुए मेक्सिको के प्रथम बिशप लैम केसाज ने लिखा है-“ मैंने एक दिन देखा कि चार-पांच भारतीय स्त्रियों से उल्टा-सीधा संभोग करने के बाद उन्हें धीमी आग पर भूना जा रहा था। उनके रोने-चिल्लाने को बंद करने के लिए उनके मुंह में कपड़ा ठूँस दिया गया था। जब तक वे मर नहीं गयीं, उनको भूनना जारी रहा।

गुलामों को पकड़ने का तरीका भी अजीब था। गोरे उनकी बस्ती में आग लगा देते और बचने के लिए जब वे बाहर निकलते तो उनमें से स्वस्थ-सुंदर स्त्री-पुरुषों को पकड़ लेते, बूढ़े-अपाहिजों को भूखा मरने के लिए छोड़ देते या मार आते। बिना शर्मो-हया के स्त्री-पुरुषों को नंगा किया जाता। उनकी स्वास्थ परीक्षा ली जाती और फिर लोहे की तपती सलाखों से उनके शरीर पर अपनी-अपनी कंपनी के पहचान चिन्ह उनके जांघ, छाती और हाथों पर अंकित किये जाते थे। फिर हजारों की संख्या में गुलामों को नगनावस्था में जहाजों पर चढ़ाया जाता था। जहाज में स्त्री-पुरुष भुखे-नंगे यात्रा करते थे। पीने के लिए दिन में केवल एक गिलास पानी और खाने को थोड़े से आलू और जीमि कुलथी का थोड़ा सा दलिया दिया जाता था। तबियत खराब होने के कारण अगर वे खा-पी न सके तो उन्हें कोड़े मारकर या सलाखों से मुंह खुलवाकर खिलाया

जाता था। उन्हें बड़ी संकलों से बांध दिया जाता। कभी-कभी बीमे की रकम वसूल करने के लिए, गुलामों के मालिक सैकड़ों गुलामों को डूबो देते या फिर यंत्रणा असहनीय होने के कारण गुलाम ही समुद्र में कुद जाते।

- सुन्नत के बहाने स्त्री समाज पर सचेत हमला : अफ्रीका में स्त्रियों का सेक्स ऑपरेशन : जया रमेश क्या नारी केवल मादा होती है? आज इस सवाल का दो टूक जबाब होगा- नहीं। बिल्कुल नहीं। नारी जीवन की पुरक होती है और सृष्टिक्रम में समाज की अभिन्न और महत्वपूर्ण इकाई।

इसके बावजूद हमारी सामाजिक समस्या यह बन आयी है कि बहुत से सवालों के सही-सही जबाब हमारे जीवन व्यवहार में शामिल नहीं हो पाते चूंकि पुरुषप्रधान समाज और सरकार उनमें रुचि नहीं लेते।

सेक्स जीवन की समान रूप से आवश्यकता है, पुरुष के लिए भी और नारी के लिए भी। यह वरदान प्रकृति ने दोनों को प्रदान किया है। मगर इतिहास गवाह है कि यह वरदान नारी के सिर पर हमेशा अभिशाप की तरह मंडराता रहा है। वह कभी निर्भय नहीं हो पायी।

अफ्रीका में एक स्त्री जीवन में, कई बार चिरफाड़ की शिकार होती रही। इसका उद्देश्य यही रहा है कि वह स्त्री, पुरुष को अधिक से अधिक यौन सुख देती रहे।

“ स्त्री की कामवासना कभी संतुष्ट नहीं हो सकती। इसलिए बजाय इसके कि वह अशांत रहे, बेहतर है कि उसे उस अंग विशेष से ही छुटकारा दिलवा दिया जाये, जो उसे कामूक बनाता है, उत्तेजन के सुख का भास देता है। “ इस दलील के आधार पर अफ्रीका के कुछ प्रदेशों में स्त्री के यौनिक ऑपरेशन का षडयंत्र तैयार हुआ जो क्रूर और कुटिल होने के बावजूद आज वहाँ की जनजातियों में एक धार्मिक प्रथा का रूप ले चुका है। इस प्रथा को ‘ खतना ’ या ‘ सुन्नत ’ कहते हैं। वह मुस्लिम समाज में सदियों से चला आ रहा संस्कार है। जिसमें लड़के के शिश्न के ऊपर की त्वचा को काट दिया जाता है। परंतु अफ्रीका में लड़कों की नहीं, लड़कियों की सुन्नत होती है। इसमें उन्हें कष्ट और पीड़ा के भयानक दौर से गुजरना पड़ता है।

ये लोग जीव-विज्ञान और नारी शरीर संरचना के बारे में कुछ नहीं जानते। उनकी दुनिया कमोबेश आदीम संसार है। अफसोस तो तब होता है जब वैज्ञानिक भी इस प्रकार की जघन्यता को जायज और उपयोगी करार देते हुए सारा दोष स्त्री के माथे मढ़ देते हैं। उनका कहना होता है कि पारंपारिक प्रथाओं की अपनी एक सार्थकता होती है। इसका समर्थन करनेवालों में पियरे हेनरी एक प्रमुख वैज्ञानिक है। इसमें पांच से दस वर्ष की लड़कियों की योनि में स्थित वह गुप्त इंद्रिय काटकर फेंक दी जाती है जो जवानी में यौन संपर्क स्थापित होने पर उसे वह स्पंदन प्रदान कर सकती है जो उसकी शारीरिक जरूरत भी होती है। मगर बात यही समाप्त नहीं होती। इसके बाद योनि द्वार सी दिया जाता है। सिलाई करते समय सिर्फ एक तीली के बराबर छिद्र की जगह छोड़ दी जाती है ताकि लघुशंका आदि की औपचारिकता पूरी हो सके। नारियों पर यह अत्याचार क्यों किया जाता है, इसका एक कारण यह भी है कि सोमाली अफ्रीकियों में युवतियों की कीमत लगती है जो योनि के व्यास के अनुसार घटती-बढ़ती है। योनि का जितना कम व्यास उतनी अधिक कीमत। यहां तक कि जिसका यह ऑपरेशन नहीं हुआ वह लड़की अपवित्र समझी जाती है और उसका विवाह होना लगभग असंभव हो जाता है। उनमें यह भी अंधविश्वास है कि हो सकता है, स्त्री का वह अंग पुरुष को नपुंसक भी बना सकता है। लेकिन उसके उलट सत्य यह है कि इस ऑपरेशन से स्त्री की प्रजनन शक्ति

नष्ट हो सकती है। एक वैज्ञानिक के अनुसार जिन युवतियों की जननेंद्रिय बहुत बड़ी होती है वे अन्य युवतियों के साथ मिलकर परस्पर संभोग करने लगती हैं। ऐसे अप्राकृतिक और अनैतिक संबंधों को रोकने के लिए ऐसा ऑपरेशन आवश्यक है।

यह रस्म सभी रिश्तेदारों और खासकर स्त्रियों की उपस्थिति में सम्पन्न होती है। उस दिन घर में समारोह जैसा वातावरण बन जाता है। लड़की को स्टूल, या चारपाई नहीं तो जमीन पर ही लिटाकर कई औरतें उसे कसकर पकड़ लेती हैं। चिरफाड़ करनेवाली औरत प्रायः कोई वृद्ध महिला होती है। वह लड़की की योनि को खींचकर बड़े-बड़े कांटों की मदद से उन्हें दोनों जांघों से जोड़ देती है। फिर छुरी से योनि प्रदेश को छेदती हुई उसकी जनन इंद्रिय को काटकर बाहर खींच लेती है। खून बहता रहता है। लड़की जिरह होती बकरी की तरह चिखती-चिल्लाती रहती है। बाद में दाईं, योनि प्रदेश के भीतरी किनारे को सब्जी के छिलकों की तरह छील देती है। काफी खून बह जाने के बाद योनि किनारे आपस में जोड़कर बबूल के कांटे से सिल दिये जाते हैं। भगद्वार बिल्कुल बंद न हो इसके लिए उसे सिलते समय उसमें एक पतली सी लकड़ी फंसा दी जाती है। ऑपरेशन संपन्न होने पर लड़की के शरीर पर कमर से लेकर घुटने तक एक पट्टी बांधकर लिटा दिया जाता है। वह कमसे कम दो सप्ताह या इससे भी अधिक समय तक बिना हिले-डुले इसी प्रकार लेटी रहती है। यहाँतक कि उसका मलमूत्र भी इसी पट्टी में सड़ता रहता है। इससे तरह-तरह की बिमारियाँ तो पैदा होती ही हैं, कई बार लड़की अपंग भी हो जाती है। ऑपरेशन के दरम्यान कई बार मूत्र नली कट जाती है, गर्भाशय पर घाव हो जाते हैं आदि-आदि। ऐसी स्थिति में पीडिता के कष्टों की आप कल्पना कर सकते हैं।

यह एक ऐसा कुकृत्य है जो स्त्री को मजबूर कर देता है कि वह महज पुरुष के भोग का पकवान बनकर मादा की भूमिका निभाती रहे क्योंकि यौन सुख पाने के लिए पुरुष को केवल योनि की जरूरत होती है, जननेंद्रिय की नहीं। प्रजनन के लिए भी केवल योनि ही पर्याप्त रहती है। इसके विपरीत यह तथ्य डंके की चोंट पर सिद्ध हो चुका है कि स्त्री का काम सुख योनि में नहीं बल्कि जननेंद्रिय में ही नीहित रहता है। इसलिए कहा जा सकता है कि इन जातियों में यौन संपर्क का महासुख सिर्फ पुरुषों की झोलियाँ में आनंद भरता है। स्त्री की झोली तो सुनी ही रहती है।

कई जातियों में यह प्रथा भी है कि शादी से पहले सिल चुकी योनि को शादी के बाद स्वयं स्त्री का पति ही चाकू या वस्तरे से अपने शिश्न के आकार के अनुसार खोलता है। फिर इतनी प्रतीक्षा भी नहीं की जाती कि घाव को भर जाने दे। वे पुरुष मानते हैं कि इन दिनों में अधिक बार यौन संपर्क करना चाहिए ताकि घाव भर जाने से रास्ता बंद न हो।

प्रसव और उसके बाद का कुछ समय स्त्री के लिए सावधान और सचेत रहने का अवसर होता है। लेकिन अफ्रीका में प्रसव के समय स्त्री की योनि को फिर एक बार चीर दिया जाता है। बच्चा पैदा होना और फिर एक बार योनि का सिया जाना। क्यों इसका जबाब भी वहाँ के साहित्यकार भी पुरुषवादी दृष्टिकोण से देते हैं। “ पुरुष प्रायः अपनी पत्नी को छटपटाता और लहलुहान देखकर भरपूर यौन सुख प्राप्त करते हैं.....और यह पुरुष का अधिकार है। “

ऐसा नहीं है कि इस प्रथा का विरोध नहीं हुआ। हो रहा है। इस प्रथा से पीड़ित स्त्रियाँ स्वयं इसके विरुद्ध खड़ी हो रही हैं। इस पाशविक प्रथा पर अबतक के इतिहास में प्रथम आक्रमण एक कैथोलिक मिशनरी ने 1881 में किया था। लेकिन एबीसिनियाई के पुरुष समाज ने इसका जबरदस्त विरोध किया। इस विरोध का सही आकलन करने के लिए पोप ने भी एक मंडल भेजा था। जिसने एक हास्यास्पद रिपोर्ट दी। “पारंपारिक प्रथा के रूप में नारी जीवन से किया जानेवाला यह खेलवाड़ अनैतिक और अमानवीय है। परंतु इसपर प्रतिबंध लगाना उचित नहीं क्योंकि इससे धर्म परिवर्तन या अफ्रीका को ईसाई बनाने का सारा कार्यक्रम चौपट हो जाएगा।”

सितम्बर 1982 में नैरोबी में इस चिरफाड़ के दौरान 14 लड़कियों की मौत हो गयी थी। बड़ा बवाल मचा था। कई जगहों इसपर पाबंदी लगाने की कोशिश की गयी लेकिन वह सफल नहीं हो सकी। आज केवल इजिप्त, नैरोबी और सुदान में ही इस प्रथा पर प्रतिबंध लागू है।

फिर भी इसका विरोध तो होना ही चाहिए।

- खाड़ी के देशों में औरत पर टिकी भूखी निगाहें---

सेक्स की जिन्दगी में औरत को बराबरी का यह हक नहीं मिला कि वह अपनी मर्जी से किसी आदमी से प्यार या उसके लिए इन्कार कर दे। यह हक भी नहीं कि पसंद की जाने के बजाय वह किसी मर्द को पसंद करे।

कई जगह ऐसी मान्यता है कि अरब के लोगों को पैगम्बर महम्मद के वंशज होने के कारण निकाह में तरजीह दी जाये। अतः गरीब और असहाय मुस्लिम परिवारों के बड़े-बुढ़े अपनी कुंवारी बेटियों को खुशी-खुशी अरबों के साथ ब्याह देते हैं। यह अंधविश्वास इतना गहरा होता है कि कम उम्र की लड़कियों और होनेवाले पतियों में कभी-कभी तो पचास सालों का अंतर होता है। यह विवाह नियोजित षड्यंत्रों का ही हिस्सा होते हैं जिसकी परिणती युवतियों के अधिकारमय भविष्य का रास्ता बनाते चले जाने में होती है। खाड़ी देशों में सारी दुनिया भर की औरतों से हरम सजाए जा रहे हैं। और फिर ये युवतियाँ वेश्यालयों में पहुंच जाती हैं।

जहाँ तक इतिहास की बात है, मोहम्मद बिन कासिम प्रारंभ में ही भारत से एक लाख से अधिक स्त्रियाँ और सत्तर से अधिक सरदारों के सिर ले गया था।

- देवदासी प्रथा

कर्नाटक के बेलगांव जिले में सौंदती नाम का गांव है। यहीं यल्लम्मा नाम की देवी है। यल्लम्मा पौराणिक रेणुका है, जो ऋषि जमदग्नि की पत्नी थी और परशुराम की माता। एक बार रेणुका नदी से जल भरने गयी। वहाँ उसने एक गंधर्व को स्नान करते हुए देखा, तो उसकी सुंदरता पर मोहित हो उठी। उधर जमदग्नि को पता चल गया कि उनकी पत्नी के हृदय में परपुरुष के प्रति वासना पैदा हो गयी है। उन्होंने अपने पुत्र को आज्ञा दी कि वह अपनी माता का शिरच्छेद करे। परशुराम ने आज्ञा का पालन किया। जमदग्नि पुत्र के पितृभक्ति पर प्रसन्न हो उठे और उससे वर मांगने कहा। परशुराम ने कहा कि उसकी माँ को जीवनदान दिया जाय। ऋषि रेणुका को जीवित नहीं कर सकते थे। अतः उन्होंने परशुराम से कहा कि अगर वह किसी अन्य स्त्री का सीर काटकर अपनी माता की कटी गर्दन पर रख दे, तो वह जीवित हो

उठेगी। (ऋषि का भी कितना बड़ा स्वार्थ) तभी समीप से मातंगी (मातंग जाति की स्त्री - बेचारी) गुजर रही थी। परशुराम ने उसका सिर काटकर अपनी माता के शरीर पर रख दिया। रेणुका जीवित हो उठी। तबसे यल्लम्मा अधीकांश रूप में महार और मातंग जाति की देवी मानी जाती है। साल में दो बार सौंदत्ती यात्रा आयोजित होती है। वहाँ देवी को कन्याएं अर्पित की जाती हैं। उनकी शादी जमदग्नि के साथ सम्पन्न होती है।

देवदासी परिषद् की तत्कालीन स्वागताध्यक्षा गौराबाई सलवादे के साथ श्री अनिल अवचट की बातचीत, देवदासियों के जीवन के कई पहलू व्यक्त करती है---

मैंने जिज्ञासा से पुछा, “ आप देवदासी कैसी बनी।”

उसने वितुष्णा से अपनी आजी की ओर देखा,” बारह साल की बच्ची थी तभी इस बुढ़िया ने मुझे देवी को अर्पित कर नर्ककुंड में ढकेल दिया।

“ देवी को अर्पित करने का कारण?”

“ माँ-बाप बचपन में ही मर गये थे। घर में 21 गुंठा जमीन थी। वह दूसरों (शादी के बाद जमाई के) के कब्जे में न जाये, यह सोचकर इस बुढ़िया ने मेरी शादी जमदग्नि के साथ कर दी। एक दिन कुछ लोगों ने खेत में मुझे घेरकर मेरे साथ जोर-जबरदस्ती की। मैं घर आकर खुब रोई तो अजी और मालवेसी ने खुब डाटा और कहा कि-रोती क्यों है, अब यही तुझे जीवनभर करना है.....अब यही तेरा धर्म है।.....मैंने धंधा करने से इन्कार कर दिया तो मेरी खुब धुनाई हुई। अन्त में मानना ही पड़ा फिर एक पुलिस का सिपाही था। मैंने केवल उसीसे संबंध रखा और भागकर उसके साथ शादी कर ली। लेकिन घरवालों ने देवी का वास्ता देकर मुझे वापस भेजने के लिए कहा। देवी का नाम सुनकर पति ढिला पड़ गया और मैं उससे गर्भवती होने के बावजूद मुझे वापस भेज दिया और मैं इस धंधे में फंस गयी।.....हमारे घरवालों ने देवी का विष न बोया होता तो मेरा भी घर-संसार होता। बाद में एक सेठ से मुझे एक लड़की भी हुई।

“ इन बच्चों का क्या?”

“ लडका स्कूल में पढता है। लड़की को मैंने कोल्हापुर के एक होस्टल में रखा हुआ है।”

“ तुमने अपनी लड़की को देवी की सेवा में नहीं छोड़ा?”

“ मेरी आजी ने मेरा सत्यानाश कर दिया। मैं अपने हाथों से मेरी बेटी की जिन्दगी नहीं उजाड़ सकती।.....हममें से किसीमें देवी आती है, यह भी एक ढोंग है।”

किन कारणों से लोग लड़कियों को देवी की शरण में छोड़ देते हैं?”

“ समझिए कि किसीको लडका नहीं है, तो वह यल्लम्माई को मनौती मांगता है कि अगर उसे लडका हुआ तो वह अपनी पहली लड़की को देवी को अर्पित कर देगा। किसीको कोई बड़ा रोग हुआ तो भी।”

@ जोगतिनियों : देव अर्पित कन्याएं : जोगतों का अभिशप्त जीवन : अंधविश्वासी धारणाएं

बाल उलझ जायें तो यहाँ की ऐसी मान्यता है कि यह देवी का बुलावा है। इन जटाओं को काटा नहीं जाता। उनका विश्वास है कि जटाओं के साथ किसी भी प्रकार की छेड़छाड़, देवी का कोपभाजन बनने का कारण बनेगी। ये जटाएं बढ़ते-बढ़ते मोटी रस्सी की तरह लड़कियों की पीठ पर झुलने लगती हैं। 'जटा' को लेकर लोगों के मन में अजब तरह की दहशत है।

अर्पित करने की विधि : किशोरियों को देवी के चरणों में अर्पित करने के लिए, पांच देवदासियाँ, गवाही के लिए दो पंच, और लड़की के घरवाले देवी के पर्वत पर जाते हैं। वहाँ लड़की का विवाह विधिपूर्वक भगवान से किया जाता है। पुजारी तांबे के थाल में लोटा रखकर उसमें नारियल सजाता है। फिर उसे धोती, पगड़ी आदि परिधान पहनाकर भगवान का रूप दिया जाता है।....और एक अबोध बालिका का विवाह ईश्वर से हो जाता है। बालिका का आगे जीवन नारकीय तो होना ही है। पुजारी दक्षिणा पा जाता है। शामियाना लगता है, शहनाई बजती है, दावत होती है। दुल्हन पहाड़ से उतरकर नदी में नहाती है और उन पांच देवदासियों के संग, सिर पर टोकरी रखकर पांच गांवों में घूम आती है।

.....मीलों लंबी बैलगाड़ियों की कतारें रेंग रही हैं। उनके आगे जोगतिनियों का समूह नाच रहा है। देह पूर्णतः नग्न। लाज रखने के लिए कमर और वक्षस्थल पर मात्र नीम की पत्तियों की झालर। भरी दोपहरी की तपन के बावजूद नंगे पांव। एक, एकतारा बजा रही थी तो दूसरी चौंडक। एक के सिर पर टोकरी में देवी की मुखाकृति उर्फ 'जग' धरा हुआ। यह थी देवी के मंदिर में लौटने की शोभायात्रा.....

एक जोगवा की पिडा: नौ वारी साड़ी पहने हुए एक बीस साल के जोगवा ने अपनी पीड़ा व्यक्त की--

मैं एक जोगवा हूँ। मेट्रिक तक पढ़ा हूँ। मेरे जन्म से पूर्व घर में किसी विपत्ति को लेकर किसी ने मानता बोली थी कि उसका निवारण होते ही पहले बच्चे को और मुझे देवी की शरण में छोड़ दिया गया। मैं बड़ी मुश्किल से पढ़ा हूँ। घर-घर अखबार डालता था।.....लेकिन अब मुझे साड़ी पहने देखकर मेरे मित्र मेरा उपहास करते हैं, मुझसे दूर भागते हैं। मुझे जोगवा मांगकर खाना पड़ता है। इस नरक कुंड से लौटने का कोई रास्ता दिखाई नहीं देता.....

एक जोगतीन की पीड़ा, " यह उपहास नहीं है माँ.....हमारा दर्द है....तुम तो जगत माता हो, बताओ, तुम्हें हम महारों की कन्याएं ही क्यों अच्छी लगती हैं? तुम्हारा बुलावा जाट-मराठा-ब्राह्मणों की लड़कियों के लिए क्यों नहीं आता?"

कन्नड़ का यह हरिजन समाज बहुत अलग है। महाराष्ट्र में डॉ. आंबेडकर द्वारा जगाई हुई चेतना कर्नाटक के हरिजनों तक नहीं पहुंच पायी थी। सिर्फ शिक्षा के प्रचार से यह घिनौनी प्रथा समाप्त नहीं होगी। इसके लिए उनके अंधविश्वासों पर प्रहार करना होगा। महात्मा फुले प्रतिष्ठान के कार्यकर्ताओं ने बीच का रास्ता अपनाया। वे प्रचार करते हैं, " आप यल्लम्मा की पूजा अवश्य करें....लेकिन अपनी मासूम बच्चियों को बलि का बकरा मत बनाइए।"

बीजापुर के गांधीवादी नेता कारखानीस, देवदासी उन्मूलन तथा अस्पृश्यता निवारण आंदोलनों से सक्रियता से जुड़े रहे। उन्होंने ऐसी स्त्रियों के लिए एक वसतिगृह का निर्माण किया। सर्कसवाले देवल जी ने

भी, अपनी सर्कस में इन लड़कियों को प्रतिष्ठित नौकरी देने का प्रयास किया। इस प्रथा के विरुद्ध “ समता प्रतिष्ठान ” भी कार्य कर रहा है। लेकिन ये सारे प्रयास सरकारी ईमानदार सहयोग के बीना अधुरे हैं।

वैसे तो इस प्रथा के विरुद्ध ब्रिटिश सरकार ने 1934 में ही कानून बनाया था। लेकिन आज भी इस प्रथा का जड से उच्चाटन हुआ है, ऐसा कहना मुश्किल है।

- देवी जो हरिजन महिलाओं पर बलात्कार बरपाती है-

कर्नाटक प्रान्त के एक गांव-चिनचानपुर-में देवी का एक तथाकथित सिद्ध मंदिर है। नाम है-मापुर ताई। देवी के बारे में ऐसा माना जाता है कि हर साल एप्रिल माह के दूसरे शुक्रवार को देवी वहाँ से तीनेक कि.मी. दूर स्थित अपने मंदिर के निजी कक्ष में चली जाती है और पांच सप्ताह वहीं रहती है। पांचवे शुक्रवार को जबकि मेला लगता है भक्तगण उसे एक विशाल जुलूस के साथ हर्षोल्लास से वापस लौटा लाते हैं।

परन्तु ये पांच शुक्रवार वहाँ की हरिजन महिलाओं के लिए काफी कष्टप्रद होते हैं। इस अवधि में उन्हें योगिन बनाकर देवी की अर्चना और सेवा के लिए तैनात किया जाता है। पर यह सेवा देवी की नहीं बल्कि पुरुषों की होती है जो इस दरम्यान उनसे भोग-विलास भी कर सकते हैं। धर्म की आड में यह यातना सिर्फ हरिजन महिलाओं के लिए ही अनिवार्य मानी गयी है। गैर-हरिजन महिलाओं के लिए नहीं। वैसे तो सन् 1979 में इस प्रथा पर रोक लगा दी गयी है। लेकिन अंधश्रद्धा के कारण कुछ हरिजन परिवार अभी भी यह मानते हैं कि जिस परिवार की लड़की इस सेवा में जायेगी उसके परिवार के लोगो को अगले जन्म में हरिजन होने से मुक्ति मिल जाएगी। सवर्ण लोग भी उन्हें उकसाते हैं कि पुलिस, उनके मुक्ति मिलाने के रास्ते में रोड़े अटकाते हैं।

- महाराष्ट्र का तमाशा

महाराष्ट्र के ग्रामीण अंचलों में ‘ तमाशा ’ नाम से प्रख्यात लोकनाट्य आज अत्यंत विकृत स्थिति में है। तमाशा करनेवाली नर्तकियाँ जिन्दा रहने के लिए तमाम तरह के समझौते करने को बाध्य हैं। ये नर्तकियाँ अश्लील हरकतें और भोंडे नृत्य करके दर्शकों का मनोरंजन करती हैं। बरसात के कारण लगभग चार महीने तक तमाशा बंद रहता है। इस बीच तमाशा मंडली के मालिक और तथाकथित शुभचिंतक मंडली की महिला सदस्यों का भरपूर शोषण करते हैं। इतना ही नहीं तो उन्हें गांव के मुखिया, पटेल, गुंडों और बदमाशों की हवस का शिकार होना पड़ता है। कुछ स्थानों पर ऐसी घटनाएँ हुई हैं जिसमें नशे में धुत गुंडे नर्तकियों को नृत्य के बीच से उठाकर ले गये।

इनके यहाँ परंपरा है कि अगर कोई विवाह करना चाहे तो भी विवाह नहीं होता। इन्हें किसी कलाकार या धनी व्यक्ति की रखैल बनकर ही जीना होता है। तिस पर भी रखैल तो वे ही हो सकेगी जो आकर्षक और स्वस्थ हो। प्रायः नर्तकियाँ अंधविश्वासी होती हैं। बेटी का जन्म इनके यहाँ शुभ माना जाता है और इन्हें यह कहने में गर्व महसूस होता है कि इनकी बेटियाँ भी आगे चलकर इन्हीं के धंधे में इनका नाम रोशन करेगी। बेटी के नाम के आगे वे खुद का नाम लगाती हैं चूंकि खुद इन्हें पता नहीं होता कि उनकी पुत्री का पिता कौन है।

- जंहरमोहरे का जंगल.....विकासकुमार झा

बिहार के सुदूर देहाती हिस्से में बसा है एक गाँव 'असोगी'—एक वेश्याग्राम। इस अनोखे गाँव और यहाँ सैकड़ों वर्षों से चले आ रहे रोमांचक देह व्यापार के बारे में पता चला। इस गाँव की परंपरा रही कि यहाँ लड़कियों की शादी नहीं होती और उन्हें सीधा जिस्म के धंधे में उतार दिया जाता है। गाँव के लोग अपने पूर्वजों द्वारा तय इस रीति को आज भी निभा रहे हैं। कैसी है यह संस्कृति जहाँ बेटियाँ देह व्यापार के लिए नामजद हैं और बहुएं इज्जत के लिए। बहुओं की तरफ कोई आंख उठाकर भी नहीं देख सकता। कुछ साल पहले तक असोगी से लड़कियाँ थोक भाव में विभिन्न अड़्डों को भेजी जाती थीं।

यहाँ की एक लड़की से लेखक ने पूछा, “यहाँ की लड़कियाँ शादी क्यों नहीं करती? इस रिवाज के खिलाफ तुम लोगों ने अपने माँ-बाप से कुछ कहा नहीं?”

पल भर के लिए चुप रही वह। एक क्षण के लिए पिले चेहरे पर मानो आग की लपट तैर आयी। बोली, “जहरमोहरे के फुल का नाम सुना है तूने?.....गाँव-घरों में जब सांप डंसता है, तो इसी फुल से जहर उतारते हैं। हम भी तो जहरमोहरे के फुल ही हैं, जो मर्द के शरीर से जहर उतारता है।”.....शमा की बात ने बहुत देर तक स्तब्ध सा कर दिया। सच, असोगी जिस्म का जंगल नहीं, जहरमोहरे के फुलों का जंगल है, जहाँ आदिम जहर उतारने के वास्ते बेशुमार फुल हैं। बिहार का यह गुमनाम वेश्याग्राम अपनी बेटियों की अस्मत् पर पलने को क्यों विवश है? ऐसे और भी कई गुमनाम गाँव सुदूर क्षेत्रों में हो सकते हैं।

औरतों की नियति वेश्यावृत्ति होने के और कारण भी हो सकते हैं। जैसे जौनसारी समाज में बहुपति प्रथा होने के कारण एक ही औरत को कई पुरुषों के साथ यौन संबंध स्थापित करना पड़ता है, जिससे उसके मन में यौन शुचितावाली बात आती ही नहीं।

- वैधव्य

वैधव्य हिंदू समाज का सबसे बड़ा अभिशाप है। यह हमारे समाज की ऐसी अधिकतर महिलाओं को मृत्यु पर्यंत रोते-कलपते ढोना पड़ता है। पतिविहीन नारी को कदम-कदम पर उपेक्षा, अपमान और अवहेलना की यातनाओं से गुजरना पड़ता है। शायद इस सबके पीछे उसकी आर्थिक परतंत्रता का प्रबल पक्ष है। समाज की प्रताड़नाओं और लांछनाओं से तथा इस यातनाप्रद संसार से मुक्ति पाने के लिए वह काशी, वृंदावन या ऐसे ही किसी तीर्थ की शरण में जाती हैं या थीं और मोक्ष की कामना करते-करते जीते जी नरक में वास करती हैं। क्या इस जन्म में ही इनकी मुक्ति नहीं हो सकती?

काशी ऐतिहासिक नगरी है। इसका पौराणिक और ऐतिहासिक महत्व कम नहीं है। इस नगरी में मंदिरों और घाटों की कमी नहीं है। (और आज तो इसके विकास पर अरबों रुपए न्योछावर किये जा रहे हैं)। विश्वनाथ मंदिर और मणिकर्णिका घाट तो पूरे विश्व में प्रसिद्ध है ही। इनके आसपास कई मठ और आश्रम भी हैं। यही मठ और आश्रम अधिकतर ऐसी महिलाओं की शरणस्थली हैं। यहीं एक लेखक की मुलाकात होती है एक बंगाली महिला सुहासिनी घोष से जो कलकत्ता से आकर यहाँ बस गयी है। सफेद कपड़े, सफेद बाल, कृष्णकाय शरीर। आश्रम में रहती है। वहीं से खाने-पीने की व्यवस्था हो जाती है। उसने तीस बरस पहले, पति की मृत्यु के बाद, पारिवारिक कलह से मुक्ति पाने के लिए यहाँ शरण ली थी। लेकिन अधिकतर उसे जीवन दर-दर ठोकरें खाते हुए, भीक मांगते हुए और साधुओं से अपनी इज्जत बचाते हुए ही बिताना पड़ा।

अधिकतर विधवाओं की कहानियाँ इससे भी करुण हैं। क्या आज खर्च हो रहे अरबों रुपयों में से एक छोटा सा हिस्सा इनकी झोली में नहीं आ सकता ताकि वे सम्मान के साथ जी सके।

अब अन्य तीर्थ वृंदावन की ओर मुड़े---यहाँ याद आ रही है वृंदा की पौराणिक कहानी। वृंदा किसी असूर की पतिव्रता स्त्री थी। उसे यह वरदान प्राप्त था कि जबतक वह पतिव्रता रहेगी, उसके पति का कोई बाँल भी बाँका नहीं कर पाएगा। इस असूर को मारने के उद्देश्य से देवताओं ने एक चाल चली। विष्णु, वृंदा के पास उसके पति का रूप धारण कर गये और उसका शीलभंग कर दिया। वृंदा का वरदान समाप्त हो गया। लेकिन जब वृंदा को इस कुचक्र का पता चला तो उसने विष्णु को पत्थर हो जाने का शाप दिया। बदले में विष्णु ने वृंदा को घांस होने का शाप दिया। तबसे शालीग्राम के रूप में विष्णु(पत्थर) और तुलसी के रूप में (घांस) वृंदा को पूजने का प्रचलन है।

यहाँ तो परिवार के लोग ही घर की विधवाओं को लाकर छोड़ते हैं। लेकिन आज की परिस्थिति के हमारे समाज में ऐसी अनाथ और युवा विधवाओं की स्थिति क्या होती होगी, इसकी कल्पना करते ही आँग पर कांटे खड़े हो जाते हैं। धार्मिकता उनको कितनी सुरक्षा प्रदान कर रही होगी यह समझने की बात है।

सवाल है जब एक पत्नी मर जाने के बाद पति दूसरा विवाह कर सकता है तो पत्नी क्यों नहीं? आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा उसके लिए क्यों नहीं? सम्मानपूर्ण जीवन उसके हिस्से क्यों नहीं?

- महाराष्ट्र में (खास करके ब्राह्मण जाति में)विधवाओं का वपन (पूरी तरह सिर के बाल निकालना) किया जाता था तथा उन्हें पूरी तरह रूक्ष जीवन जीना पड़ता था। इसके विरुद्ध भी, महाराष्ट्र के महान क्रांतिकारी युगल ज्योतिबा तथा सावित्रीबाई फुले इन्होंने अन्य प्रगतिशील कार्यों के साथ-साथ, संघर्ष किया। नाई लोगों की हड़ताल करवाई और उन्हें विधवाओं के बाल न निकालने का आवाहन किया। दम्पति को कोई सन्तान नहीं थी। एक आत्महत्या करने निकली गर्भवती विधवा की जान बचायी, उसे सहारा दिया तथा उसके जन्मे बच्चे को गोद लिया।
- परलोक में पति सेवा

सन् 1800 में जोधपुर, महाराजा भीम की रियासत का हिस्सा था। तब राजपुती आन का प्रतीक होती थीं, रनिवास में रानियाँ और रखैलों की बढ़ती हुई संख्या और इस संख्या को बढ़ाने के लिए कोई खास मशक्कत की जरूरत भी नहीं थी। महाराजा की इच्छा हुई कि छोटे-बड़े जमीनदारों की बेटियों को महाराजा के लिए हाजिर कर दिया जाता था। यह अलग बात है कि महाराजा उन सबसे मिल भी नहीं पाता था। महाराजा की आयु के साठवे साल में भी उनसे पैतालीस साल छोटी लड़की उनके हरम की सदस्या बन जाती थी।

मादक पदार्थों के सेवन और सहवास के कारण महाराजा शरीर से खत्म हुए जा रहे थे। पर हाकिमों की जमात थी कि बराबर उन्हें पौरुषयुक्त जड़ी-बुटियों से लैस कर देते और महाराज का ' मर्द ' खंडहरों में फिर उभर आता।

लेकिन महाराजा का अंतिम समय कभी तो आना ही था। फिर मशवरा शुरू हुआ कि महाराजा की परलोक सेवा के लिए कौन-कौन सी रानियों को चुना जाये? अर्थात् महाराज के मृत शरीर के साथ कौन-कौन सी रानियों को जिन्दा जलाया जाये। अर्थात् महाराज की पसंद तो रहेंगी ही, कम से कम उम्र की रानियाँ और उनकी बांदियाँ। चंदन के लठ्ठों से सजायी गयी चिता में पहले बिठायीं गयीं महारानियाँ। बड़ी महारानी की गोद में रखा गया महाराज का सिर। फिर घिरकर बैठीं अन्य महारानियाँ और अंतिम घेरा बना बांदियों का। उम्रभर तो गुलामी ही जिन्दा जलाये जाते वक्त भी गुलामी का दर्जा खत्म नहीं हुआ।

• क्या सती प्रथा फिर लौट रही है? क्षमा शर्मा

अजीब अंतर्विरोध है कि जो हिंदू समाज, स्त्री से पत्नी, माँ और बेटी जैसे पवित्र रिश्तों से जुड़ा है, उसे देवी मानकर पूजता है, वही उसे धर्म का सहारा लेकर 'सती' प्रथा की आग में झोंकता है।

यह प्रथा कब शुरू हुई, कहा नहीं जा सकता। लेकिन इतिहासकारों के अनुसार सन् 600 के आसपास भी सती होने के प्रमाण मिलते हैं। सती होने के किस्सों से इतिहास भरा पड़ा है। पति की मृत्यु के बाद औरत को अफीम खिलायी जाती थी। फिर पति के साथ उन्हें चिता में डाल दिया जाता था। उनके ऊपर घी आदि भरपूर डाला जाता था जिससे वे जल्दी से जल्दी जल मरे। यदि कोई औरत बाहर निकलने की कोशिश करती तो उसे बांसों की सहायता से चिता में ठेल दिया जाता। 'सती माता की जय' और ढोल-नगाड़ों की आवाज में औरत की चीखें दबकर रह जातीं। इस प्रथा को बड़े पैमाने पर गौरवान्वित भी किया जाता था। यह एक क्रूर कुप्रथा थी लेकिन उसपर धर्म ने अपनी मोहर लगा दी थी। जो औरत सती होने से इन्कार कर देती उसे समाज में अपमान और यातनाएं झेलनी पड़तीं। औरत को सती होने के लिए उद्यत किया जाता। इस कृत्य का महान गुणगान किया जाता।

जहांगीर, औरंगजेब और मुहम्मद तुघलक ने इसे रोकने की कोशिश की। जहांगीर और औरंगजेब ने इसे औरत की हत्या बताकर उसके लिए मृत्युदंड तक की व्यवस्था की थी।

फिर ईस्ट इंडिया कंपनी का प्रशासन आया। उसने भी शुरू में इसे हिंदू धर्म का एक अंग मान लिया। लेकिन इस बीच राजा राम मोहन राय और उनके परम मित्र डेविड हारे ने सती प्रथा का विरोध करना शुरू किया। कहते हैं राजा राम मोहन राय ने अपनी सगी भाभी को सती होते देखा था। उन्होंने भाभी को बचाने का प्रयत्न किया था, लेकिन उसमें सफल नहीं हो पाये। तभी उन्होंने निश्चय किया कि वे इसे समाप्त करके रहेंगे। इस प्रयत्न में उन्हें बड़ा कष्ट, अपमान और बदनामी झेलनी पड़ी। द्वारकानाथ टैगोर, प्रसन्नकुमार टैगोर, पादरी विलियम आदम, डेविड हारे, हेनरी लुईस, विवियन डिरिजियो और उनके शिष्य इन्होंने राममोहन राय का सक्रिय समर्थन किया।

04-07-1828 को लॉर्ड विलियम बैंटिंग गवर्नर जनरल बनकर आये। तबतक सती प्रथा विरोधी आंदोलन जोर पकड़ चुका था। स्वयं बैंटिंग भी इस प्रथा को अमानुषिक मानते थे। अतः उन्होंने राममोहन राय और उनके सहयोगियों की सहयोग से सती प्रथा के विरोधी कानून बनाया। कानून था—जो भी व्यक्ति किसी हिंदू

विधवा स्त्री को सती होने या मृत पति के शव के साथ चिता पर बैठने के विवश करेगा या ऐसा करते हुए पाया जाएगा उसे अपराधी माना जाएगा और वह दंड तथा जुर्माना दोनों का भागीदार होगा।

अर्थात् ही कट्टरपंथी हिंदुओं ने इस कानून का जोरदार विरोध किया। उनकी दलील थी कि जो स्त्री अपने पति के साथ सती होगी वह साढ़े तीन करोड़ वर्षों तक स्वर्ग में निवास करेगी। उसके आप्तजन भी स्वर्ग के हकदार होंगे। यह कानून इन सबको इससे वंचित करेगा। 125 पंडितों ने हस्ताक्षर करके एक विज्ञापन विलियम्स बैटिंग को दिया। लेकिन बैटिंग ने इस याचिका को यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया कि हिंदू शास्त्रों में पत्नी को जान से मार देने की कोई व्यवस्था नहीं है। फिर 28 पंडितों ने 346 नागरिकों के हस्ताक्षरों सहित एक याचिका प्रिवी कौंसिल को भेजी। दूसरी तरफ राजा राममोहन राय ने भी एक याचिका इंग्लैंड भेजी। 1831 में न्यायाधीशों की एक बेंच ने दोनों याचिकाओं पर सुनवाई करते हुए धर्मसभा की याचिका मानवीय आधार पर खारीज कर दी। इससे पहले ही 04-12-1829 को ही सती प्रथा को समाप्त करनेवाला कानून बन गया था।

(अंग्रेज़ इतिहासकार मील तथा विल्सन ने अपनी पुस्तक ' ए हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इंडिया ')

में दिया है कि सन् 1815 से 1828 तक कलकत्ता में 5100, मुर्शिदाबाद में 253, ढाका में 710, पटना में 709, बनारस में 1163, बरेली में 203 यानी कुल 7038 औरतें इस प्रथा की भेंट चढ़ चुकी थीं।)

सती प्रथा खत्म करनेवाले कानून को बने 1982 को 153 वर्ष हुए थे। लेकिन राजस्थान के कोटडी में 01-04-1973 को सावित्री नाम की 29 वर्षीय युवती सती हो गयी। 03-10-73 को गोल्याणे की 52 वर्षीय प्रौढ़ा सती हो गयी। इसी तरह गोविंदपुरा की हेमकंवर 09-09-73 को, सुरपुरा की सरताज़ कंवर भी 25-02-74 को, तथा 30 अगस्त को झाड़ोली गाँव में सती की घटना हुई। गाँववालों ने पुलिस को सूचना तक नहीं दी। अर्थात् आज भी इन घटनाओं के साथ चमत्कार, विरोध करने का डर, अंधविश्वास चिपका हुआ है। पुलिस पुछताछ में, परिवारवाले घटना की जिम्मेदारी सती गयी महिला पर ही थोप देते हैं। हां, लेकिन घटना के स्थान पर बड़े-बड़े मेले जरूर लगते हैं, घटना को ग्लोरिफाय करने के लिए। मथुरा के पलसो गांव की हरदेवी के साथ तो बड़ी विचित्र घटना घटी। पुलिस मौके पर पहुंच गयी और उसने हरदेवी को समझा-बुझाकर चिता से उतार लिया। लेकिन दो दिन बाद जब हरदेवी गाँव लौटी तो उसे गाँववालों ने काफी परेशान किया। अंत में हरदेवी, जहां पति की चिता जली थी वहीं जाकर बैठ गयी। गाँववालों ने उसके शरीर पर घी छिड़का और आग लगा दी। जब पुलिस ने पुछताछ की तो गाँववालों ने हरदेवी के साथ चमत्कार जोड़ दिया और बताया कि किसी ने आग नहीं लगायी। आग तो सती के शरीर से अपने आप निकलने लगी थी।

राजा राममोहन राय ने सती प्रथा का विरोध करते लिखा था, " इस प्रथा के पीछे उसके परिवारजनों की यह लोभी आकांक्षा रहती है कि विधवा के जल मरने से वे उसके भरणपोषण के खर्चे से बच जाएंगे। (आज सती प्रथा का उदात्तिकरण करने के पीछे और मेले भरवाने के पीछे भी गाँववालों की आर्थिक स्वार्थ की दृष्टि होने की संभावना अधिक हो सकती है।)" राजा राममोहन राय ने स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह, औरतों के लिए पिता और पति की सम्पत्ति में हिस्से की भी मांग की थी।

बंगाल के पुनर्जागरण के नायक हेनरी लुइस डिरिजियो पर उत्पल दत्त ने एक फिल्म बनायी थी- 'झोड'। इस फिल्म में दत्त यह दिखाने में सफल रहे कि सती प्रथा के पीछे मुख्य कारण आर्थिक है। फिल्म में नायक के रूप में उज्ज्वल सेनगुप्त ने तथा अन्य भूमिकाओं में उत्पल दत्त तथा उनकी पत्नी शोभा सेन ने बहुत अच्छा अभिनव किया था। बंगाल के इतिहास में डिरिजियो का व्यक्तित्व भी एक तुफानी व्यक्तित्व था। फिल्म की शुरुआत एक औरत सती जाने की घटना से होती है। साफ दिखता है कि पति बहुत बड़ा और औरत बहुत छोटी थी। अर्थात् विवाह बेमेल था। इतने में डिरिजियो के चार शिष्य आते हैं और उस औरत को चिता पर से उठाकर ले जाते हैं। डिरिजियो के शिष्य यानी डिरोजियन्स ने एक तरह गुरिल्ला ढंग के संघर्ष की नींव डाली थी। जहाँ भी ऐसी कुरीति की घटना होती, उसे रोकने वे वहाँ पहुँच जाते। हिंदू कॉलेज के ये लड़के डिरिजियो से केवल दर्शन ही नहीं पढ़ते थे, वे सांस्कृतिक, सामाजिक गतिविधियों में हिस्सा लेते। डिरिजियो के उदार विचारों के कारण न केवल कॉलेज की प्रबंध समिति बल्कि शहर के रूढ़िवादी लोग भी उसके विरुद्ध हो गये। अंततः उसे नौकरी से निकाल दिया गया। जिस औरत को डिरोजियन्स ने सती जाने से बचाया था उसी औरत द्वारा डिरिजियो पर बलात्कार करने का आरोप लगवाया जाता है। अंततः डिरिजियो अंधा होकर भूखा-प्यासा मर जाता है। फिल्म का सर्वाधिक मार्मिक दृश्य वह है जहाँ डिरिजियो मृत्युशय्या पर पड़ा है। बाहर पुजारी, मौलवी, पादरी जश्न मना रहे हैं। उनके लिए डिरिजियो काफीर है। एक काफिर का दुनिया से बिदा होना उनके लिए तो जश्न की ही बात है।

वनवासी महिलाएं

• मन-प्राण बिंधे, पर चित्कार नहीं.....तरुण विजय

वनवासी महिला के जीवन को यदि शहरी मापदंड से देखा जाय तो लगेगा कि वह पर्याप्त सुखी है। न दहेज के लिए उसे जलाया जाता है, न पति की क्रूरता को विवश होकर उसे झेलना पड़ता है। लेकिन अधिकांश आदिवासी समाजों की रीढ़ न होने के कारण जीवन की विपदाओं का क्रूरतम प्रहार उन्हीं पर होता है। प्रसव के समय तक काम करना और संतानोत्पत्ति के दो दिन बाद पुनः सुबह से शाम तक काम में जुट जाना, बिमार होने पर अंधविश्वासों के कारण उसमें चुडेल का वास हो गया है, यह समझकर पीटा जाना और उचित चिकित्सा के अभाव में प्राण देना, अधिकतर उसीके हिस्से में आता है। लड़कियों की शादी छोटी उम्र में ही हो जाती है।

घर के कामकाज, पति की इच्छा-अपेक्षाओं की पूर्ति, बच्चों का लालन-पालन और भोजन के लिए इंधन, पानी और खाद्यान्न जुटाने में आदिवासी महिला सूर्योदय के पहले जागकर देर रात तक जुटी रहती है। वनदेवी जो अपने क्षेत्र की सम्राज्ञी थी, अब अपनी भूमि पर बड़े-बड़े भयावह नगर बस जाने के कारण अफसरों, ठेकेदारों और बाबुओं के घर बर्तन मांजने लगीं, जुठा उठाने लगीं। रांची, जमशेदपुर, भिलाई, बेलाडीला के वन क्षेत्रस्थ औद्योगिक नगरों में वनवासी महिलाओं के अंतहीन शोषण की दिल दहला देनेवाली गाथाएँ बराबर सुनने को मिलती हैं।

• श्रमिक महिलाएं

उदाहरण के तौर पर दिया जाता है, कोयला खदानों में और उसके आसपास काम कर रही, कोयलों के जीवन की त्रासदियों को-

‘ कोयला खदानों में सिसकती बिहार की कोयल ‘.....जसबीर काचावला

कोई 3000 साल पहले मनुष्य को इस काले खनिज का ज्ञान हुआ। भारत में 1774 वर्ष में पहली बार सीतारामपुर में छोटे-छोटे गड्ढे खोदकर इसे निकालने की कोशिश हुई। मेसर्स समर अँड हिटली ने 1775 में पहली बार यह उद्योग शुरू किया। लेकिन 1823 तक कुल 400 टन सालाना ही उत्पादन हुआ। समय के साथ औद्योगिक गतिविधियों में हुई वृद्धि के कारण इस खनिज की मांग बढ़ती गयी। धीरे-धीरे झरिया, बोकारो, गिरीडिह, करनपुरा, रामगढ़, डाल्टनगंज (सभी बिहार में) से लेकर बराकर, असनसोल, रानीगंज, कानोरा, उखड़ा (सब प. बंगाल) के विराट क्षेत्र में छोटी-बड़ी कोयला खदानें खुल गयीं। (सर्वे के अनुसार इस क्षेत्र में लगभग 7500 करोड़ टन कोयले का भंडार है।)

@ खदान खुलने का मतलब है, खेती लायक जमीन की खुदाई, अर्थात् परिवारों का उजड़ना और कृषि क्षेत्र में बेरोजगारी।

@ इन खदानों में शुरू से आदमी और औरतें काम करते आ रही हैं।

@ अंधेरी सुरंग में काम करते समय, उन्हें पता ही नहीं होता कि वेंटीलेशन के अभाव में वे अपनी मौत का इंतजाम कर रहे हैं।

@ इन खदानों में काम करते समय, खास तौर पर औरतें, दोहरी शोषण का शिकार होती हैं। एक तो श्रम के तौर पर और दूसरे यौनिक शोषण के तौर पर। इन औरतों को चुपचाप इसलिए रहना पड़ता है कि उसकी और साथ-साथ पति की रोजीरोटी न चली जाये। उनकी गरीबी का फायदा उठाकर मक्कारी और ठेकेदारी फलती-फुलती रही। साथ में यूनियनों बनीं। उसके नेता या कहो दादा, इनके द्वारा किया जा रहा शोषण अलग। इस तरह शोषण बहुआयामी हो गया। इस परिवेश से बढ़ावा मिला शराबखोरी को। जुए के अड्डे, चकले फैलने लगे। हर श्रमिक औरत वेश्या समझी जाने लगी, समाज द्वारा उनके श्रम का सम्मान करना तो दूर रहा। इस तरह वे निरुपाय होने के कारण आत्मसम्मान से वंचित रह जाती हैं।

इधर कुछ पिछड़ी जातियों में यह प्रथा है कि औरतें ही कमाकर लाती हैं और पुरुष निठल्ले शराब पिते रहते हैं। काम से लौटकर उन्हें अपने पति और बच्चों की सेवा भी करनी पड़ती है। ऐसी औरतों के जीवन की यंत्रणा समझना मुश्किल है। खान का अमानवीय श्रम, घर पर परिवार की देखरेख, मनोरंजन का अभाव, शिक्षा और सांस्कृतिक गतिविधियों से वंचित इन औरतों के पास गम गलत करने का रास्ता केवल एक ही रहता है और वह है शराबखोरी।

@ 1952 के माइन्स अँक्ट से औरत मजदूरों को थोड़ी राहत तो मिली, चूंकि सुरंग खानों में ले जाकर उनके साथ होनेवाला अत्याचार बंद हो गया लेकिन समाप्त नहीं हुआ, केवल सतह पर आ गया। उनकी तकलीफ महिला मजदूर होने से नहीं है, समाज के रवैये के कारण है।

@ काम करनेवाली इन औरतों के बच्चे अशिक्षा और अभाव में ही पलकर बड़े होते हैं। देखरेख के बिना वे कुपोषण और कुरीतियों में मरते रहते हैं।

@ राष्ट्रीयकरण के बाद कोयला उद्योग के विस्तार से नये अंचल प्रकाश में आये और वहाँ उत्खनन आरंभ हो गया।

@ गाँव के असंख्य भूमिहीन किसानों को विस्थापित होकर रोजगार की तलाश में निकलना पड़ता है।

• महिलाओं द्वारा जीवन का स्वतंत्रता से चयन

बद नहीं बदनाम पेशों का दर्द : अवधेश श्रीवास्तव

संघर्ष दर संघर्ष मंजिल की ओर बढ़ती नारी हर तरफ पुरुष के स्वागत में अपनी समुची संवेदना के साथ खड़ी मिल जाती है। मगर विडंबना ही है कि नारी जब स्वतंत्र रूप में कोई व्यवसाय चुनती है तो पुरुष प्रधान समाज की ओर से प्रायः अवहेलना और प्रतिस्पर्धा ही पाती है। पुरुष कमोबेश शोषक की मुद्रा अखितयार कर लेता है। प्रायः वे नारियाँ जो किसी क्षेत्र में, सफलता की ओर बढ़ी हैं, पारिवारिक सुख के लिए भटकती रही हैं। सफलता चूमती अधिकांश औरतों ने विवाह नहीं किये। अगर किये तो उनका पारिवारिक जीवन सुखी नहीं रहा। नर्स, मॉडल गर्ल्स, सेल्स गर्ल्स, सेक्रेटरी और सोशल गर्ल्स के रूप में कार्यरत महिलाओं को उपेक्षा ही नहीं घृणा ही मिली।

• लिंगभेद के आधार पर महिलाओं पर पाबंदियां

@ मिस्त्र मे पति को पत्नी की पिटाई करने का पूरा अधिकार था। उसके विरुद्ध कोई सुनवाई नहीं थी।

@ ईरान में हर औरत के लिए पर्दा अनिवार्य है। महिला न्यायाधिशों को हटा दिया गया है।

@ सऊदी अरब में अभी-अभी तक स्त्री को कार चलाने की इजाजत नहीं थी। वे रात में कहीं नहीं जा सकतीं। पुरुषों के साथ काम नहीं कर सकतीं। कार्यालय में व्यक्तिगत सचिव अलग कमरे में बैठती है और केवल फोन पर आदेश ले सकती है। अखबारों में महिलाओं के चित्र नहीं छापे जा सकते। ब्यूटी पार्लर्स बंद कर दिये गये हैं। तरणताल या नदी में पुरुषों के यहाँ तक कि पति के साथ नहाना वर्जित है। विदेश में उच्च शिक्षा वर्जित है। केस्पियन सागर तट पर किसी स्त्री को यदि पुरुष के साथ नहाते देख लिया जाये, तो उसे वहीं पर कोड़े लगाए जाते हैं।

ये सभी देश मुस्लिम हैं। यूरोपियन देशों के सागरतटों पर होनेवाली भीड़ से हम परिचित हैं। लेकिन वहाँ लाखों में बलात्कार होते हैं ऐसी बात नहीं। यह पाबंदियां भले ही औरतों पर हों लेकिन प्रत्यक्ष में यह अपने नागरिकों पर व्यक्त होनेवाला समाज का बला का अविश्वास है।

इस्लामी शरियत के अनुसार निकाह के मौकेपर लड़की की स्वीकृति जरूरी होती है। जबतक वह तीन बार 'हां' न बोले, तबतक निकाह नहीं होता। लेकिन तलाक के वक्त पत्नी की स्वीकृति जरूरी नहीं। पति तीन बार तलाक कहकर उसे छोड़ सकता है। तलाक के बाद पति तो फौरन दूसरी शादी कर सकता है। लेकिन पत्नी तीन माह बाद ही दूसरी शादी कर सकती है। तलाक के बाद पति को अगर अपनी भूल का अहसास हुआ, तब भी वह उसी पत्नी को दोबारा तुरन्त नहीं अपना सकता। पहले पति से पत्नी का निकाह तभी हो सकता है जब पत्नी किसी दूसरे व्यक्ति से निकाह करके उससे तलाक ले ले। शरियत के अनुसार ऐसी पत्नी का दूसरे पति के साथ कम से कम एक रात सेज पर सोना जरूरी है।

कोई शारीरिक यातनाएं देता है तो कोई अहिंसक (मानसिक)। ये शारीरिक से ज्यादा कष्टप्रद और असहनीय होती हैं। पढ़ी-लिखी पत्नियाँ भी इसी दौर से गुजरती हैं।

• नारी समाज के विरुद्ध अपराध---

दहेज-----

क्या हालात इतने खराब हो चुके हैं कि हम दहेज के नाम पर हमारे जवान बेटों को बेचने लगे हैं?.....या दहेज के नाम पर हमारी बहन-बेटियाँ अब अनब्याही ही रह जायेगीं।....यह एक व्यक्ति की समस्या नहीं, पूरे समाज की है। इसकी चपेट में कोई भी आ सकता है। इससे छुटकारा कैसे पाये?.....जांत-पांत का बंधन टूटे, आंतरजातीय विवाह हो।

आज के व्यक्ति, परिवार और सामाजिक मानसिकता को व्यक्त करती स्थिति---

मनुस्मृति में दहेज : जया रमेश

विवाह के आठ प्रकार----

- 1) ब्राह्म : वर-कन्या यथावत् ब्रह्मचर्य से पूर्ण, विद्वान, धार्मिक एवं सुशील हो। परस्पर प्रसन्नता से संपन्न विवाह।
- 2) दैव विवाह : यज्ञ करने में ऋत्विक् कर्म करते हुए, जमाता को अलंकारयुक्त कन्या देना।
- 3) आर्ण विवाह : वर से कुछ लेकर विवाह होना।
- 4) प्राजापत्य विवाह : दोनों का विवाह, धर्म की वृद्धि में होना।
- 5) असूर विवाह : कन्या के विवाह के समय कन्या का पिता वर को, वर के संबंधियों को या वर के पिता को यदि धनादि देता है। कन्या पक्ष से वर पक्ष जो भी भेंट या धन प्राप्त करता है वह दहेज कहलाता है। कन्यादान के निमित्त जो शुल्क ग्रहण किया जाता है, उसे निषेध माना गया है। बंधु-बांधवों को अपनी पत्नी के धन का ग्रहण नहीं करना चाहिए। विवाह के समय पत्नी को जो स्त्री (दासी), यान(वाहन), वस्त्र, आभूषण, प्रदर्शनार्थ जो भी वस्तु मिले उसपर पति, पति के पिता, माता, बंधु-बांधवों का कोई अधिकार नहीं होता। जो ऐसा करते हैं वे नर्क के अधिकारी हैं।
- 6) गांधर्व विवाह.....7) राक्षस विवाह.....8) पैशाचिक विवाह

- बलात्कार

@ हमारे देश में अक्सर तो बदनामी के डर से बलात्कार का मामला दर्ज ही नहीं करवाया जाता। मुश्किल से करवाया भी गया तो अपराधी को सजा होने का प्रतिशत बहुत कम है। कानूनी दावपेंचों में अपराधी कहीं न कहीं से बचने का रास्ता निकाल ही लेता है। लेकिन अन्य देशों में स्थिति इतनी लचिली नहीं है----

@ फ्रांस में हुए एक सर्वेक्षण के अनुसार सन् 1979 में एक तो बलात्कार के केवल 1700 मामले दर्ज हुए। उनमें से 435 अपराधियों को दंड हुआ। उन्हें पांच से दस साल तक की सजाएं हुईं।

@ इंग्लैंड में 1981 में सामने आये 1600 मुकदमों में से 300 को सजा हुई, दो से सात साल तक।

@ रूस में इस अपराध के लिए 15 साल तक की सजा दी जाती है।

@ अमेरिका में 25 साल तक की सजाएं सुनायी जा चुकी हैं।

@ डेनमार्क में तो कानून इतना सख्त है कि सजा के तौर पर अपराधी को नपुंसक तक बना दिया जाता है।

वैसे तो भारतीय नारियों को जब ऐसे दंड के बारे में पूछा गया तो भिन्न-भिन्न सुझाव मिले खास करके युवतियों से।

लेकिन महत्वपूर्ण और सकारात्मक सुझाव है.....महेश दर्पण का

@ बलात्कार की शिकार हुई स्त्री के प्रति दया न जतलाएं, सहानुभूति भी प्रकट न करें, करुणा की भीख न दें। बस उसे हेय न समझें। जीवन के प्रति उसका उत्साह बनाये रखें, चूंकि दोषी वह नहीं कोई और है।

@ बलात्कार के कारण अगर कोई स्त्री माँ बनती है तो बलात्कारी की संपत्ति का एक हिस्सा उस संतति के नाम कर दिया जाये। अगर बलात्कारी के पास संपत्ति नहीं है तो उसकी सजा बढ़ा दी जाये।

@ अब तक की कानूनी प्रक्रिया कुछ ऐसी है, जिसमें स्त्री को सिद्ध करना पड़ता है कि बलात्कार हुआ है। यह प्रक्रिया कुछ ऐसी बनानी चाहिए, जिसमें स्त्री को महज प्रतिपक्ष के बचाव के लिये पूछे जा रहे निर्लज्ज सवाल के जबाब न देना पड़े।

@ बलात्कार वास्तव में स्त्री के दिलों-दिमाग को झन्ना देनेवाली ऐसी बर्बरता है, जिसके कारण वह जीवन भर पागलपन या निमपागलपन की यातना झेलने को भी मजबूर हो सकती है, चूंकि स्त्री केवल बलात्कार की ही शिकार नहीं बल्कि बहिष्कृत भी हो जाती है। पुरुष उसे अपनाता नहीं और समाज उसे अछूत आंखों से देखता है। बलात्कार अपने आप में किसी की मानसिक हत्या है, बल्कि हत्या से भी भयंकर है। यह एक स्त्री को एक चलती फिरती लाश बनकर जिन्दगी ढोने के लिए मजबूर कर देता है। स्त्री अगर गर्भवती हो जाये, तो मामला और अधिक गंभीर हो जाता है। जिन्दगी एक ऐसी पीड़ा बन जाती है जिसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता।

• बंदिनियों : कैदी महिलाएं :

@ रोमन लोग सजायाफ्ता बंदिनियों के वक्ष काट लेते थे और उनके मरने तक रक्तस्राव होने देते थे।

@ प्राचीन रूस में बंदिनियों के सिर खौलते पानी के देगची में डाल देते थे और उन्हें मरने के लिए छोड़ देते थे।

@ प्राचीन चीन में बंदिनियों को नग्न करके, किसी सार्वजनिक स्थान पर एक टांग से लटका देते थे और राह चलते लोगों को उन मृत्योन्मुख बंदिनियों को हर संभव यातना पहुंचाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था।

@ वस्तुतः विश्व इतिहास साक्षी है कि बीसवीं सदी के पहले बंदिनियों पर सबसे अधिक अत्याचार धर्म के नाम पर किये गये तो आजकल राजनीति के नाम पर किये जाते हैं। देश, काल, जाति और विरोधियों की सहनशक्ति के अनुरूप यातना के रूप बदलते रहे हैं—पर उनका ध्येय सदा एक ही रहा है—आतंक। ऐसा वातावरण तैयार करना, जिसमें विरोधी या तो समाप्त हो जाये, या भविष्य में विरोध करने के लायक ही न रहे।

तथाकथित नक्सलवादी बंदिनियों के साथ प. बंगाल तथा अन्य राज्यों की पुलिस आज के जमाने में भी दुर्भाग्य से ऐसे ही तरीके अपनाये हैं। मेरी टायलर नामक एक ब्रिटिश अध्यापिका को भारतीय पुलिस ने लगातार पांच वर्षों तक बिना कोई मुकदमा चलाये जेल में रखा और अमानुष यंत्रणाएं पहुँचायीं। कलकत्ता पुलिस के मुख्यालय में 1975 में नक्सली बंदिनियों को क्रूरतम पीड़ा पहुंचाने के लिए एक विशेष शाखा खोली गयी थी। इस शाखा से सम्बद्ध एक इन्सपेक्टर को अपनी जलती हुई सिगार से नक्सली तरुणियों के वक्षों के बीच के भागों को दागने में बड़ा सुख मिलता था। एक तरुणी को तो उसने ऐसे नृशंस दागों की माला ही पहनायी थी। नक्सली युवतियों पर नृशंस अत्याचार करने के लिए एक और खौफनाक तरीका भी अपनाया जाता था। उनके भगों या गुदाओं में रबर के रूलर घुसा कर मथा जाता था। कलकत्ता में एक युवती को नक्सली होने के संशय में गिरफ्तार किया गया। वह कभी एम.एस.सी. की छात्रा थी। उसपर कई हट्टेकट्टे कान्स्टेबल, उसके बॉयफ्रेंड के सामने लगातार बलात्कार करते रहें। उसने बाद में एक पत्रकार को बताया कि मुझपर इतने पुलिसों द्वारा और इतनी बार बलात्कार किया गया कि मैं किसी संभ्रांत परिवार में शादी करने लायक नहीं रही और मुझे मजबूरन वेश्या बनना पड़ा। अब आप को ही सोचना पड़ेगा कि अधिक हिंसक कौन?

नारी संरक्षण के नाम पर चलाये जानेवाले नारी निकेतन भी नारी यातनागृहों से कम नहीं हैं।

@ कैदी पतियों की पत्नियां

जिन पत्नियों के पति जेल में सजा काट रहे हैं, वे उनकी अनुपस्थिति में उभरनेवाले संकटों का सामना कैसे करें? यह एक ऐसी समस्या है जिसका प्रत्येक सरकार इतना ही नहीं तो समाज को भी विचार करना चाहिए चूंकि इस दरम्यान इन महिलाओं को आर्थिक तथा अन्य यातनाओं का सामना करना पड़ता है। यदि पति अपराधी है तो पति के साथ-साथ सजा पूरे परिवार को क्यों? सरकारें इसपर जब

विचार करेंगी तब करें, लेकिन ब्रिटेन में कैदियों की पत्नियों ने एक यूनियन बना ली है—प्रिजनर्स वाइफ यूनियन।

@ देश में लगभग 36000 कारागृह हैं। समाज कल्याण विभाग के एक सर्वे के अनुसार इनमें डेढ़ लाख महिला कैदी हैं। जेल में पुरुष कैदियों से मिलना जितना आसान है उतना महिला कैदियों से मिलना नहीं। इसका कारण दिया जाता है कि संबंधियों से मिलने के बाद महिला कैदी भावुक, बेचैन और असाधारण तौर पर मानसिक तनावों से घिर जाती हैं।

युद्ध और नारी यातनाएं

@ इतिहास : युद्ध के दौरान प्रायः सिपाही के हाथ में बंदूक होती है और मन में बलात्कार का इरादा। अब हालांकि आंतरराष्ट्रीय नियमावली के अनुसार बलात्कार की सजा, उम्र कैद और फांसी तक है लेकिन वास्तव में स्थिति बदली ऐसा नहीं कहा जा सकता। बलात्कार युद्ध का अपरिहार्य परिणाम है। लेकिन कितने बलात्कारी सैनिकों को यह सजा मिली है। इतिहास में केवल एक नाम मिलता है अमेरिकी सैनिक थोमस ब्राउन।

@ पहले विश्व युद्ध के दरम्यान जर्मन सैनिकों द्वारा किये गये अत्याचारों के वर्णन मिलते हैं आर्नेल्ड की किताब ' जर्मन अट्रॉसिटीज : देयर नेचर अंड फिलॉसफी ' में। जर्मनी द्वारा बेल्जियम पर किये गये आक्रमण के बाद वहाँ किये गये बलात्कारों के बाद स्त्रियों के गुप्तांगों में संगिनें धोपी गयीं, वक्ष काट दिये गये।

@ दूसरे महायुद्ध के दौरान (1943) लिखी गयी थी ' पोलिश यहूदी जाति की काली किताब '। इसी युद्ध के दौरान अमेरिकी, रूसी सैनिकों द्वारा अपने दुश्मन जाति की स्त्रियों पर किये गये अपराध भी कम जघन्य नहीं हैं।

@ 1937 में जापानी सेना ने चीन की राजधानी नानकिंग जितकर जो बलात्कार किये उसका वर्णन ' नानकिंग का बलात्कार ' पुस्तक में है।

@ बांग्लादेश के युद्ध के दौरान की गयी बलात्कार की घटनाएँ कम दिल दहला देनेवाली नहीं हैं। पाकिस्तानी सैनिकों ने करीब दो लाख महिलाओं का बलात्कार किया। इनमें से अधिकतर या तो मानसिक रोग से पीड़ित हो गयीं या रति रोग से। कितनी ही स्त्रियों ने आत्महत्या कर ली। हजारों स्त्रियाँ गर्भवती हो गयीं। लेकिन उनमें ऐसे बच्चों को न जन्म देने की इच्छा थी न पालने का उत्साह। पाकिस्तानी सैनिकों ने उनसे जबरदस्ती वेश्यावृत्ति करायी। यह ध्यान देने लायक बात है कि इनमें 85% मुस्लिम थीं। पीड़ित महिलाओं के सामने ज्यादातर वेश्या बनने के अलावा और कोई विकल्प नहीं रहता।

@ “ लड़ाई में जहां सैनिक होंगे वहाँ बलात्कार और वेश्याएँ तो होंगी ही “ यह कथन है एक अमेरिकी उच्च सेनाधिकारी का। विएतनाम युद्ध में बड़ी बेरहमी से अमेरिकन सैनिकों ने इसे सिद्ध कर दिया।

@ युद्ध के दरम्यान जो बलात्कार होते हैं उनसे संबंधित कुछ प्रश्नों के उत्तर कर्नल गौतम शर्मा तथा मेजर जुगल किशोर ने दिये हैं---

युद्धग्रस्त क्षेत्रों में नारी जुल्मों की शिकार क्यों होती है?.....आदिकाल से ही मनोवैज्ञानिक धारणा रही है कि औरत आदमी की सम्पत्ति रही है। यह धारणा है असैनिक दायरे के लोगों में भी और सैनिक दायरे के लोगों की भी। (और युद्ध में विजय के बाद लूट इसे सैनिक व्यक्तिगत पुरस्कार मानता है।)(गौ.श.)

सेना की हर टुकड़ी नारी पर जुल्म नहीं करती। कमांडर-कमांडर में फर्क होता है। आर्मी-आर्मी में फर्क होता है। जिस टुकड़ी में जिस मानसिकता के लोग होंगे वैसा ही वे व्यवहार करेंगे (जु.कि.)

युद्ध में नारी यातना, बदला लेने की भावना के कारण होती है या उसपर बहादुरी का सिक्का जमाने के लिए?

न तो बदला लेने की भावना से और न बहादुरी जताने के लिये। इसका कारण सिर्फ यौन विकृति और उसकी पूर्ति का अवसर ही है। जिसके चलते पुरुष प्रायः अपना अहं भी संतुष्ट करता रहता है। मेरे विचार से लम्बे समय तक परिवार से दूर रहने के कारण तथा युद्ध के वातावरण से उन्मुक्त होकर तनाव दूर करने के लिए। जहाँतक बदला लेने का सवाल है अच्छी सेनाएं असैनिक लोगों से बदला लेने का इरादा नहीं रखतीं (गौ.श.)।

(जहाँतक हिटलर और उसकी सेना का सवाल है उनके लिए एक कैदी की या शत्रु व्यक्ति की अहमियत गिनी पीग से ज्यादा नहीं थी। उसके डॉक्टर अपने प्रयोगों के लिए जानवरों की जगह इन कैदियों का उपयोग करते थे।)

@ युद्धकाल : वेश्याओं की फसल का मौसम--- युद्धकाल में वेश्याओं की फसल लहलहा उठती है और विशाल क्षेत्र चकले में बदल जाते हैं। जबसे युद्ध हो रहे हैं तबसे यही हाल है।

धर्म के नाम पर जितने भी युद्ध हुए उनमें भी विजेताओं ने विजित प्रदेशों की स्त्रियों के साथ वेश्याओं जैसा व्यवहार करना अपना धार्मिक कर्तव्य समझा। इससे बड़े अधर्म की बात सोची भी नहीं जा सकती।

@ सन 1847 में कराची : सिंध पर रिचर्ड बर्टन की रिपोर्ट के अनुसार --- छावनी के पास पुरुष वेश्यालयों को भी स्वीकारा गया है। छावनी की नजदिक की बस्तियों में कई बार स्त्रियों की पूर्ति कम पड़ती है। छावनी के पास कई बार खानाबदोश भी डेरे जमा लेते हैं, जहाँ चोरी-छिपे देह-व्यापार चलता है।

सुना गया है, ब्रिटिश काल में किसी अंग्रेज़ के लड़की की मृत्यु हो गयी। किसी कारण वह अफसर लाश को घर न ले जा सका और वह क्वार्टर गार्ड में रखी रही। सुबह पता चला कि मृत लड़की के साथ कई सैनिकों ने बलात्कार किया।

@ जलाया अपना आशियाना, सजाकर गैर की महफिल.....बाला दुबे

नर्स का कोई शत्रु नहीं होता। उसके सब मित्र हैं। वह सबकी माँ है। इस संदेश के प्रति समर्पित थीं ईडिथ कबैल '। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान दया और ममता की मूर्ति बनी वह युद्ध के मैदान से घायलों को, सहायता के लिए सुरक्षित स्थानों तक पहुँचाती रही। पर उसे क्या मिला? यातनाएं, मौत और.....

उसने कबूल कर लिया, ' मैंने अबतक 200 घायल सैनिकों की रक्षा की है। उन्हें डच बॉर्डर के पार सुरक्षित पहुँचा दिया है। मैंने कोई बुरा काम नहीं किया। मेरा धर्म सेवा है। मैंने मनुष्य की सेवा ही की है।' वह चिल्लाती रही (बुरा काम यह था कि जिसकी उसने मदद की वे शत्रु सैनिक थे)।..... नौ सिपाहियों के हाथों में मृत्यु उगलनेवाली बंदूकें थीं और यह भी एक संयोग था कि इन नौ सिपाहियों में वे दो जर्मन सैनिक भी थे जिन्हें कभी ईडिथ ने मरने से बचाया था। अपनी आंखों में आंसु थामे और उस रहस्य को सीने में दबाएँ, उन्होंने एकदूसरे की तरफ बड़ी दयनीय दृष्टि से देखा

फायरिंग स्वाड को इशारा मिलते ही नौ बंदूकें दनदना उठीं और ईडिथ कटे पेड की तरह गिर पड़ी। जब उसकी लाश उठाई गयी तब उसके दिल के आसपास सात छेद हुए थे। उसी दिल के आसपास जिसमें उसने मानवता की लौ जलाये रखी थी। उसके हाथों जीवन पायें दोनों जर्मन सैनिकों की गोलियां ईडिथ के सीने में नहीं, पीछे की दीवार में लगी थीं।

(12-10-1915 को ईडिथ को जर्मन सेना के अदालत ने मृत्युदंड दिया। उसे फायरिंग स्वाड का सामना करना होगा)

देह-व्यापार या वेश्या व्यवसाय

सारिका ने इस संदर्भ में पांच विशेषांक निकाले थे। संपादकीय से कुछ मुद्दे---

देह व्यापार दुनिया का सबसे पुराना व्यापार है। संभवतः मानव सभ्यता के विकास के साथ इसका भी विकास हुआ होगा। यह धंधा आदम भूख की प्रतिक्रिया का प्रतीक है। भले ही वैदिक काल से लेकर तो आज तक इसका स्वरूप, स्तर और गुणधर्म बदले हो। इसके प्रति ' मांसल आकर्षण ' एक सामाजिक समस्या के रूप में ज्यों का त्यों है। इसी आकर्षण ने इस व्यापार का अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विस्तार किया है। बहुत से देशों ने इसे सामाजिक और वैधानिक मान्यता भी दी है। अक्सर देखा गया है कि जहां भी यह मान्यता समाप्त की गयी वहाँ यह अंधेरो का सैलाब बनकर अधिक फैलता गया। इससे निपटने के अलग-अलग देशों में अनेक उपाय किये गये लेकिन वे अधिकतर असफल रहे। जबसे इतिहास (जन श्रुतियाँ, पुराणों या लिखित इतिहास के रूप में) मिलता है, तभी से तीन समांतर शक्तियाँ भी मिलती हैं—राजशक्ति या सत्ताशक्ति, धनशक्ति और रूपशक्ति। कई जगह इनका नगरपति या राजा, नगरसेठ और नगरवधु के रूप में उल्लेख मिलता है। ये अपनी-अपनी जगह एक-दूसरे के पूरक माने गये हैं।

बौद्धिक, पौराणिक और दैवत समाज में वेश्याएं या गणिकाएं कलात्मक आनंद की सृष्टि का माध्यम हुआ करती थीं। बाद में यही कलात्मक आनंद, देह विनिमय की प्रक्रिया से गुजरकर देह व्यापार

तक पहुंच गया। कौटिल्य के समय तक आते-आते सुंदरी-गणिकाएं व्यापक स्तर पर राजनीतिक इस्तेमाल की चीज बन गयीं। बालगणिकाओं पर रासायनिक प्रयोग करके, एक महाअस्त्र के रूप में विषकन्याओं की सृष्टि की जाने लगी। ऐसा नहीं है कि दैवत समाज ने इनका राजनैतिक इस्तेमाल न किया हो। पुराण ऐसी घटनाओं (गाथाओं) से भरे पड़े हैं। इंद्र ने अपनी राजसत्ता डगमगाती देखकर, रंभा, मेनका, आदि स्वर-वेश्याओं का राजनीतिक उपयोग किया तथा दूसरों के यश के प्रति असहिष्णु होकर उनके चरित्र हनन का माध्यम बनाया। राजपूत काल में ये नारियां सामन्ती शान की प्रतीक बन गयीं और इनके लिए लड़ाइयां तक लड़ी गयीं। इन राजभोग्या वेश्याओं की बात अलग है। ये अत्याधिक संपन्न होती थीं और इनकी शक्ति राजशक्ति के समांतर होती थी।

लेकिन इस वृत्ति के मूल में सिर्फ पैसा और शरीर की भूख/प्यास ही नहीं है बल्कि एक प्रछन्न घृणा भी है जो पुरुष प्रधान समाज अत्याचार, बहिष्कार और अस्विकार के कारण किसी आदीम नारी के मन में पैदा हुई होगी या आज भी होती है या हो सकती है।

युद्धों ने भी वेश्यावृत्ति को फैलाने में काफी मदद दी है। इसके साथ केवल वही औरतें नहीं जुड़ीं जो सैनिकों के मनोरंजन का साधन होती थीं। युद्धों के बाद की तथा व्यापक जनसंहार की स्थितियों ने भी इस व्यापार के लिए औरतों को मजबूर किया। हम इस स्थिति के लिए महाभारत का उदाहरण ले सकते हैं। जिस युद्ध में अठारह अक्षौहिणी सेना मारी गयी, उस युद्ध में संख्या के हिसाब से लगभग अठारह अक्षौहिणी महिलाएं विधवा हुईं होगीं और उनमें तरुणियों की संख्या ही अधिक होगी। आप कल्पना कर सकते हैं कि पारिवारिक और प्रशासनिक अथवा राजकीय सुरक्षा के अभाव में उन लाखों-करोड़ों महिलाओं की स्थिति क्या हुई होगी। विधवा विवाह को सामाजिक मान्यता न मिलने के कारण भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष व्यभिचार और वेश्यावृत्ति को बढ़ावा ही मिला होगा।

एक वक्त था जब बंगाल की बालविधवाएं ' काशी प्रवास ' के लिए मजबूर कर दी जाती थीं और उनकी वृत्ति तीर्थयात्रियों के मनोरंजन तक ही सीमित रह जाती थी।

अक्सर कहा जाता है कि वेश्यावृत्ति एक सामन्ती प्रथा है। इसीने औद्योगिकता के विद्यमान काल में कॉलगर्ल और कॅबरे डान्सर का रूप ले लिया है। आज इसका रूप अत्यंत विकृत हो गया है। समाज में चिंतकों तथा साहित्यकारों ने इस विषय पर गहन विचार किया है। इसका परिणाम है इन अंकों में चयनित कहानियाँ। आज सबसे बड़ी समस्या यह है कि कैसे इन रूहों को, इन सड़ांधभरे अंधेरों की कैद से मुक्त किया जाय? कुछ साहित्यिक अक्सर यह कहकर छुट्टी पा लेना चाहते हैं कि हमारी सभ्यता और संस्कृति तथा पारिवारिक स्थितियाँ इस विषय पर लेखन को घटिया दर्जे का और अनावश्यक मानती हैं।

लेकिन यह दृष्टि केवल पलायनवादी है। हमारा समाज इन भटकी हुई लड़कियों और औरतों के लिए अपने दिल और घर के दरवाजे खुले नहीं रखेगा, तथाकथित पतित औरतों के मन में पनपी हुई हीन भावना दूर करने की कोशिश नहीं करेगा, उन्हें अपने बीच सम्मानपूर्वक स्वीकृति नहीं देगा, तब तक इस समस्या का कोई कारगर हल नहीं निकल सकेगा। हालाँकि हमें आर्थिक स्तर पर भी कुछ महत्वपूर्ण कार्य

करने होंगे। लेकिन भावनात्मक और सौहार्द के स्तर पर किये गये कार्य ही अधिक प्रभावी और स्थायी हो सकेंगे। जैनेन्द्र के शब्द हैं कि, “ छिपाने से गंध बढेगी, धूप लगने दिजिये, षह सुख जायेगी। “

• **प्रसिद्ध कथाकार आबिद सुरती का वेश्या-व्यवसाय पर विस्तृत सर्वेक्षण :**

@ वेश्यावृत्ति के विश्वव्यापी तंत्र में वेश्याओं का वहीं स्थान है, जो कारखाने में किसी मजदूर का। वह उस पूरे तंत्र का मुख्य भाग होते हुए भी भरपूर शोषण की शिकार है।

@ समाज को स्वच्छ रखने के लिए इस कुडे की उतनी ही आवश्यकता है जितनी एक शहर में गटर की। फिर भी हम सुलझे हुए दिमाग यह कभी नहीं चाहेंगे कि किसी युवती को इस दलदल में फंसाया जाय। तब प्रश्न उठता है कि इस सड़ांध को फैलने से रोकने के लिए हम क्या कर सकते हैं?

@ सदियों से पैगम्बर, महात्मा और भगवान इस पाप को चुनौती देने का काम करते आ रहे हैं, लेकिन परिणाम?

@ पुराने टेस्टामेंट के अनुसार ‘ मोजेज ’ ने वेश्याओं को धंधा करने की अनुमति दी थी। पर शर्त यह थी कि वेश्या स्वदेशी न हो। ये विदेशी स्त्रियाँ मोआब और एडेन से आयी हुई थीं। शहर के बाहर भभकेदार तंबुओं में अपना धंधा चलाती थीं। शायद इसे हम विश्व की सर्वप्रथम ‘ रेड लाईट डिस्ट्रिक्ट ’ कह सकते हैं।

@ शुरुआती दौर में धर्म के कारण स्त्रियों का एक ऐसा समाज पैदा हुआ जो किसी भी अजनबी को अपनी देह सौंपकर अपने आपको भाग्यशाली समझती थीं। वे मंदिरों में अपना घर बसाती थीं और लोग उन्हें अपनी बेटी, या फिर पुजारिन या देवदासी के रूप में पहचानते थे। उस दौर के पुरुषों में भी कुछ ऐसा विश्वास था कि इन देवदासियों के साथ हमबिस्तर होने से पुण्य मिलता है। लेकिन क्या इन देवदासियों को वेश्या कहा जा सकता है? वेश्या की परिभाषा कुछ और है। देवदासी का उद्देश्य कुछ और था। वे किसी से धन की आशा नहीं रखती थीं। वे भगवान से ब्याही होती थीं और अपना धर्म निभाती थीं। उनका समाज में सम्मान था।

प्राचीन बाबिलॉन में भी कुछ इसी तरह की प्रथा थी। विवाह के पहले हर एक युवती को कमर में रस्सी बांधकर मंदिर में बैठना पड़ता था। वे तबतक बैठी रहतीं थीं जबतक कोई अजनबी आकर युवती के बंधन न खोले और उसे भोगे। बाद में युवती किसी भी पुरुष से विवाह कर सकती थी।

यह भी तो सच है कि प्राचीन कानून के अनुसार युवतियाँ विवाह की पहली रात अपने पति के साथ न बिताकर किसी धर्मगुरु या मंदिर के पुजारी के साथ बिताती थीं। यह प्रथा भारत में ही नहीं तो दुनिया के कई देशों में प्रचलित थी। बाद में ये सारी प्रथाएं अपना रूप बदलती गयीं। कल की ईश्वरपरस्त देवदासी और आज की कामाठीपुरा की वेश्या इनमें जमीन-आसमान का फर्क आ गया है। पुण्य, पाप में बदल गया। पाप की गहराई में समाज डूबता चला गया। लेकिन प्राचीन रोम इसमें जितना डूबा हुआ था उतना शायद ही कोई और देश हो। रोम के शहेनशाहों ने जब सेक्स को व्यवसाय का रूप दिया तो रोम के सार्वजनिक स्नानागार के साथ मंदिर भी वेश्यालय बन गये। यही कारण था कि ईसा का धर्म अपना सिर उठाता चला गया और

जब ईसा के धर्म ने भी कुछ विचित्र रूप धारण किया तो इस्लाम उभर आया। इस्लाम ने वेश्यागमन रोकने के लिए कई प्रयास किये। कहा जाता है कि इन्हीं प्रयासांतर्गत मुसलमानों को चार-चार बिबियां रखने की इजाजत दी गयी थी। लेकिन शायद ही किसी धर्म में इतनी क्षमता है कि वह इस धंधे को रोक सके।

@ कुछ देशों में जैसे पोर्तुगाल की कॉलोनियों में, धंधा करनेवाली हर औरत को पुलिस में अपना नाम रजिस्टर करवाना पड़ता है। इन कॉलोनियों में हमें केवल दो प्रकार की औरतें देखने को मिलती हैं। एक तो वे जो किसी आंटी के साये में, अड़्डे पर धंधा करती हैं और दूसरी वे जो अपने ही घर में स्वतंत्र रहकर धंधा चलाती हैं। लेकिन इन दोनों के लिए ' मेडिकल इन्स्पेक्शन बुक, कार की लायसन की तरह, अपने साथ रखना आवश्यक है। ग्राहक चाहे तो हमबिस्तर होने से पहले लड़की से यह बुक मांगकर देख सकता है। ग्राहकों को बिमारी से बचाने का यह उत्तम तरीका है। हर हफ्ते शारीरिक जांच भी आवश्यक होती है। किसी बिमारी की स्थिति में उसे किसी अस्पताल में भरती कर दिया जाता है।

@ किसी जमाने में हमारे महाराजाओं के कुंवर, उन तवायफों के घर में रहकर शिक्षा प्राप्त करते थे। जीवन-कला के कई अमूल्य गुर वे वहीं सिखते थे चूंकि उस दौर की ये तवायफें या गणिकाएं जीवन-कला के अभ्यास में पारंगत समझी जाती थीं। ये आज के भारत में कहां मिलेंगी?

@ फ्रांस में मैडम मार्थ रिचर्ड ने सर्वप्रथम वेश्यावृत्ति के विरुद्ध आवाज़ उठायी। उनके अथक प्रयासों के परिणाम स्वरूप ही 07-10-1954 के दिन फ्रांस सरकार ने वेश्याओं के अड़्डों पर प्रतिबंध लगा दिया। 14-07-1958 को एक जनरल की विधवा मैडम लीगांड सालको ने, ' स्त्रियों की विश्व कौंसिल ' में भाषण देते हुए यह प्रश्न उठाया कि फ्रांस में प्रतिवर्ष 5000 युवतियाँ कहाँ गुम हो जाती हैं? यह समस्या तो पूरे विश्व की है।

• कामेच्छा पर जबरन पाबंदी :

कुछ सदी पहले चर्च ने स्त्री समागम को पाप घोषित किया था। तो लोगों ने भी अंधश्रद्धा के कारण, इससे दूर रहने के लिए कई-कई उपाय करना शुरू किया। औरतों ने श्रृंगार करना छोड़ दिया, यहाँतक कि नहाना छोड़ दिया। पति-पत्नी ने एक बिस्तर पर सोना ही नहीं छोड़ा तो तलाक ले लिये। परिवार टूट गये।

इस जुर्म के लिए चर्च ने कई लोगों को जिन्दा जला दिया।

लेकिन प्रकृति के विरुद्ध चलाये जा रहे इन प्रयासों ने इन लोगों में मानसिक कुंठाओं को जन्म दिया। किसी चीज को पाप घोषित करने से दुनिया से पाप दूर नहीं होता या न वह चीज प्रकृति के विरुद्ध हो जाती है। चर्च ने मनुष्य को फरिश्ता बनाना चाहा तो वे ही लोग दरिंदे बनते चले गये। इतने सारे लोगों से प्रकृति के विरुद्ध आचरण करवाना आसान नहीं था। साधारण तो छोड़ दिजिये तथाकथित बड़े-बड़े महात्माओं का आचरण आज हम देखते ही हैं।

गणिकाएं

मत्स्यपुराण में एक कथा आती है, जिसे गणिकावृत्ति की जन्मकथा माना जाता है। इस कथा के अनुसार एक बार ब्रह्मा ने शिव से पुछा कि क्या उन्हें गणिकाओं के आचार-व्यवहार से संबंधित नियमों का पता है? शिव ने उन्हें भगवान कृष्ण की सोलह हजार रानियों की एक कथा सुनायी। इसके अनुसार कृष्ण ने एक बार देखा कि मद्यपान के पश्चात, शांब नामक एक यात्री को वे अपनी ओर आकृष्ट करने का प्रयास कर रही हैं। कृष्ण ने उन्हें शाप दिया कि लुटेरे उनके साथ बलात्कार करेंगे और इसके बाद उन्हें दासियों सा जीवन व्यतीत करना पड़ेगा। अंत में सालभ्य नामक ऋषि उन्हें इस दासता से मुक्ति दिलायेगा। जब दासी और वेश्या जैसा जीवन बिताने को मजबूर इन भूतपूर्व रानियों की भेंट ऋषि सालभ्य से हुई तो उन्होंने उनसे अन्य प्रश्नों के साथ यह भी पुछा कि उन जैसी दासी-वेश्याओं को कैसा आचरण करना चाहिए। ऋषि ने उनसे कहा, “ शुभ दिवसों पर ब्राह्मणों को अन्न, स्वर्ण तथा गायों का दान करती रहो। हर रविवार को सोलह श्रृंगार करके, गुप्तांगों सहित सब अंगों का स्पर्श करते हुए कामदेव की पूजा करो। यह क्रम तेरह महीनों तक चलते रहना चाहिए। अंतिम महीने में, ब्राह्मणों को बुलाकर उनकी पूजा करते हुए कहो, “ हे, विष्णु मुझे काम और केशव में कोई अंतर दिखाई नहीं पड़ता, क्योंकि आप भी कभी कमला का साथ नहीं छोड़ते। पूजा के बाद कामदेव की सोने की प्रतिमा ब्राह्मणों को भेंट करो। इस पूजा के बाद किसी भी रविवार को कोई भी ब्राह्मण आकर उस दीक्षित गणिका का उपभोग कर सकता था। प्रायः ये ब्राह्मण अपनी प्रिय गणिका का उपयोग अपने विरोधियों की जासूसी करने के लिए करते थे।

गुप्तकाल में रचित ‘ बृहत् कथा श्लोक संग्रह ‘ नामक एक पुस्तक में, गणिकाओं की उत्पत्ति संबंध में यह कथा बतायी गयी है---सम्राट भरत ने एक बार सागर की सब पुत्रियों का अपहरण कर उनके साथ विवाह कर लिया। लेकिन बाद में उन्होंने उन सबका परित्याग कर दिया और एक पत्नीव्रत का पालन करने लगे। फिर उन्होंने उन परित्यक्त स्त्रियाँ को आठ गणों में विभाजित कर दिया, जिसके कारण वे गणिकाएं कहलायीं। सर्वोच्च गणवाली स्त्रियों को ‘ गणिकाओं ‘ की उपाधि मिली तो निम्नतम गणवाली स्त्रियों को ‘ कुंभदासी ‘ की। (इन सारी बातों में, आगे जो जीवन गणिकाओं के हिस्से में आया, उसमें उनका क्या दोष था?) वैदिक काल में गणिकाओं का मुख्य कार्य राजाओं तथा धनी व्यक्तियों को यौन सुख प्रदान करना था। लेकिन उससे पहले भी रूपवती स्त्रियों का उपयोग ऋषि-मुनियों को तप से डिगाने, तथा राजाओं से उनकी सत्ता हथियाने के लिए किया जाता रहा है। इसके अनगिनत उदाहरण हमारे तथाकथित पवित्र ग्रंथों में हैं। उदाहरण मेनका, उर्वशी आदि। और ये काम उनपर तत्कालीन पुरुष प्रधान समाज ने जबरदस्ती थोपे हुए ही थे।

लेकिन फिर भी वैदिक काल में गणिकाओं को समाज में कुछ तो सम्मान प्राप्त था। धार्मिक वृत्ति के अनेक विद्वान दासीपुत्र ऋषितुल्य समझे जाते थे।

सिंधु घाटी सभ्यता के काल में भी गणिकाएँ होती थीं, इसके कई प्रमाण उपलब्ध हैं। मोहनजोदड़ो में नृत्य करती हुई जिस नवयुवती की कांस्य मूर्ति उत्खनन में मिली थी, उसके बारे में, पुरातत्त्ववेत्ताओं का विश्वास है कि वह एक पवित्र गणिका (देवदासी) की मूर्ति है।

@ प्राचीन काल में गणिका बनना कितना मुश्किल था?.....राजन पाराशर

‘ कामसूत्र ’ के ‘ विद्यासमुद्देश ’ नामक दूसरे अध्याय में चौसठ कलाओं का वर्णन मिलता है। इनमें चौसठी कर्माश्रयी, बीच द्यूताश्रयी और शेष रति व्यापार से संबद्ध हैं। इन सभी कलाओं में गणिकाओं ने पारंगत होना आवश्यक था---

- 1) गायन 2) वाद्य 3) नृत्य 4) चित्रलेखन 5) विशेषच्छेद्य (कटाव से चित्रांकन)
- 6) तंडुल कुसुमावली विकार (चावल आदि से चौक पूरना) 7) पुष्पास्तरण (पुष्प रचना)
- 8) रंजन कला (दांत, कपड़े और अंगों को संवारना) 9) गणिभूमिका कर्म (मंच तैयारी)
- 10) शायन रचन (सेज सजाना) 11) उदकवादय (जलतरंग आदि) 12) उदकाघात (जल क्रिड़ाएं) 13) मित्र योग (टोना-टोटका आदि) 14) माल्यथन (माला गुंथना)
- 15) कापीड योजन (फूल गुंथना) 16) नेपथ्य प्रयोग (आज का फॅन्सी ड्रेस)
- 17) कर्णपत्र भंग (दांत, शंख आदि से वेश रचना) 18) गंध युक्ति (सुगंध लगाने विधियाँ)
- 19) भूषण योजन 20) एंद्रजाल (जादू के खेल) 21) कौंचमार (कुचुमार ऋषि द्वारा बताए गए सुभंगकरण) 22) हस्त लाघव (हाथ की सफाई) 23) भोजक पानक (पाक शास्त्र)
- 24) सूचिवान कर्म(सूई, सिलाई) 25) सूत्र क्रिडा (डोरों का खेल) 26) वीणा-डमरू वादन
- 27) प्रहेलिका (पहेलियाँ बुझाना) 28 प्रतिमाला (अंताक्षरी आदि) 29) दुर्याचक योग : पद्य रचना जो उच्चारण में कठिन हो) 30) पुस्तक वाचन 31) नाटक-आख्यायिका दर्शन
- 32) काव्य समस्या पूर्ति 33) वेत्रवान (बेंत की बुनाई) 34) लक्षकर्म 35) तक्षण (बढई का काम)
- 36) वास्तुविद्या 37) रुप्य-रत्न परीक्षा 38) धातुवाद (धातु शोधन) 39) मणिरागाकर ज्ञान
- 40) वृक्षायुर्वेद दयोग (वृक्ष ज्ञान) 41) मेश कुक्कुटलावक युद्ध विधि 42) शुक-सारिका प्रलापण 43) मर्दन कौशल 44) अक्षर मुष्टिका कथन (सांकेतिक भाषा) 45) स्लेच्छित (गूढ़ संभाषण) 46) देश-भाषा विज्ञान 47) पुष्प शकटिका 48) निमित्त ज्ञान(शकून विचार)
- 49) यंत्र मात्रिका (यंत्र ज्ञान) 50) धारण मात्रिका (सुनकर धारण करना)
- 51) समपाठ्य (साथ पढ़ाना) 52) मानसी (आकृतियों में लिखे गए श्लोक पढ़ना)
- 53) काव्यक्रिया 54) अभिद्यानकोष(स्मरण करना) 55) छंदोज्ञान 56) क्रिया कल्प(रचना परीक्षा) 57)) छलित योग (ठग विद्या) 58) वस्त्रगोपन 59) द्युत विशेष (जुआ)
- 60) आकर्ष क्रिडा (पासे खेलना) 61) बाल क्रिडन 62) वैनयिकी (पशु साध लेना)
- 63) वैजयिकी (विजय दिलानेवाली विधाएं) 64) व्यायामिकी (व्यायाम, शिकार)

वेदों में गणिकाओं की श्रेणियां

गणिका, वारस्त्री, वारांगना, वाखाणी, वारविलासिनी, वारवधु, नर्वटी, क्षुद्रा, रूपाजीवा, शालंभाजिका, झर्झरा, शूला, भंडहासिनी, लज्जिका, वधुरा, कुंभा, कुंभदासी, कामरेखा, सामान्या, साधारण्या, पंव्यांगना, पाणांगना, भूजिश्या, भोग्या, स्मरविथिका, वृषली, कुलटा, पुंश्चली, युंगी आदि।

ब्राह्मवैवर्त पुराण : प्रकृति खंड : अध्याय 28 के अनुसार—

एक पुरुष से संबंध रखनेवाली-----पत्नी

दो पुरुषों कुलटा

तीन वृषली

चार.....पुंश्चली

पांच-छह.....वेश्या

सात-आठ..... युंगी

आठ से अधिक.....महावेश्या

कुट्टणी चरित्र-----

आठवीं सदी में, कश्मीर में कविवर दामोदर गुप्त ने वेश्या समाज को बड़े करीबी से देखा। वेश्या समाज की विसंगतियों ने उनके भावुक हृदय को भावविभोर कर दिया। इसपर उन्होंने ; कुट्टणी ' का रूप चित्रण किया ' कुट्टनीम तम ' । यह कुट्टणी मत का प्रतिपादक तथा कामसूत्र का एक शास्त्रीय ग्रंथ बन गया है, जो सांस्कृतिक मूल्यों से ओतप्रोत है।

इतिहास

ऋग्वेद में दासों और दासियों को दान और उपहार के तौर पर देने का उल्लेख मिलता है। दूसरे कबीले के लोगों को लड़ाई में मारकर उनकी स्त्रियों को दासियां बना लिया जाता था। इनको एक दूसरे को उपहार में भी दिया जाता था। राजा लोग अपने परिजनों और पुरोहितों को दासियों से भरे रथों के रथ दान देते थे। राजा त्रसदस्यु ने सौरभि को पचास दासियाँ भेंट कीं। राजा स्वनय भावयव्य से, अपने विवाह के अवसर पर ऋषि कक्षिवान ने रथों में भरी दासियाँ दहेज में पायीं। इन दासियों की संज्ञा ' वधु ' की थी, जिनसे बिना किसी विवाह संस्कार के पति कर्म किया जा सकता था। अधिकतर, दासियाँ कबीले या गांव की साड़ी सम्पत्ति समझी जाती थीं। उनसे हर व्यक्ति संबंध स्थापित कर सकता था। बाद में वैदिक काल की ये दासियाँ ही वेश्याएं बनीं। जिन लड़कियों का भाई नहीं होता था उन्हें भी वेश्या बना दिया जाता था। इन्हें वेदों में भिन्न-भिन्न नामों से जाना जाता था। जैसे—अतित्वरी, अतिकद्वरी, अपस्कछरी आदि

@ कौटिल्य और वेश्याएं

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में अधिकरण 2, प्रकरण 44 में “ गणिकाध्यक्ष ‘ नामक एक पद की व्यवस्था दी गयी है, जो गणिकाओं के संसार का नियमन करेगा। वह खुबसूरत, जवान, गाने-बजाने में निपुण लड़की को, चाहे वह वेश्या वंश में उत्पन्न हुई हो या न, 1000 पण वार्षिक पर वेश्या के तौर पर नौकर रखें। बुढ़ी हो जाने पर वेश्याएं असहाय हो जाती हैं। कौटिल्य के अनुसार ऐसी अवस्था में उन्हें दाई के रूप में या कोष्ठागार या पाकगृह में काम दिया जायें। उनकी आमदनी, खर्च, बचत और दाय भाग नियत किया जाय। जो पुरुष वेश्या को रोके, पटके या बदसूरत करे उसे 1000 पण दंड मिले.....जो वेश्या पुरुष को मार डाले, उसे जीते जी जला डाला जाये या पानी में डूबोकर मार दिया जाय। यदि कोई वेश्या धन या मेहताना लेकर उसका बदला न चुकाये तो उसपर आठ गुना जुर्माना लगावें। वेश्याओं की अन्य उपयोगिता के संदर्भ में भी कौटिल्य ने उसे शासकीय कर्तव्य बताया।

@गणिकाओं की बलिदान गाथाएँ

गणिकाओं के ऐश्वर्य वर्णन के साथ-साथ इनकी बलिदान गाथाएँ भी कम रोमांचक नहीं हैं। ये देशभक्ति, प्यार, और वफादारी से भरपूर हैं। चित्रलेखा ने सेनापति बीजगुप्त के लिए अपना सबकुछ न्योछावर कर दिया। कुमुदिका हथियारबंद होकर अपने प्रेमी के साथ रणभूमि में पहुंच गयी थी। सुंदरी सहजा का मन जितने के लिए जितना अधिक प्रयास किया गया उतनी ही असफलता मिली। सहजा अपने प्रेमी के साथ पहले बंदी बनी और फिर उसकी चिता पर सती हो गयी। जयमति भी उक्कल के साथ सती हुई। रूपाणिका अपना समस्त वैभव पीछे छोड़कर निर्धन प्रेमी के साथ भाग गयी। माधवी अपने प्रेमी के साथ जीवन पर्यंत पतिव्रता स्त्री की भांति रही। वसंतसेना ने भी चारुदत्त के लिए अनेक कष्ट झेले। ये सारी गणिकाएं नृत्य और संगीत की आराधिकाएं थीं।

लेकिन युद्ध, महंगाई, सांप्रदायिक तनाओं के कारण स्थिति बिगड़ती गयी। अधिकतर वेश्याएं केवल देह व्यापार में लिप्त हो गईं। जो बच गयी वे घरानों में बंट गयीं। ये घराने तत्कालीन राजाओं और सामन्तों के आश्रय में पलते रहे। बनारस, जयपुर, जोधपुर, उजैन, कनौज आदि प्रसिद्ध घराने हुए।

लेकिन ग्यारहवीं सदी के शुरू होते-होते वेश्याओं की स्थिति और शोचनीय होने लगी। अब उपरोक्त कोठों का रूपान्तर, अमीरों के हरम में होने लगा।

फिर एक नयी संस्कृति का जन्म हुआ ‘ महफिल ‘ या ‘ मुजरा ‘ । इनकी सदस्याएं या वेश्याएं अब ‘ तवायफ़ ‘ कहलाने लगीं। वे महफिलों में भजन, दादरा, ठुमरी, खयाल गाने लगीं। टप्पा, होली, कजरी, पूरबी, गजल, कव्वाली आदि प्रकार उभर आये। कथ्थक नृत्य को भी सम्मान मिला। अकबर के दरबार की रक्कासा अनारकली एक तवायफ़ ही थी। इस परंपरा की विख्यात व्यक्ति हैं फैज़ी बेगम, नूर बाई, रहमान बाई, पन्ना बाई, कमला बाई, लाल कुंवर, गौहर जान, हुस्ना, रसुलन, सिद्धेश्वरी, मुन्ना जान आदि। कोठा संस्कृति में यश कमानेवाली अंतिम बाई थी ‘ उमराव जान ‘।

एक अनुमान के अनुसार एक समय लगभग दस लाख परिवार इसी पेशे पर जीवनयापन करते थे। इसका एक कारण यह हो सकता है कि औरंगजेब ने सत्ता में आते ही अपने किले का हरम खाली कर दिया और सारे सरदारों और मातहतों को ऐसा ही करने को कहा। दूसरा कारण था युद्धों में होनेवाली पुरुषों की मौतें और जीवन की अनिश्चितता।

अंग्रेजी राज में भी यहाँ के राजा-महाराजा ऐय्याशी में डुबे रहें।

प्राचीन भारत में विषकन्याएं

1988 के दरम्यान श्री एस.डी.त्रिवेदी कृत ' प्राचीन भारत में गुप्तचर्या ' नामक एक पुस्तक प्रकाशित हुई। उसके अनुसार—

@ प्राचीन भारत में गुप्तचर, प्रशासन के महत्वपूर्ण और अनिवार्य अंग थे। इन गुप्तचरों में महिलाएं भी होती थीं।

@ कौटिल्य की गुप्तचर व्यवस्था अत्यंत व्यापक और संपूर्ण थी। वे मानते थे कि वही राजा अपने शत्रुओं को मात दे सकता है, जो उनको परास्त करने के लिए साम, दाम, दंड, भेद इन सब उपायों का प्रयोग करने के अतिरिक्त, यहाँतक कि विषकन्याओं के प्रयोग से भी न हिचकिचाये।

@ विषकन्याओं के रूप में जाने जानेवाली कुमारी गुप्तचर, अपने रूप-सौंदर्य के बल पर विरोधी को आकर्षित कर अंततः उनका काम तमाम कर देती थीं। कौटिल्य उनका उपयोग बड़ी कुशलता से करते थे। साधारणतः कौटिल्य को ' भारतीय गुप्तचर्या का पिता ' माना जाता है। उन्होंने गुप्तचरों द्वारा गुप्त सूचनाएं जमा करने की पद्धतियों को संहिताबद्ध किया और अपनी विख्यात कृति ' अर्थशास्त्र ' में प्रस्तुत किया। कुछ इतिहासकारों की मान्यता है कि, विष-कन्या रूपी महिला गुप्तचरों की कल्पना सर्वप्रथम कौटिल्य के मन में ही आयी थी।

वे रूपवती, कामिनी और आकर्षक युवतियों को राज्य की सेवा में लेकर उन्हें विरोधी राजाओं, सेनापतियों आदि के मन मोहकर, उनसे उनकी सेना के गुप्त भेद प्राप्त करने की कला में पारंगत कर, विशेष प्रशिक्षण प्रदान करते थे। उनके शरीर में विख्यात चिकित्सकों द्वारा धीरे-धीरे अत्यल्प मात्रा में, ताकि यह स्वयं उन्हें कोई हानि न पहुँचा सके, विष पहुँचाया जाता था। जिसके प्रभाव से उनके साथ संभोग करनेवाला व्यक्ति तत्काल मृत्यु को प्राप्त होता था। ऐसी गुप्तचर व्यक्तियों को उन्होंने विषकन्या नाम दिया था। बाद में यह नाम महिला मात्र का पर्याय बना दिया गया।

@ विषकन्याओं का सीधा संबंध गणिकावृत्ति से है, चूंकि उनका चुनाव गणिकाओं के विभिन्न वर्गों से किया जाता था। अर्थशास्त्र के अनुसार मौर्यकाल में ' पुंश्चली ' (दासी वर्ग की वेश्याओं) नाम से जानी जानेवाली वेश्याओं से अनिवार्य रूप से विपक्ष की जासूसी करने को कहा जाता था। इसका एक

कारण संभवतः यह रहा होगा कि जहां उच्च वर्ग की गणिकाओं को प्रवेश पाने में कठिनाई होती थी, वहाँ पुंश्चलियों के लिए यह कार्य अपेक्षाकृत आसान था।

सुकेशी अनिन्द्य सुंदरी थी। लेकिन चाणक्य ने उसके पिता को आदेश दिया कि इस राज्य का चलन है कि मनोहर स्त्री को राज्य की सेवा करनी होगी—विषकन्या बनकर। उसे विषकन्या बनाने की व्यवस्था की गयी। जब चाणक्य पूरी तरह संतुष्ट हो गये तो उन्होंने उसे नयी उपाधि दी—रक्तकंठा।

यूनान का सजीला योद्धा सिकंदर जब पंजाब में जन्म रहा था तो उसके साथ भी उसका चाणक्य तथा गुरु था—अरस्तू। एक दिन सिकंदर के दरबार में खबर आयी कि सम्राट चंद्रगुप्त ने सिकंदर के लिए अनमोल उपहार भेजा है तो अरस्तू के कान खड़े हो गये। सिकंदर ने रक्तकंठा को देखा तो उसे भोगने के लिए वह एकदम उतावला हो उठा। लेकिन अरस्तू ने रोकते हुए पास खड़े प्रहरी अगस्त्य से कहा, “अनजाने दोस्त की सौगात को भी सब तरह से अजमा लेना, अक्लमंदी है। मैं तुम्हें शाह के उस्ताद के हैसियत से आदेश देता हूँ कि तुम इस हसिना के ओठों का चुंबन लेकर दिखाओ।”.....एक बार तो सिकंदर भी अपने गुरु की अवज्ञा करने को तत्पर हो गया। लेकिन इतने में फिर अरस्तू का स्वर गुंजा, “तुमने सुना नहीं, आगे बढ़ो।” और भीमकाय शरीरवाले अगस्त्य ने सहमते हुए आज्ञा का पालन किया। सिकंदर ने क्रोध से अपनी आंखें बंद कर लीं। तभी अगस्त्य भरे दरबार में गिर पड़ा, निर्जीव। तब अरस्तू ने सिकंदर से कहा, “इस विषकन्या को वापस भेज दो और हमेशा याद रखो कि देशबाहर जाम में जहरीली शराब भरी जाती है।”

• इस व्यवसाय से जुड़ी कुछ बातें—

@ वेश्याओं का प्रशिक्षण : हरिश पाठक

बाजारों में बेचने और चकला घरों में बैठाने के पूर्व अपहरण करके लायी गयीं युवतियों को बाकायदा प्रशिक्षण दिया जाता है। इस प्रशिक्षण की अवधि युवती की शारीरिक और मानसिक स्थिति पर निर्भर करती है। इस समूची प्रक्रिया में उस युवती को इस स्थिति में पहुँचा दिया जाता है कि वह एक दिन में कम से कम छह व्यक्तियों से निपट सके। जब युवती इस प्रशिक्षण में पास हो जाती है तो उसे तैयार माल कहा जाता है और लम्बी यातनामय जिन्दगी में झोंक दिया जाता है। शराब या नशीली पदार्थ खिलाकर पहले युवती को अर्धचेतन अवस्था में लाया जाता है। उसके बाद उसपर बलात्कार की प्रक्रिया दोहराई जाती है। यह हादसा प्रति दिन बारबार घटता है। धौलपुर के आसपास के लगभग एक दर्जन स्थान इस प्रशिक्षण के मुख्य स्थान हैं।

@ कुछ गलत विश्वास की शिकार : बंगला देशी लोग मूलतः यह मानकर चलते हैं कि कम से कम उम्र की वेश्या का मतलब है, पुरुष के लिए अधिक से अधिक आनंद। वहाँ के होटलों में विज्ञापन होते हैं कि वे बाल वेश्याओं के विशेषज्ञ हैं। यहाँ बारह से पंद्रह साल की लड़कियाँ उपलब्ध हैं। इन लड़कियों को आम दिनों में दो से दस ग्राहकों की हवस का शिकार होना पड़ता है।

@ वेश्याओं की काम वासना की संतुष्टि : समान्यतः वेश्या अपने पेशे के आरंभ से ही कभी वासना संतुष्टि का अनुभव नहीं करती। अर्थात् यह एकतर्फी मार्ग है, जो अपने आपमें कितना अनैतिक है। दूसरी

और यह बात भी भयावह है कि कोई वेश्या एक दिन में दस-बारह ग्राहक निपटाये और प्रत्युत्तर में आनंद की पराकाष्ठा पर भी पहुंचे।

@ एक लघुकथा : शराफत अली खान

वह बेहद टूट चुका था बेरोजगारी से। सारा दिन इधर-उधर भटकने के बाद उसकी भूख आक्रोश में बदल चुकी थी। वह कुछ करने के इरादे से एक अंधेरी, विरान सी सड़क पर बनी पुलियां पर बैठ गया। आधी रात के बाद एक आकृति तेजी से चलती हुई नजर आयी। वह सचेत हो गया। उसने उस आकृति को पीछे से दबोच लिया। वह स्त्री थी। उसने स्त्री के मूंह पर हाथ रखकर उसके कान में धीरे से कहा, "अपनी इज्जत बचाना चाहती हो तो रुपये मेरे हवाले कर दो।"

वह तड़पी और उसका हाथ तेजी से पीछे हटा बोली, "मुझे इज्जत की परवाह नहीं लेकिन रुपये मैं नहीं दे सकती क्योंकि रुपये मैं इज्जत बेचकर ही लाई हूं।"

@ पुरुष गामित्व और पुरुष वेश्याएं

आज भी कोई विश्वास के साथ यह नहीं कह सकता कि वह कौनसी ऐसी कमजोरी मनुष्य में होती है, जिसके कारण वह विपरीत लिंगी व्यक्ति की ओर आकर्षित होने के स्थान पर अपने ही लिंगी व्यक्ति की ओर आकर्षित होकर सृष्टिक्रम के विरुद्ध आचरण करने लगता है। मनोविश्लेषक फ्राईड के अनुसार, "चाईल्डहुड रिमेन ऑक्टिव्ह इन द होमो ऑण्ड पॉयज़नहीज अंडल्ट रिलेशनशिप विद ऑल वूमनहुड"। एडलर कुछ अलग ही कारण बताते हैं-"पुरुषों के साथ ऐसे संबंधों का मूल सेक्स की नाकामी में छिपा है। एफ.जे. कोलमैन ने इस विषय पर कई साल छानबीन की और वे इस नतीजे पर पहुंचे कि होमो पैदाइशी भी हो सकते हैं और बनाये भी जाते हैं।

आजकल तो दुनिया में होमोसेक्सुअल व्यक्तियों के विवाह भी होने लगे हैं और उसकी न्याय व्यवस्था की दृष्टि से काफी चर्चा भी हो रही है।

डॉ. चेस्सर ने अपनी पुस्तक में इनका तीन तरह का वर्गीकरण किया है-1) वह जिसे दूसरी जाति में रुचि न हो। इन्हें 'इनवर्ट' कहा जाता है। 2) वे जिन्हें केवल बालकों में ही रुचि हो। ये लोग 'पेड्रोस्ट' कहलाते हैं। 3) वे जिन्हें

दोनों लिंगों के व्यक्तियों में रुचि हो। कभी वह एक लिंग के व्यक्ति के साथ संबंध स्थापित कर लेता है तो कभी दूसरे लिंगी व्यक्ति के। ये विवाह करने की शक्ति रखते हैं। कहते हैं सुकरात इसका उदाहरण है। शेक्सपियर के बारे में भी यही कहा जाता है। बहुचर्चित साहित्यकार ऑस्कर वाइल्ड पर लगे इल्जाम ने अपने समय में सनसनी फैला दी थी। कानूनन उनपर मुकदमा भी चलाया गया।

@ संभोग क्षमता का परीक्षण ; ऋषिराज राही

रूस की महारानी तथाकथित महान कैथरीन ने रूस पर चौतीस साल तक शासन किया। यह हद दर्जे की कामूक किस्म की औरत थी। उसने अपने पति, रूस के सम्राट पीटर को अपने प्रेमी द्वारा मरवा दिया

चूंकि पीटर उसकी उष्ण देह की तृप्ति में सक्षम नहीं था। कैथरीन ने स्वयं राजसिंहासन हथियाया और अपनी कामतृष्टि के लिए 12 पुरुष रखैलों का जत्था पाल रखा था। सरकारी तौर पर 'कृपापात्रों' की नियुक्ति के समय वह उनकी पुंसत्व परीक्षा और संभोग क्षमता का परीक्षण कराती थी। वह अपने प्रेमियों को खुब सजा-संवारकर रखती थी। कहते हैं कि 'पामेकिन' नामक प्रेमी उसे सर्वाधिक पसंद था। शक्ल-सुरत से तो वह सडियल केश, बदबूदार देह, लीचड़, बदसूरत और काना था। पर उसमें बला की शारीरिक संभोग क्षमता थी। वह उच्चस्थ सेनापतियों में से एक था।

• वेश्या समाज में सकारात्मकता

वेश्याओं का मंदिर

उजैन के रामरतन मार्ग पर, प्राचीन मंगतेश्वर महादेव मंदिर का संचालन वेश्याएं ही करती हैं। ये वेश्याएं प्रत्येक सोमवार को उपवास पर रहती हैं और आप इस दिन ग्राहक बनकर उनके देह का सौदा नहीं कर सकते। वेश्याओं की भक्तिभावना ही नहीं तो मंदिर का वातावरण भी साफसुथरा और मनोरम होता है। यह मंदिर भी उजैन के उन्हीं चौरासी मंदिरों में से एक है जो मोक्ष प्राप्ति के लिए पुराणों में उल्लेखित है।

@ वेश्याओं में आस्था : महाराष्ट्र और उसके आसपास के इलाकों में देह व्यापार का पेशा करनेवाली वेश्याएं देवी-देवताओं के प्रति असीम श्रद्धा रखती हैं। जीवन भर अपने सपनों को टूटते हुए देखने के बावजूद इनके मन में यह अगाध श्रद्धा बनी रहती है। कुछ वेश्याएं शुक्रवार के दिन अपने-अपने कोठों पर यज्ञ करती हैं। इस यज्ञ के बाद वे निर्वसना होकर यज्ञ की लपटों से अपने शरीर को शुद्ध करती हैं और ईश्वर से प्रार्थना करती हैं कि, " हे भगवान, हमारी नाभि से निचला हिस्सा ताउम्र स्वस्थ और निरोगी रहे। यह यज्ञ प्रायः हर चकले पर होता है। लगभग 55% वेश्याएं शुक्रवार के दिन उपवास रखती हैं। अधिकतर वेश्याओं की आस्था संतोषी माता में होती है। दिल्ली और आसपास की वेश्याएं, हनुमान जी के प्रति अधिक आस्थावान हैं और मंगलवार का व्रत रखती हैं। दिल्ली स्थित जी.बी.रोड के पीकरनेकरनेछे, एक गली में हनुमान जी का एक छोटा सा मंदिर है, जिसमें सिर्फ वेश्यालय की लड़कियाँ ही पूजा करने जाती हैं। उनके कमरे में हनुमानजी का चित्र अधिकतर देखने को मिलता है।

@ गणिका की प्रार्थना

एक बार पाटलीपुत्र में गंगा ने अति रौद्र रूप धारण किया। महाराज द्वारा राज्य के सभी कुशल अभियंताओं, तपस्वियों, महात्माओं से इसके प्रति प्रयत्न करने कहा गया। सभी अपनी-अपनी विद्या और हुनर के साथ जुट गये। लेकिन बाढ़ कम होने की जगह बढ़ती ही जा रही थी। तभी एक गणिका महाराजा के समक्ष उपस्थित हुई और कहने लगी, " महाराज आप अनुमति दे तो मैं भी प्रार्थना करके देखूं?"

उद्विग्न महाराज गणिका को सामने देख गंभीर हो उठे और बोले, " राज्य के गणमान्य तपस्वी इस प्रयत्न में सफल नहीं हो सके तो माँ गंगा तम्हारी कहा सुननेवाली? फिर भी तुम भी राज्य की एक नागरिक हो तो तुम्हें भी इसका हक है। तुम भी जरूर प्रार्थना कर सकती हो।"

गंगा की ओर करबद्ध होकर गणिका के नेत्र तुरन्त मूंद गये और प्रार्थना के विनित स्वर उसके मुख से निकल पडे, “ हे, पावन गंगे, यदि मैंने आजतक अपने देह व्यवसाय में, किसी पुरुष के साथ भेदभाव न किया हो, किसी भी कामेच्छु के प्रति गरीब-अमीर, रोगी-स्वस्थ की दृष्टि से पक्षपात का विचार भी मन में न लाया हो तो तू शांत हो जा, अन्यथा समूचे पाटलीपुत्र को जलमग्न कर दे।”.....प्रार्थना समाप्त होते, सभी विस्फारित नेत्रों से देखने लगे, माँ गंगा शांत होते जा रही थी।

@ वेश्याएं, जो राजघाट पर पेशा छोड़ने का संकल्प लेना चाहती थीं---

वेश्या कल्याण संघ, उजैन की वेश्याओं ने मई 1982 में अपने संघ के स्थापना दिन समारोप के बाद, वेश्या कल्याण कार्यक्रम के अंतर्गत, सबसे पहले अपने खुद के बारे में नहीं, बल्कि बिल्कुल किसी ममतामयी मांओं की तरह बिना बाप के अपने बच्चों के बारे में ही सोचा। उन्होंने एक स्कूल की नींव रखी जिसे नाम दिया गया ‘ संजय गांधी स्मृति विद्यालय ’। लेकिन उलट इन वेश्याओं को संजय गांधी स्मृति ट्रस्ट की ओर से शाबाशी तो नहीं, बल्कि एक पत्र मिला, जिसका आशय था कि वे संजय गांधी का नाम इस्तेमाल नहीं कर सकतीं, क्योंकि ट्रस्ट के नियमानुसार ‘ यह नाम ’ किसी भी ऐसी संस्था से नहीं जोड़ा जा सकता, जो चंदा या दान के सहारे चलती हो। इस पाबन्दी पर वेश्या कल्याण संघ ने तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की। संघ की तत्कालीन अध्यक्षा सुश्री शकुंतला देवी और सचिव बाबुभाई थे। स्कूल शुरू हो चुका था और उस समय उसमें 90 लड़के-लड़कियाँ पढ रही थीं।

उनका कहना था कि, “ आप लोग सोचे या न सोचे, हम जरूर सोचते हैं कि शहर के बीचोंबीच, भरी आबादी में वेश्याओं का रहना न तो सामाजिक नजरिये से नैतिक है और न कानूनी तौर पर। इसलिए बेहतर होगा कि शहर के बाहर हमारी कॉलोनी बसाकर हमें सुधरने का मौका दिया जाये क्योंकि आज हम पश्चात्ताप की आग में जल रही हैं।”

इस प्रकार की आत्मस्वीकृतियाँ करने का साहस, कुंदन बन जाने के बाद ही अर्जित हो पाता है, जिसका जिता-जागता सबूत है शकुंतला देवी। वे बहुत मायुस होकर बताती हैं, “ मैंने प्रधान मंत्री जी को एक पत्र लिखा था कि हम कमसे कम दस वेश्याएं राजघाट पर वेश्यावृत्ति छोड़ने का संकल्प लेना चाहती हैं।.....लेकिन पत्र का कोई जबाब नहीं मिला। “ (यह एक सकारात्मक शुरुआत तो होती)

• वेश्यावृत्ति को रोकने के प्रयत्न

@ वेश्यावृत्ति पर शोधकार्य भी हुए। युवा समाजशास्त्री डॉ. विश्वनाथ जोआरदार ने ‘ बृहत्तर कलकत्ता में वेश्यावृत्ति ’ नामक विषय पर एक तलस्पर्शी शोधकार्य किया। इस शोधकार्य पर विस्कांसिन विश्वविद्यालय के प्रो.मार्शल बी. क्लिनर्ड और कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के प्रो.किंगस्ले डेविड ने कहा है कि समाजशास्त्र के क्षेत्र में यह एक उल्लेखनीय कार्य है।

कलकत्ता :

कलकत्ता शहर जॉन चार्नक ने बसाया है। यहाँ सोनागाछी नाम की वेश्याओं की कुप्रसिद्ध बस्ती है। यहाँ तीन तरह की लड़कियाँ हैं। 1) छोकरी : इनकी हालत बेहद दयनीय होती है। वे मानो मासियों की जर खरीदी

गुलाम होती हैं। ये लड़कियाँ यंत्रवत जीवन जीती हैं। मासियाँ उनके माध्यम से चाहे उतना पैसा कमाती हैं और बदले में उन्हें केवल भोजन मिलता है। उसके स्तर की भी कल्पना की जा सकती है। अहसान के तौर पर कभी तो कपड़े।

- 1) अधिया : इनकी हालत फिर भी कुछ ठीक होती है। वे अपनी कमाई का आधा हिस्सा मासी से पा जाती है। इसी कारण इनका नामकरण यह हुआ है।
- 2) तीसरी श्रेणी : जो खुद अपनी दुकानदारी करती हैं।

कभी-कभी छोकरी या अधिया, मासियों के क्रूर रवैये के विरुद्ध इंकलाब भी कर देती हैं। लेकिन अंततः उनकी नियति तो यही होती है कि दूसरी मासी के चंगुल में फंसना और फिर वही शोषण, उत्पीड़न और घूटन।

उनकी जिन्दगी को बेहतर बनाने के लिए कई लोगों ने अभियान चलाये---

1920 में चित्तरंजन दास, 1950 में बंगाल के तत्कालीन राज्यपाल डॉ. हरेंद्रकुमार मुखर्जी, जनता पार्टी शासन काल में केंद्रीय शिक्षा मंत्री रहे डॉ. प्रतापचंद्र चंदर आदि....

1970 में कालीघाट के कुछ सामाजिक कार्यकर्ताओं ने ' ऑल बंगाल पतिता नारी उद्धार समिति ' का गठन किया था।

महाराष्ट्र

5000 देवदासियों को अनोखा उपहार : वैसे तो वेश्यावृत्ति कानूनी तौर पर प्रतिबंधित है। लेकिन धर्मनिरपेक्ष राज्य में भी कानून, अधिकतर धर्म के नाम पर पंगु बनकर रह जाता है। देवदासी बनाना एक धार्मिक प्रथा है। इस कारण कानून यहां भी ज्यादा दखलअंदाजी से बचना चाहता है। इसके कारण अकेले पूना शहर में ही 5000 से कहीं अधिक देवदासियां हैं। कानून अपनी जगह है और मानवता? 1982 में यहां के स्वायत्त स्थानीय निकाय ने इनके बारे में सोचा और 26-05-1982 को अपने 125 वर्ष पूरे होने के अवसर पर आयोजित समारोह में देवदासियों को एक उपहार दिया-स्वास्थ्यपत्रों का ताकि वे अपना किसी भी प्रकार का इलाज मुफ्त और तुरन्त करवा सके। ये पत्र उन्हें, गुंडों और पुलिस की अवांछित कारवाइयों से अपना बचाव करने में भी सहायक होंगे।

आम्रपाली शक्ति संगठन नागपुर : इस संगठन ने, किसी भी प्रकार से देह व्यापार करने पर मजबूर महिलाओं को सुरक्षा देने के साथ-साथ कई मुद्दे सक्रिय कार्यक्रम के साथ प्रस्तुत किये थे। जैसे-

- 1) वेश्याओं को सामाजिक सम्मान दिलाने के लिए सामाजिक मानसिकता तैयार करने के कार्यक्रम चलाना।
- 2) उन्हें कानूनन लायसन्स दिलाना।
- 3) पुलिस और बिचौलियों द्वारा हो रहे शोषण पर रोक। विशेष पुलिस व्यवस्था।
- 4) आधुनिक साजसज्जा युक्त विशेष वेश्यालय बनवाने के लिए प्रयत्न।
- 5) सरकारी तौर पर मुफ्त में नियमित जांच तथा दवाई का प्रबंध।

- 6) मजबूरन देह व्यापार में फंसी महिलाओं के लिए रोजगार के अवसर जुटाना।
- 7) विवाह की इच्छुक महिलाओं के विवाह के लिए वातावरण तैयार करना।
- 8) देह व्यापार से जुड़े मुकदमों की वापसी की सरकार से मांग करना।
- 9) वेश्याओं के बच्चों को मुफ्त शिक्षा और रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने, सरकारी प्रयत्न के लिए दबाव।

तत्कालीन सर्वहारा नेता विदर्भवीर जांबुवंतराव धोटे के नेतृत्व में इस संगठन की गतिविधियां नववें दशक में चलीं।

@ पेरिस में वेश्याओं की यूनियन

पेरिस में वेश्याएं अपने मानवीय अधिकारों के लिए खुले आम और लगातार संघर्ष करतीं रही हैं। उनका नारा है, “ वैसे ही जियो, जैसी दूसरी औरतें जिती हैं।” 1975 में वहाँ उन्होंने एक समिति बनायी जिसका स्वरूप एक ट्रेड यूनियन जैसा था और उसने फ्रांसीसी सरकार के सामने अपना मांगपत्र रखा। इसकी मांगें थीं---

- 1) हमें वही सम्मान दिया जाये, जो बहु-बेटियों को दिया जाता है।
- 2) जो औरतें वेश्यावृत्ति छोड़ना चाहती हैं, उनकी, रास्ते में आनेवाली बाधाएँ दूर की जायें।
- 3) वेश्यावृत्ति कानूनन वैध है और हमसे आयकर भी लिया जाता है। फिर भी पुलिस और दलाल हमारा शोषण करते हैं। इसकी रोकथाम की जाये। (इस बारे में “ मैकाडैम “ अखबार ने एक कार्टून छापकर अपना रोष व्यक्त किया था-‘ एक वेश्या एक नन्हे बच्चे को बांहों में लिये है, वेश्या की विशाल परछाई तले आराम से बैठे हैं-----कुछ सिपाही, दलाल, वकील। ‘
- 4) हमें वे समस्त सुविधाएं दी जायें, जो आयकर देनेवाले नागरिकों को प्राप्त हैं।
- 5) हमें चलते राह पकड़कर, जानबुझकर जुर्माना भरने को मजबूर किया जाता है। सरकार ने इसे अपनी आय बढ़ाने का साधन बना लिया है, जो कि अमानवीय है। यह बंद हो।

• कम्युनिस्ट सोवियत यूनियन में इसके लिए योजनायें:-

तत्कालीन सोवियत संघ में वेश्यावृत्ति उन्मूलन : संध्या नेगी

रूस में झारशाही ने वेश्यावृत्ति को सरकारी प्रश्रय देकर, पूरे देश में फैला दिया था। परिणामतः गुप्त बिमारियों के रोगियों की संख्या बढ़ती गयी। ये रोगी तत्कालीन सरकार के लिए गंभीर समस्या बन गये। तब 1917 की क्रांति के बाद लगभग बारह वर्षों तक सोवियत ने क्रमिक ढंग से इसका उन्मूलन करने के लिए योजनायें चलाईं। इसके अनुसार देश की हर नारी के लिए गुप्त रोगों के उपचार की पूरी-पूरी जानकारी देना आवश्यक था। इस दृष्टि से एक सामाजिक सुरक्षा समिति का गठन किया गया। इसने अपना काम चार चरणों में आरंभ किया__

नारी प्रशिक्षण केंद्रों की स्थापना

- 1) जिस तरह का प्रशिक्षण दिया जा रहा है, उस काम के लिए केंद्रों का विस्तार।
- 2) स्त्रियों को पुरुषों के समान स्तर प्रदान करना।
- 3) स्वास्थ्य केंद्रों की स्थापना तथा यौन रोगों का मुफ्त इलाज। मुक्त आचरण में लीन महिलाओं के लिए सुरक्षित प्रसूतिगृह तथा वहाँ उनके बच्चों के लिए बाल कल्याण केंद्रों की स्थापना।

लेकिन जैसा की होता है, यहाँ भी वही दिक्कत आ पड़ी। जब उपरोक्त काम जोर-शोर से शुरू हुआ तो बहुत से दलाल अपने संपर्क की वेश्याओं सहित भूमिगत हो गये और चोरी-छिपे धंधा करते-करवाते रहे। तो सरकार को दो काम एकसाथ करने पड़े---

- 1) वेश्यावृत्ति कानूनन, अवैध घोषित कर दी गयी।
- 2) ऐसे गुप्त चकलों की जानकारी एकत्र करने सैकड़ों जासूस नियुक्त किये गये।

इस तरह पहले मुफ्त इलाज और बाद में रोजगार मिलने के कारण बहुत सी स्त्रियाँ इस व्यवसाय से विमुख हो गयीं। धीरे-धीरे सामाजिक चेतना के विकास का यह कार्यक्रम सफल होने लगा। फिर भी बहुत सारी औरतें इस व्यवसाय से जुड़ी थीं ही। इसका कारण ढूँढने पर पता चला कि एक तो दलाल लोग उन्हें इससे मुक्त होने में अड़ंगे खड़े करते हैं और जो अच्छी स्थिति में पहुंच गयी हैं उनके लिये यह आनंद और विलास का जरिया हो जाता है।

शुरू-शुरू में तो गुप्त रोग चिकित्सालय खाली पड़े रहे। लेकिन धीरे-धीरे इनका लाभ उठानेवाली औरतों की संख्या बढ़ने लगी। यहाँ तक कि डेढ़ वर्ष बाद दवाखानों की संख्या बढ़ानी पड़ी। आगे कार्यक्रम में निम्न योजनायें भी शामिल कर ली गयीं---

- उन परिस्थितियों को न पनपने दिया जाये जो किसी को वेश्यावृत्ति के लिए मजबूर कर देती हैं।
- ऐसे प्रयास किये जायें जिससे वेश्याओं का आर्थिक पक्ष मजबूत हो और उन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा मिले।
- केंद्र में संरक्षण मांगने आयीं महिलाओं को वहाँ से तबतक न जाने दिया जाये जबतक उनके रहनसहन और काम की उचित व्यवस्था न हो जाये।

फलस्वरूप ज्यों-ज्यों महिलाएं रोगमुक्त होती गयीं उनको मास्को के निकट एक फार्म हाऊस खोलकर, कृषि कामों में लगा दिया गया। इसके लिए उन्हें शुरू में प्रशिक्षित किया गया। इसी दरम्यान महिलाओं ने विभिन्न कुशलताएं भी हासिल कीं। वे मनोचिकित्सकों से भी परामर्श लेने लगीं। वहाँ महिलाओं के लिए विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रम भी आयोजित होने लगे। इस तरह उनमें यह विश्वास पैदा किया गया कि वे राष्ट्र और समाज के लिए कितना योगदान दे सकती हैं। उनका जीवन केवल शापित जीवन नहीं है। ये प्रयत्न किए गये कि वे अपना बिता जीवन भूल जाये।

लेकिन अब भी सबसे जोखिम भरा काम बाकी था। वह था उनको सामाजिक जीवन में बसाना। बल्कि यह एक परीक्षा ही थी कि वेश्या उन्मूलन कार्यक्रम सफल हुआ या नहीं? इस चुनौतीपूर्ण काम के लिए ये कदम उठाये गये—

- 1) समस्त वेश्याओं के अतीत की जानकारी केवल संबंधित कार्यकर्ताओं तक ही सीमित रखी गयी।
- 2) उनके लिए ऐसे संरक्षकों का चयन किया गया, जो उनसे समान और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार कर सके। हर नगर में ऐसे संरक्षकों की समितियां बनायी गयीं।
- 3) उन्हें संरक्षकों के साथ परिवार में बहन-बेटी जैसा रखा जाये और संरक्षक उन्हें सुरक्षा प्रदान करते हुए उनका विवाह आदि जोड़ने में सहायता करें।
- 4) ऐसी प्रत्येक महिला को जहां भी वह हो, उसकी रुचि के अनुसार काम दे।

इन सारे ईमानदार प्रयत्नों के नतीजे इस तरह आये----

- खुलेआम वेश्यावृत्ति सहसा समाप्त हो गयी।
- लगभग 25000 वेश्याएं अपना पेशा छोड़कर देश की कर्मठ नागरिक बन गयीं।
- इनमें से 40% औरतें तो कृषि या औद्योगिक कार्य में लीन रहीं। 41% औरतों की गृहस्थी बस गयी। बची हुई 19% औरतें इतनी क्षतिग्रस्त हो गयी थीं कि वे और किसी काम की नहीं रही थीं। उन्हें सरकार ने अपने संरक्षण में ही रखा।

1945 आते-आते यह व्यवसाय नगण्य स्तर तक पहुंच गया। यह इस व्यवस्था का कमाल ही था कि 1982 तक आते-आते रूस की वर्तमान पीढ़ी ने रूस में वेश्या को देखा ही नहीं। (1917 से पहले एक बार वेश्या बनी महिला को यह व्यवसाय छोड़ने की अनुमति नहीं थी। अब ऐसा सुना जाता है कि वर्तमान व्यवस्था में स्थिति कुछ हद तक पूर्व जैसी हो रही है।)

“ यौन सुख भी शरीर की भूख और प्यास के समान है। क्या इस की पूर्ति नहीं होनी चाहिए,” कलारा जेटकिन ने लेनिन से पुछा।

लेनिन ने उत्तर दिया, “ जरूर होनी चाहिए। लेकिन क्या एक सामान्य आदमी को सामान्य स्थितियों में गटर या उस चमचमाते गिलास का पानी पी लेना चाहिए, जिसे कई लोग जूठा कर चुके हैं? पानी हर प्राणी के लिए आवश्यक है, लेकिन यौन सुख को सामाजिक पहलू से परखना जरूरी है। विवाह करके स्त्री और पुरुष, प्यार करते हैं तो वे एकदूसरे के पूरक और भागीदार होते हैं, जिससे एक नये प्राणी की रचना होती है।....और व्यक्ति समाज के प्रति अपने दायित्व को पूरा करने में सक्षम होता है।..... गिलास भरा हो तो उसे पी लेना चाहिए, इस सिद्धांत से मैं कतई सहमत नहीं। यौन सुख के संदर्भ में यह प्यास बुझाने का यह निहायत ही घटिया सिद्धांत है।”

@ बहुत सी औरतें बेशक कितनी ही गरीब क्यों न हों, मर जाना पसंद करती हैं, मगर यह काम नहीं। इस पेशे में कम से कम 60% लड़कियाँ ऐसी है जो वेश्या बनना नहीं चाहती थीं, लेकिन बना दी गयीं। बाकी 40% औरतें ऐसी हैं, जो कहने को तो कहती हैं कि यह उनकाही कोई पुश्तैनी पेशा है। मगर यह भी

उतनी ही वास्तवता है कि उनकी पूर्वज स्त्रियों में शायद ही कोई ऐसी होगी, जो स्वयं ही यह पेशा अपनाना चाहती हो। (आधुनिकता की चकाचौंध में इस गलत रास्ते पर जानेवाली औरतों की बात छोड़ दो।)

ऐसी स्थिति में कोई भी आदमी पैसे देकर केवल एक शरीर नहीं बल्कि अपने लिए एक गुलाम खरीदता है, जो उसकी यौन संबंधित हर इच्छा पूरी करेगा। इस प्रकार सदियों पुरानी गुलामी प्रथा. इस रूप में आज भी बकरार है। मगर यह सब चिंतन, केवल चिंतन ही रह गया है। यही वेश्याओं के दर्द और समाज के प्रति अविश्वास का कारण है। उन्हें विश्वास ही नहीं कि समाज उन्हें सम्मान से जिने का अवसर देगा।

इसे व्यवहार में लाने के लिए जिन प्रयत्नों की जरूरत है, उन्हें कोई सरकार ही अंजाम दे सकती है, इक्का-दुक्का व्यक्ति या संस्था नहीं। यही वजह है कि आज स्वयं वेश्याएं भी पेशे से बाहर आना नहीं चाहतीं।

देह व्यापार को जड़ से समाप्त करने के लिए हमें सबसे पहले हर नागरिक को सामाजिक सुरक्षा की गॅरंटी देनी होगी। वेश्यावृत्ति से संबंधित कानून अथवा आचार संहिता तैयार करते हुए स्त्री की सामाजिक अस्मिता को ही आधार तथा उसका केंद्र बनाया जाय क्योंकि वे वास्तव में हमारी ही बहु-बेटियां हैं, जो शोषण की शिकार हुई हैं।

पश्चिम के कुछ विद्वान इनके आवश्यक बीमे पर भी जोर देते हैं ताकि बुढ़ापा ठीक से गुजरे। उन्हें अपने भविष्य की चिन्ता न हो और वे समाज पर बोझ न हो। सरकार इनकी यूनियनों को मान्यता दे। यदि संभव हो तो इनकी कुछ पेन्शन भी तय कर दी जाय। इसके लिए सरकार उनसे कुछ रकम लगातार लेती रहे। लेकिन यूनियनवाली बात पर वेश्याओं को स्वयं भी सचेत रहना होगा। चूंकि यूनियनें भी शोषण की माध्यम रही हैं। वे अपनी सहकारी सोसाइटियाँ बनाकर अपना व्यवसाय भी शुरू कर सकती हैं। हां इसके लिए चकले की मालकिनें और दलाल इनका जबरदस्त विरोध तो झेलना पड़ेगा।

@ वेश्यावृत्ति की समाप्ति की संभावना : शंकर दास, तत्कालीन सहयक पुलिस आयुक्त दिल्ली

व्यक्तिगत रूप से मैं मानता हूं कि इसे समाप्त करना संभव नहीं।

यदि कानून बन जाये कि गरीबी खत्म कर दो तो क्या गरीबी समाप्त हो जायेगी। वेश्यावृत्ति के संदर्भ में, इनमें से अधिकांश पीढ़ी दर पीढ़ी इसी धंधे में हैं। काफी अधिक, गरीबी से मजबूर हैं।

पुलिस द्वारा कोठों पर छापे मारना : ऐसा माना जाता है कि हम उन्हें तंग करते हैं। लेकिन ऐसा नहीं है। हमें भी उनकी मजबूरी के प्रति सहानुभूति है। हमें देखना होता है कि इन कोठों पर कहीं कोई नई लड़की या बालिग औरत जबरन तो नहीं लायी गयी?

• वेश्यावृत्ति : कानूनी पहलू : वेश्या क्या करें क्या न करें : महिला एवं बालिका अनैतिक व्यापार निरोधक अधिनियम 1956)

देह व्यापार के रूप में वेश्या की कमाई खाना या चकला चलाना अपराध है।

कोई अकेली स्त्री खुद अपने लिए पेशा करना चाहे तो उसपर कोई पाबंदी नहीं।

कोई भी स्त्री जो स्वयं अपने लिए पेशा करे, उसके लिए जरूरी है कि वह अपने मकान के बाहर नामपट्ट लगवा ले कि यहाँ फलां वेश्या रहती है और उसकी दरें, इस प्रकार हैं। वह अखबारों में अपना विज्ञापन भी दे सकती है लेकिन यह अखबार की मरजी होगी कि वह उसे स्वीकार करें या नहीं।

वेश्या ये काम नहीं करेगी---

मुंह से बोलकर, इशारे से या अंग प्रदर्शन से किसीको फांसना, किसी रहगीर पर हाथ डालना या आवारा घूमना, कोई भी ऐसी हरकत जिससे आसपासवालों के जीवन में खलल पड़े अथवा सार्वजनिक शिष्टता और शांति व्यवस्था भंग हो। इससे कहा जा सकता है कि हमारे कानून का उद्देश्य संभवतः केवल इतना ही है कि अगर वेश्यावृत्ति होनी है तो वह शांतिपूर्वक और व्यवस्थित ढंग से होती रहे।

मई 2023 में मुंबई के एक सत्र अदालत ने मैजिस्ट्रेट का आदेश रद्द करते हुए आश्रयगृह को एक 34 वर्षीय महिला को रिहा करने का आदेश दिया, जिसे देह व्यापार के आरोप में वहां(आश्रयगृह)में रखा गया था। अदालत ने कहा कि वेश्यावृत्ति को तभी अपराध कहा जा सकता है, जब ऐसा सार्वजनिक स्थल पर किया जाता है और जिससे दूसरों को दिक्कत होती है।

- क्या वेश्यावृत्ति कानूनन वैध हो? : कुछ पहलू : रमेश बतरा

दुनिया के कई देशों में वेश्यावृत्ति कानूनन वैध है और वहाँ इस व्यवसाय में आनेवाली इच्छुक महिलाओं को सरकारी तौर पर लायसन दिया जाता है। क्योंकि वहाँ यह माना जाता है कि, कितना भी कड़े से कड़ा कानून बने, दलाल कोई न कोई रास्ता निकाल ही लेते हैं। इससे बेहतर है कि इसपर सतर्क निगाह रखते हुए इन्हें अपना काम करने दिया जाय। फिर भारत में तो इससे संबंधित कानून के अनुसार यह अवैध होते हुए भी ऐसा लगता है, यह वैध है।

भारत में वेश्यावृत्ति को इस नज़रिए से नहीं देखा गया। भारत सरकार को इसके निषेध में ही भलाई नज़र आयी। 1956 में इस आशय का एक प्रस्ताव पास करके 1958 में एक कानून लागू कर दिया गया कि वेश्यावृत्ति एक अपराध है और इससे जुड़े लोगों को ' सप्रेषन ऑफ़ इमॉरल ट्रैफिक अॅक्ट की धारा 18 के अंतर्गत ' गिरफ्तार किया जा सकता है। इसकी रोकथाम के लिए प्रांतीय सरकारों ने भी कई कानून बनाये जैसे यू.पी. में गर्ल्स प्रोटेक्शन अॅक्ट 1929, -मद्रास में एस.आय.टी अॅक्ट 1930, -बंगाल में एस.टी.अॅक्ट 1933, -बम्बई देवदासी अॅक्ट 1934, -मैसूर एस.आय.टी अॅक्ट 1952 आदि----लेकिन ऐसे कानून का क्या फायदा, जिसके रहते अपराध पहले से भी अधिक फलता-फूलता रहे। इससे अच्छा है कि इसे वैध बनाया जाए जिससे कम से कम वेश्याएं पुलिस शोषण से मुक्त हो जायेगीं। इन लोगों का तर्क है कि वेश्यावृत्ति, समाज के लिए आवश्यक बुराई है, इसलिए इसे समाज के हित में वैध कर दिया जाना चाहिए। तो कुछ के अनुसार, " ये बिमारियां बेचती हैं, जिसका सामाजिक स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है, अतः इसका निषेध आवश्यक है।"

कुछ लोगों का मत यह भी है कि इसपर फिलहाल प्रतिबंध न लगाकर सरकार पहले इसका जो आधार है, गरीबी उसे दूर करे फिर प्रतिबंध की बात सोचे।

इस कानून की कुछ तकनीकी दिक्कतें भी हैं। जब कोई दलाल, वेश्या या ग्राहक पकड़े जाते हैं, उनपर मुकदमा चलता है, तो उसकी कारवाई पूरी होने के लिए गवाह की जरूरत पड़ती है। तब कोई इज्जतदार आदमी पुलिस की मदद नहीं करता और मुकदमा खारीज हो जाता है। कई बार पुलिस अपने आदमी कोठे पर भेजकर वेश्यावृत्ति में लिप्त लोगों को गिरफ्तार करती है। लेकिन ऐसे मामलों को अदालत जायज नहीं मानती। चूंकि यहाँ ट्रैप लगाकर किसी को पकड़ना वास्तव में पकड़ना नहीं, उनको फांसना है, जोकि नितांत अनैतिक और घृणित काम है।

कैबरे नृत्य

कैबरे नृत्य पाश्चात्य सभ्यता की देन है। इसकी शुरुआत फ्रांस में शुद्ध कलात्मक नृत्य के रूप में हुई थी। इसमें शरीर के अंगों को संगीत की लय के अनुसार थिरकाया जाता था। अपने मूल में यह नृत्य है, जो कमर और पेट में तेज धुनों के बीच लहरें पैदा कर दें, जो वस्त्र पहने-पहने भी हो सकता है। मगर आज इसको विकृत रूप दे दिया गया है।

केरल के कोजिकोड शहर में कैबरे नर्तकियों ने देश में पहली बार, बीसवीं सदी के नववें दशक के शुरू में, अपनी यूनियन बनायी। पुलिस को यह बात अच्छी नहीं लगी और उन्होंने शहर के तमाम होटलों की घेराबंदी कर डाली, जहाँ कैबरे होते थे। तीस नर्तकियां गिरफ्तार की गयीं। पुलिस का कहना था कि यहाँ होनेवाले नृत्य असामाजिक हैं।

एक संवाददाता सम्मेलन में युनियन की सचिव दीपा ने कहा, “ यह हमारी रोजी-रोटी का जरिया है। यह पेशा हमें इसलिए अपनाना पड़ा चूंकि हमारे माँ-बाप शादी के लिए दहेज नहीं जुटा सकते इसलिए हमारी शादियां नहीं हुईं। हम गरीब परिवारों की लड़कियाँ हैं। हमारे पेशे को बदनाम न किया जाय। क्या यह सामाजिक अपराध नहीं है कि हमें मजबूरन यह पेशा अपनाना पड़ा। ऐसी कौनसी बुराइयां हैं, जो आज के मनुष्य में नहीं दिखतीं।.....कैबरे, देखनेवालों के नज़रिए पर निर्भर है। हम केवल वही कपड़े इस्तेमाल करते हैं, जो सर्कस में इस्तेमाल होते हैं। उनका विरोध क्यों नहीं होता? फिल्मों में सेक्स प्रदर्शन समाज के ठेकेदारों को परेशान नहीं करता। हम कोई नग्न नृत्य नहीं करते। जालीदार कपड़े पहनकर नृत्य करना कोई नग्न नृत्य नहीं कहलाता।

इस विषय पर नवम्बर 1980 में दिल्ली उच्च न्यायालय के न्यायाधीश महोदय एम.एल.जैन ने एक ऐतिहासिक निर्णय दिया है कि भारतीय दंड संहिता के अनुसार कैबरे नृत्य दंडनीय नहीं है। आगे कहा है कि कला और साहित्य में कुछ भी अश्लील नहीं है।

एक नर्तकी ने औपचारिक भेंट के दौरान कहा कि, “ संवेदनाएं तभी मर जाती हैं, जब स्टेज पर आती हूँ। सब कुछ मशीन की भांति होता है।.....दर्शकों से हंसकर बातें करना, आत्मीयता दिखाना, व्यवसाय

का अंग है।.....दर्शकों की प्रतिक्रियाएं भिन्न-भिन्न होती हैं। ज्यादाती के तौर पर कोई हाथ चूमना चाहता है, तो कोई शरीर को स्पर्श.....बस और कर भी क्या सकता है?.....हर शाम तीन या चार शो करने होते हैं। कोई आर्टिस्ट न हो तो ज्यादा भी।

कोई प्रतिक्रियाएं ऐसी भी हैं कि नृत्य देखने के बाद आदमी उत्तेजित हो जाता है और अपने को संतुष्ट करने के लिए अप्राकृतिक माध्यमों का सहारा लेता है। परिणामतः धीरे-धीरे कुंठाओं का शिकार होकर मानसिक और शारीरिक रूप से रोगी बन जाता है। 55 वर्षीय एक सिख व्यक्ति, जो ऐसे नृत्य देखने के शौकीन है ने कहा, " मैं ये नृत्य मन बहलाने के लिए देखता हूं। ये कोई बुरा असर नहीं डालते।"

लेकिन रेस्टोरेन्ट मालिक के शोषण का शिकार तो नर्तकियां होती ही हैं।

- वेश्यावृत्ति से संबंधित कुछ प्रश्न, समाज के विभिन्न क्षेत्र के व्यक्तियों के सामने रखे गये। उनमें से कुछ के प्रति आर्यी प्रतिक्रियाओं का सारांश---

पहली बार वेश्या शब्द सुनने में आया।

पहली बार कोठे पर गये। परिचर्चा ; प्रेम जनमेजय

भारत में जितने भी महानगर हैं, उनमें देह व्यापार का सबसे बड़ा केंद्र कलकत्ता है। यहाँ ' सोनागाछी ' सबसे कुप्रसिद्ध जगह है। प्रतिक्रियाएं-

1)मैं काफी घबराया हुआ था।

2) शारीरिक संबंध स्थापित किये बगैर साहित्यकारों के अनुभवों को तीन प्रश्नों के घेरे में बांधे हुए है।

A) आप गये तो क्या सोच कर गये थे?

B) आपका वहाँ का अनुभव क्या रहा?

C) आपने क्या निष्कर्ष निकाले

" हम यह भूल जाते हैं कि पागलखाने में केवल पागल ही नहीं, और अस्पताल मे केवल बिमार ही नहीं होते। डॉक्टर भी होते हैं। उसी तरह अगर कोई साहित्यकार कोठे पर जाता है तो उसका उद्देश्य केवल शारीरिक संबंध स्थापित करना नहीं होता, समाज की अन्य बुराइयों की तरह इस बुराई को भी सम्यक रूप से परखना हो सकता है।

क्या आप वेश्या से विवाह करना पसंद करोगे?----सुशील शर्मा (सहभाग-नंदन शर्मा, वसंत पांडेय, रमेश ऋषिकल्प, जैमिनी अरुण)-

1) वेश्या से विवाह करने से पूर्व अच्छा हो कि इस व्यवसाय का उन्मूलन या कमसे कम उसे न्यूनतम करने का प्रयास पहले हो और धीरे-धीरे उनका सामाजिक जीवन बनाने पर सोचा जाये।

2) वेश्या से विवाह शारीरिक और मानसिक दोनों ही स्थितियों में अनुकूल नहीं है।

3) परिवार से अलगाव लेना पड़ेगा। उसी तरह समाज से भी अलग-थलग पडने का धोका रहेगा।

क्या आप वेश्या को बहु बनाना पसंद करोगे? (सहभाग..सरला मुदगल, सावित्री पंत, मार्था सिंह, हरमिंदर कौर, पुष्पा अवस्थी, कृष्णकांता शास्त्री, प्रकाशवती)....

“ मैं इस विषय पर उदार विचार रखती हूँ। फिर भी कई शंकाएं हैं जो इन विचारों की उदारता पर प्रतिबंध लगा देती हैं। पहली शंका तो यह है कि क्या वह स्वेच्छा से देह व्यापार करती आयी है? यदि ऐसा है तो फिर वह मेरे घर का पवित्र-शांत वातावरण स्वीकार नहीं कर पायेगी और मैं घर की शांति में विघ्न कतई सहन नहीं करूंगी। अगर वह लड़की किसी बलात्कार या अपहरण का शिकार है तो उसे सुधारना, प्यार देना, उसके व्यक्तित्व को बनाना मेरा दायित्व होगा। यह तो अंगिकार करने की बात हुई। घर में आ जाने के बाद, हमारी पारिवारिक स्वीकृति के बाद भी क्या यह समाज परिवेश, उसे सहज जीवन जीने देगा? क्या हर निगाह सवालिया बनकर उसका निरीक्षण नहीं करेगी? क्या हरेक व्यक्ति उसको शंको करने का अपना सुखद विचार सहज ही छोड़ देगी? क्या उस असहजता का मेरे मानसिक स्वास्थ्य और सामाजिक प्रतिष्ठा में अंतर नहीं पड़ेगा?

@ पति वेश्यागामी हो या बन जाये तो? (सहभाग....अरुणा कपूर, संध्या नेगी, मधु भंडारी, रतिविंदर कश्यप, प्रसाद गोकलानी, समा जैदी, उषा शर्मा, रामी)

“कोई भी स्त्री नहीं चाहेगी कि उसके अधिकार छिनकर दूसरी की झोली में डाल दिये जाये।”

“ साम, दाम, दंड, भेद से रास्ते पर लाने के प्रयास।”

“ यह मसला बड़ा नाजुक है।.....अपने आप में उपजीं कमियों को भी अनुभूत करना होगा।.....देखिए एक गलती के पीछे पूरा जीवन दांव पर नहीं लगाया जा सकता। फिर मैं तो दाम्पत्य जीवन को मधुर से मधुरतम बनाने में विश्वास रखती हूँ न कि टूटन में, चाहे इसके लिए मुझे कितनी ही कुर्बानियां क्यों न देना पड़े?”

लेकिन घर-घर में चौका-बुहारी करनेवाली रामी ने छुटते ही कहा, “ मैं मना करू, तो ये मानेगा?”

परस्त्री या परपुरुष इनके बीच संबंध, सामाजिक दृष्टि से भी स्वस्थ नहीं समझे जाते। फिर जहांतक परिवार का संबंध है, जब इन संबंधों का पता परिवार को लगता है तो पति-पत्नी में भावनात्मक रिश्ते तो समाप्त होंगे ही, बच्चों की मानसिकता पर भी इसका बुरा असर होगा।

- वेश्या व्यवसाय यह समाज के लिए अभिशाप है या समाजसेवा है?

विश्व में इने-गिने समाज ही हैं, जिनमें वेश्याएं नहीं हैं। भारत के मध्यप्रदेश में ‘ घोटूल ’ का पालन करनेवाले माडिया जनजाति समाज एक ऐसा समाज है। एक-दो शायद अफ्रीका और द. अमेरिका में हैं। नहीं तो वेश्यावृत्ति किसी न किसी रूप में विश्व के हर देश, हर समाज में मौजूद है, आज से नहीं तो प्रागैतिहासिक काल से। तभी तो इसे दुनिया का सबसे पुरातन धंधा कहते हैं।

यूनानी सभ्यता में स्त्रियों के अलावा पुरुष भी वेश्याओं की भूमिका अदा करते थे। दोनों प्रकार की वेश्याएं दास-दासियों से छटती थीं। हिंदू, मिश्री, चीनी जैसी अन्य सभ्यताओं में वेश्यावृत्ति धर्ममूलक थी। हिंदुओं में वेश्यावृत्ति का प्रचलन देवदासियों के माध्यम से हुआ। कुछ सभ्यताओं ने वेश्यावृत्ति को एक स्वतंत्र धंधे के रूप में स्वीकार किया।

कुछ ऐसे समाज थे और आज भी हैं जिनमें वेश्यावृत्ति चंद चुनी हुई स्त्रियों तक ही सीमित नहीं है। इन समाजों की प्रत्येक स्त्री, इच्छा या आवश्यकता के अनुसार स्थायी या अस्थायी रूप में वेश्या बनने को स्वतंत्र है। पांच सौ वर्ष पूर्व, आंग्ल-सैक्सन समाज ऐसा ही समाज था। पोप द्वावितीय ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि स्कॉटलैंड के डाकुओं के डर से, इंग्लैंडवासी खुद तो एक मिनार में जाकर छुप जाते थे लेकिन अपनी औरतों को बाहर छोड़ देते थे, ताकि अगर डाकू चाहे तो उन्हें भोगकर चले जाये। उन्हें अपनी औरतों की इज्जत से प्यारा अपना सामान-असबाब था।

ऐसे भी समाज थे और आज भी हैं, जिनमें गृहस्वामी अपनी पत्नी या पुत्री को किसी अतिथि को रात भर के लिए सौंप देता है। यह अतिथि सत्कार का हिस्सा और पुण्य का काम समझा जाता है। अर्थात् वे औरतें वेश्याएं नहीं ही समझी जातीं।

वेश्यावृत्ति पर रोजलिंग विल्किन्सन ने एक बहुत अच्छी किताब लिखी है, ' वूमेन ऑफ दी स्ट्रीट '। लड़कियाँ वेश्या क्यों बनती हैं? इसकी तलाश में लेखिका ने एक बहुत सटीक बात कह दी है, " असंयम, स्वच्छंद संभोग की ललक और समाज से अलगाव की वृत्तियाँ, जिन लड़कियों में बलवती होती हैं वे अनुकूल अवसर मिलते ही वेश्यावृत्ति की राह पर आ जाती हैं। अपने विकृत, विरूपित और अव्यवहारिक संबंधों से त्रस्त, वे समझती हैं कि वेश्या बनकर उसे इन संबंधों और सारे बंधनों से मुक्ति मिल जायेगी।

- अगर पड़ोस में वेश्या रहती हो तो? : परिचर्चा (सहभाग : चित्रा मुदगल, मुक्ति वर्मा, रजनी चौहान आदि)

आम तौर पर तो कोई इसे पसंद नहीं करेगा। लेकिन अधिकतर शिकायत करने के पचड़े में नहीं पड़ेंगे। चुप्पी साध लेंगे।

कुलीन कॉलनियों ? छोड़िए इस पाखंड को। इन कुलीन कॉलनियों में बड़े-बड़े स्मगलर रह रहे हैं, घूसखोर, सूदखोर भ्रष्ट अधिकारी, दो मुहें राजनीतिज्ञ, जमाखोर व्यापारी, और दिन ब दिन सुविधाओं की होड़ में आकंठ बिके मध्यम वर्गीय परिवार, कर-चोर रह रहे हैं। तो अगर कॉलगर्ल रह रही है तो उससे हमारी सामाजिक नैतिकता को कैसे खतरा पैदा हो रहा है, उपरोक्त लोगों से अगर नहीं तो। कॉलगर्ल सड़कों पर नंगी तो नहीं घूमतीं।

खतरा तो सही मायनों में हमसे हमीं को है। हमसे ' संस्कार ' नामक ' संज्ञा का सारोकार बहुत पहले छुट चुका है। बिके हुए लोग जब किसी तड़के पर पूरे समाज की नैतिकता की जिम्मेदारी थोप, चिंतक, सुधारक या रक्षक बने, चिंता प्रदर्शित करने लगते हैं तो खूब हंसी आती है।

तो तुम्हें कॉलगर्ल्स से सहानुभूति है?

मुझे न उनसे सहानुभूति है, न तकलीफ है। दुःख सिर्फ इस बात का है कि इन युवतियों या औरतों को समाज में निकृष्ट अपराधी या हेय दृष्टि से देखा जाता है। उनके पास जानेवाला पुरुष मात्र न अपराधी है, न निकृष्ट है, न हेय है। दोनों की ओर देखनेवाली दृष्टियों में बहुत बड़ा अंतर तो है ही। ये दोहरे मापदंड घृणास्पद तो हैं ही। ये हमें कोई संस्कार, विरासत नहीं देते।

कभी तुम्हारे सामने कोई मजबूरी आयी तो क्या तुम सेक्स से कमाना अनुचित नहीं समझोगी?

“ निहायत बेहूदा सवाल है।”

• वेश्याओं का दर्जा

वेश्याओं को व्यवसाय की दृष्टि से किस श्रेणी में रखा जाये? सन् 1981 की जनगणना के दरम्यान यह सवाल उठा तो अधिकारी गण अजीब परेशानी में फंस गये चूंकि वेश्यावृत्ति ऐसा व्यवसाय है, जिसे हमारा संविधान न स्वीकार करता है न अनुमति देता है। इस कारण किसी स्त्री की पूरी जानकारी दर्ज करते समय यह नहीं लिखा जा सकता था कि व्यवसाय वेश्यावृत्ति है। लेकिन वे वेश्याएं तो हैं और इस देश की नागरिक भी हैं अतः उन्हें छोड़ा भी नहीं जा सकता था। और जगह का तो पता नहीं लेकिन ग्वालियर नगर निगम के एक अधिकारी ने फतवा निकाला कि उन्हें ‘ भिखारी ’ वर्ग ‘ में रखा जाये।

संक्षेप में : देह व्यापार का आदिम चलन : वैदिक काल से वर्तमान तक

- मेनका, जिसे इंद्र ने अपने सिंहासन की रक्षा के लिए, विश्वामित्र की तपस्या भंग करने भेजा था, वह भी व्यवसाय से वेश्या ही थी। उर्वशी आदि भी इसी श्रेणी में आती थीं। मेनका और विश्वामित्र के समागम से शकुंतला का जन्म हुआ जिसका आगे दुष्यंत के साथ प्रणय चला। उसके पुत्र भरत के नाम पर हमारे देश का नाम भारत पड़ा।
- उसके बाद भी इतिहास में नारी, पुरुषों के बीच युद्ध का कारण बनी रही। जिसका निर्णय अन्त में यह हुआ कि जिस स्त्री के कारण लोगों में तलवारें खींच सकती थीं ऐसी कुछ महिलाओं को कहने के लिए तो ‘ नगरवधु ’ का सम्मान दिया गया लेकिन उनका दर्जा सार्वजनिक भोग की वस्तु से अधिक नहीं था। यह प्रचलन बौद्ध काल तक जारी था ही, इसी कारण ‘ आम्रपाली भी ’ नगरवधु होने के लिए मजबूर हुई, जिसकी प्रति रात्रि के दर का उल्लेख भी इतिहास में मिलता है।
- महाभारत तक में तो वेदों की ही भांति वेश्याओं का वर्गीकरण मिलता है---
1) राज वेश्या 2) नगर वेश्या 3) गुप्त वेश्या (कॉल गर्ल) 4) देव वेश्या (देवदासी) 5) ब्रह्म वेश्या (तीर्थस्थलों पर रहनेवाली)
- शिलालेख और अन्य प्रकार से लिखित इतिहास का आरंभ बौद्ध काल में होता है।
- इसी दरम्यान किशोरी कन्याओं का चयन कर, उन्हें प्रशिक्षित कर चौसठ कलाओं में पारंगत कर पेशे में उतार दिया जाता था। वे न तो विवाह कर सकती थीं और न बच्चे पैदा कर सकती थीं। इन्हें राज्य का संरक्षण प्राप्त रहता था। राज्य की सम्मानित नागरिक मानी जाती थीं। वे हमेशा रथ पर सवार होकर निकलती थीं। कुछ जातक कथाओं में यहाँ तक उल्लेख है कि जब ये किसी समारोह आदि में हिस्सा लेने निकलती थीं तो गृहिणियां रास्ते के दोनों ओर खड़ी होकर उनपर पुष्पवर्षा करती थीं। इन्हें ‘ जनपद

कल्याणी ' भी कहा जाता था। ये केवल मनोरंजन ही नहीं करती थीं तो राजा की महत्वपूर्ण सलाहकार भी होती थीं। उदा. राजा विक्रमादित्य की मदनमाला, चंद्रगुप्त मौर्य की सलाहकार चित्रलेखा, अशोक की चंद्रसेना। वसंतसेना, महानंदा, पिंगला आदि की चर्चा तो लगभग सभी साहित्यकारों और नाटककारों की कृतियों में उपलब्ध है। कहा जाता है, शायद ही कोई नाटक होगा जिसमें वेश्या की भूमिका न हो। मृच्छकटिक की वसंतसेना तो एक अमर चरित्र है। जैनकाल में एक गणिका थी—गुणवति। उसके यहाँ से कोई प्रेमी कभी खाली हाथ नहीं लौटता था। वह उसे कोई न कोई भेंट अवश्य देती थी। अर्धकाशी भी एक धनाढ्य की बेटी थी। मगर वैवाहिक जीवन उसे रास नहीं आया और वह गणिका बन गयी। उसके रूप-लावण्य का जादू इस कदर बढ़ता रहा कि उसके एक रात्री का मूल्य, काशी राज के एक दिन की आमदनी का आधा हो गया। इसी कारण उसे अर्धकाशी कहा जाने लगा। लेकिन आयु के चालीसवें वर्ष में वह बुद्ध के शरण में चली गयी और अपने समय की श्रेष्ठ भिक्षुणी बनी।

- वेश्या व्यवसाय : रानी चॅटर्जी

वेश्या बनने के कारण : देह व्यापार की मानसिकता

@ फ्रायड ने इस संदर्भ में वेश्या के बाल्यावस्था की प्रताडनाओं और तिरस्कारपूर्ण आरंभिक जीवन को महत्वपूर्ण माना है। यही नहीं, उनके अनुसार तो कई बार पति द्वारा प्रताडित होने से पत्नी भी वेश्या बनने को विवश हो जाती है।

@ माँ-बाप के प्यार का अभाव, उनकी नज़रों में खुद को गिरा महसूस करना, इनसे लड़की में एक प्रकार की बदले की भावना घर कर जाती है।...आदमी से उसे घृणा हो जाती है।...तब वह खुद गिरकर भी परिवार से बदला लेना चाहती है।...और यही प्रतिशोध उसे वेश्या बनने को मजबूर कर देता है।

@ दलाल का प्रारंभिक जीवन भी किसी वेश्या के आरंभिक पारिवारिक जीवन से मिलता-जुलता ही होता है। जहाँ वेश्या बनने के पीछे पिता का कटू व्यवहार प्रमुख भूमिका निभाता है, वहीं माँ का कटू व्यवहार बेटे को दलाल बनने की ओर ठेलता है।

@ एक दलाल और वेश्या के संबंध भी अजीब ही होते हैं। दोनों ही एकदूसरे से न तो यौन संबंध स्थापित करते हैं, न सद्भाव। फिर भी उनका संबंध मानसिक तौर पर टिकाऊ होता है।

@ वेश्यावृत्ति का सारा दारोमदार ग्राहक पर होता है और उसकी मानसिकता तैयार करता है उसका अपना परिवार.....उसकी यौन मजबूरियाँ और वे कुंठाएँ जो कहीं न कहीं उसके अंदर लम्बे समय से आकार ले रही होती हैं।

@ धन और सेक्स के लिए ही वेश्यावृत्ति होती है, ऐसा नहीं है। इसके साथ तमाम मानसिक कारण जुड़े होते हैं, जो एकाएक पैदा नहीं होते। इनके पीछे एक लम्बी प्रक्रिया होती है।

@ मोल-भाव करते ही सेक्स संबंध का महत्व दौरेम दर्जे का हो जाता है और क्षणिक काम-सुख प्रमुख हो जाता है।

@ एक विचारधारा इसे पूंजीवाद की देन मानती है। यह धारणा भी अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में मजबूरन शरीर बेचनेवाली लड़कियों को देखकर ही बनी है। लेकिन केवल इस धारणा के आधार पर वेश्यावृत्ति का निराकरण नहीं हो पाया है।

संक्षेप में :

1) माता-पिता, संरक्षक या पति की मृत्यु 2) गरीबी, निराशा, उदासीनता 3) माता-पिता, संरक्षक, पति आदि का अभद्र व्यवहार या उपेक्षा 4) नाखुश पारिवारिक संबंध 5) मर्जी के विरुद्ध शादी 6) प्रेम में धोखा 7) पति का लंपट होना, रखैल की उपस्थिति 8) माता-पिता, भाई, पति की सुविधाओं के लिए 9) रिश्तेदारों द्वारा बहकाया जाना 10) बुरी संगत 11) अपहरण 12) पारंपारिक वेश्यावृत्ति 13) वातावरण का प्रभाव 14) तीव्र यौनेच्छा या जुगुप्सा 15) अवैध यौन संबंध 16) अवैध गर्भ 17) बलात्कार 18) सुखमय जीवन की इच्छा 19) वेश्यावृत्ति के प्रति रोमांच 20) विवाह से घृणा 21) निकृष्ट नैतिक मूल्य 22) किसी के प्रति बदला लेने की भावना 23) वस्तुस्थिति से अनभिज्ञता।

@ गुप्त रोगों की वाहक—

वेश्या : गुप्त रोगों का सबसे बड़ा स्रोत : डॉ. मनोरमा जैन

मोटे तौर पर, इन रोगों को ' विडी ' कहते हैं। ये रोग, एक समय (सातवें दशक में), देश में मलेरिया एवं क्षय रोग के बाद भयानकतम फैलनेवाले रोगों में तीसरे नंबर पर थे। गुप्त रोग स्त्री और पुरुष इनके गुप्तांगों में लगते हैं। इसलिए इन्हें गुप्त रोग कहते हैं। लोगों का कहना यह भी है कि इन रोगों से ग्रस्त मनुष्य इन्हें गुप्त रखना चाहता है। रोगों के बारे में वे साफ-साफ नहीं बताते। आदमी को लगता है कि अगर पता चल गया कि उसे यह रोग है तो लोग उससे घृणा करने लगेंगे।

ये रोग यौन संसर्ग से होते हैं। ये आरंभिक स्टेज पर तो पूरी तरह ठीक हो सकते हैं। लेकिन ये जब मनुष्य के शरीर को ही अपना घर बना ले तो इनका इलाज कठिन हो जाता है। ये रोग एक से दूसरे को लगकर इतने तेजी से फैलते हैं कि रोगी को इसका पता ही काफी देरी से लगता है।

- 1) **सिफिलिस** : भारत में पहले यह बिमारी नहीं थी। यह अंग्रेजों की देन है। इसलिए इसे ' फिरंग ' भी कहते हैं।
- 2) **गनोरिया**: पेशाब में पस आने लगे तो समझो यह रोग हो गया। गुप्तांग पर पहले एक हल्की सी फुंसी उभरती है जो बाद में पस से भर जाती है। उपदंश भी सिफिलिस की तरह ही होता है। पेशाब करते समय जलन होती है। पेशाब में खून भी आ सकता है, जिससे व्यक्ति चाहकर भी पेशाब नहीं कर सकता।

चयनित कहानियाँ

नारी यातना

सारिका विशेषांक : एक (अंक 322-01 से 15 दिसम्बर 1982)

1) **जो न हारी : सॉमरसेट मॉम : अंग्रेजी कहानी**

वह अपने बच्चे के मोह में पडकर, विजित देश की युवती को अपना समझ बैठा था। पर क्या वह विजेता देश के युवक को अपना बना सकी? और क्या हुआ तब, जब उसका बेटा पैदा हुआ?—जीत और हार का सही अर्थ करती कहानी-----

2) **करवाँ चौथ : कर्तारसिंह दुग्गल : पति की प्रताड़नाओं और अस्विकृतियों के जहरीले घूंट भरते रहने के बावजूद अगर कोई स्त्री करवाँ चौथ का व्रत रखती है, तो इसे क्या माना जाये? क्या ये रिश्ते भावात्मक होते हैं या एक जरूरी सामाजिक संबंध? हिंदू संस्कृति में एक महत्वपूर्ण व्रत के नवीनतम अर्थ खोजती कहानी-----**

3) **आंखों की चमक : जॉन ओ हारा : अमेरिकी कहानी**

दस वर्ष पूर्व जिससे उसने प्रेमविवाह किया था, उसे अब वह पसंद नहीं करता, और न ही उसे तलाक देता है। कहीं उसकी हत्या का उसने कोई तर्कसंगत आधार तो नहीं ढूँढ लिया? नारी यातना को एक नये कोण से प्रस्तुत करती व्यथा-कथा-----

4) **उलझे संबंध : आरिगपूडि : पुरुष प्रधान समाज से लड़ने के लिए अंबिकादेवी को भारत छोड़कर सिंगापुर आना पड़ा, पर क्या वहाँ आकर भी उन्हें वह शांति मिल सकी, जिसकी उन्हें तलाश थी?----**

5) **अंतर्द्वंद : सकल : पुराण प्रसंग (द्रौपदी की पीड़ा)**

6) **भोली : बीर राजा : कैसे होते हैं जिन्दगी के वे हादसे, जो नारी मन को भीतर-बाहर से तोड़कर रख देते हैं.....पल-पल घृणा, आतंक और अविश्वास में मरते हुए, जी रही औरत की करुण कथा। (दूसरों के अमानवीय व्यवहार के कारण नारी स्वयं को क्यों कष्ट दे?)**

7) **उसने कुछ नहीं कहा : चंचल : पिछले दिनों पाकिस्तानी जेलों से छूटे जिन सत्रह कैदियों को भारत वापस भेजा गया, बदामी उसमें से एक है। अठारह साल की उम्र में एक दिन अपने मवेशियों के साथ किसी तरह सीमा पार चली गयी थी। और अब जब वापिस आयी है, उसकी उम्र तीस पार कर रही है। इसके बीच उसके साथ जो कुछ हुआ, वह किसीको भी पागल कर देने के लिए काफी था। पुलिस से पुलिस, ऑफिसर से मातहत, मिलिटरी से जेल, जेल से कैदी। इन सबके बीच की घटनाएँ शब्दों की पकड़ से बाहर हैं। (जुर्म को छिपाने के लिए देश की आजादी का, देशभक्ति का हवाला दे दिया जाता है।)**

8) **बुरदाफरोश : तबस्सुम मेहताब कुरैशी : सिंधी कहानी**

मैंने सोमल को एक दूर के गाँव में, अपने जाननेवालों में ब्याह दिया, साडे तीन हजार के बदले। अब वह अपने घर में बहुत सुखी है। अब आप ही बताइये, मैंने नेकी की है या मैं बुरदाफरोश हूँ?

- 9) **ममता और कफन : रिचर्ड राइट : अंग्रेज़ी निगो कहानी :** वह अपने बेटे के लिए लायी थी कफन और बंदूक की गोली|.....माँ और ममता का इम्तिहान लेती रोमांचक घड़ियाँ|
- 10) **अपमानजनक स्थिति में एक महिला : ज्यॉ पॉल सार्त्र : फ्रांसीसी कहानी**
सार्त्र के महान आत्मकथनात्मक उपन्यास ' द एज ऑफ रिजन ' (प्रथम खंड) का एक तीखा अंश, जिसमें सार्त्र की संतप्त अंतर् आत्मा ने नारी यंत्रणा के एक अनजाने आयाम को बड़ी सूक्ष्मता, यथार्थता और निर्ममता से उद्घाटित किया है।
- 11) **आधी औरत : सआदत हसन मण्टों :** उसका पति उसे नोटों की गड़डी लाकर देता तो वह देर तक गड़डी को अपनी झोली में डालकर लोरी देती रहती और फिर उसे किसी काल्पनिक झूले में सुला देती। माँ बनने की और माँ बनकर माँ के दायित्व को निभाने में लगी एक युवती की लोमहर्षक बलिदान गाथा----
- 12) **संस्कार और सजा : आल्टुअस हक्सले : अंग्रेज़ी कहानी**
क्यों कोई नारी मौका पड़ने पर, अकल्पनीय सजा को भी स्वीकार कर लेती है? क्यों अस्वीकार या विद्रोह की बात उसके मन में नहीं उठती? वे कौनसे संस्कार हैं, जो उसे दारुण यातनाएं सहने के लिए मानसिक और शारीरिक रूप में जरूरत से ज्यादा सक्षम बना देते हैं?
- 13) **सांप सीढी : श्याम निर्मम :** कैसे होते हैं वे हालात, जब एक औरत के सपने और सच में कोई फर्क नहीं रह जाता। उसे सपने में ही नहीं, असलियत में भी सांप ही नज़र आता है.....लीलने को तैयार सांप.....पर क्यों?
- 14) **यंत्रणा की प्रतिध्वनि : जॉन स्टेनबैक : अमेरिकी कहानी**
जाहिर था कि उसने आत्महत्या की कोशिश की थी....मगर क्यों? और क्यों इस रहस्य को लगातार दबाने की कोशिश की गयी और क्यों यह मामला खुलता ही चला गया.....?
- 15) **तीन सतियाँ : बूटासिंह : पंजाबी कहानी : नारी प्रायः** हर मुश्किल में भगवान के समक्ष गिड़गिड़ाने लगती है। पर सच तो यह है कि माला फेरने से मुश्किलें हल नहीं होतीं, और न कभी भगवान दौड़ा-दौड़ा आया है। सास, बहू और फिर बहू यानी तीन पीढ़ियों के मानसिक अलगाव और पुरुष से टकराव की लोमहर्षक कहानी----
- 16) **बंद कमरे का सफ़र : रॉबिन शॉ पुष्प : उपन्यास अंश**
मरद स्साले मूरख बनाते हैं औरतों को। बस दो वक्त का खाना और साडेपांच गज कपड़ा थमा देते हैं हमको और खुद....। एक वेश्या का दर्शन जो सामाजिक मूल्यों की फिर से पड़ताल करने को बाध्य करता है।
- 17) **वक्त का जबाब : तारिक रशिद बोबी : पाकिस्तानी कहानी**
अब्बू की ख्वाहिश थी कि रशो अपने ससुराल एक बहू नहीं, बल्कि बेटी बनकर जाये। मगर उस सवाल का जबाब उनके पास नहीं था जो कभी रशो ने अपनी अम्मी से पुछा था...आप खुबसूरत है, पढ़ी-लिखी है, कमाती है, फिर अब्बू से डरती क्यों है?
- 18) **तालाबंद मुठ्ठी की कशिश : बाबुराव बागुल ; मराठी कहानी**

वात्सल्य, ममता, स्नेह और करुणा से भरा माँ का दिल तार-तार हो गया। आखिर वह कौन सी मजबूरी थी, जिसके कारण एक माँ को खिलौना बन जाना पड़ा।

19) **बीस या पच्चीस : मधु किशकर : जन्म : 06-04-1951**

भारत में नारी विमुक्ति आंदोलन की एकमात्र पत्रिका 'मानुषी' (हिंदी-अंग्रेजी) की वे संपादिका और प्रकाशिका हैं। 'मानुषी' संघर्षशील स्त्री संगठन भी है जो नारी के प्रति अन्याय के हर मोर्चे पर जुझता है। दिल्ली विश्वविद्यालय के सत्यवती कॉलेज में वे अंग्रेजी की प्राध्यापिका हैं। हिंदी में उनकी यह पहली कहानी है।

20) **आधी उम्र की पूरी औरत : जगवीर सिंह वर्मा**

माँ सुदामा नहीं चाहती थी, परसादी नहीं चाहती थी, रामप्रसाद भी नहीं चाहता था और दूसरे लोग भी नहीं चाहते थे, फिर भी रामप्रसाद और परसादी ने सात फेरे लिये। सचाई क्या थी? वे बेमेल विवाह के शिकार हुए थे या परिस्थितियों के? गाँव के मर्दों और अदालती मर्दों के बीच पिसती एक विधवा की अंतर्व्यथा----

अंक 323

1) **खूबसूरत : कैथरीन मेंसफील्ड : न्यूज़ीलैंड की कहानी**

शरीर और शक्ति के आतंक से अलग, वे कौनसी प्रवृत्तियाँ हैं, जो स्वयं नारी को स्वयं के लिए ही यातना बटोर लेने को उत्सुक ही नहीं करती बल्कि पुरुष के समक्ष महज शरीर बन जाने को भी मजबूर कर देती हैं? सौंदर्य के प्रति नारी मन की अहितकारी चिंताओं को रेखांकित करती, स्त्री मन की आत्मालोचनात्मक कहानी....

2) **जबड़ों में फंसी एक मासूमा : गोरे विडल : अमेरिकी उपन्यास अंश**

हो सकता है किसी देश की राजनीति और व्यवस्था में नारी शोषण की गुंजाइश न हो, फिर भी क्या वजह है कि परिवार, समाज और आर्थिक संबंधों की जटिल दुनिया में वह एक उपयोग में लायी जानेवाली वस्तु की तरह ही इस्तेमाल होती हुई देखी गयी है। अमेरिका में औरत की सामाजिक स्थिति उजागर करती कहानी.....

3) **कातिल कौन? : ताबंदा लारी : पाकिस्तानी कहानी**

उसकी ससुरालवाले अपने आपको उसका कातिल मान रहे थे, मगर उसने तो बहुत पहले अपने कातिलों को पहचान लिया था। फिर क्या वजह थी कि कानून उसके बयान पर विश्वास न कर सका.....

4) **दस्तक : नासिरा शर्मा : इस बाग को लगानेवाले चार हाथ थे। पर फलों को तोड़ने के लिए दो हाथ ही रह गये। किसने जुदा किया था दूसरे दो हाथों को? तकदीर ने या खानदानी अहम के टकराव ने?.....औरतें क्या थीं, बलिदान की मूर्ति या फिर बलिदान की वेदी पर चढ़ाया जानेवाला बलि का बकरा?.....यहाँ तो हम, खानदानी मान-मर्यादा का कब्रिस्तान है, जहाँपर हमेशा एक नयी कब्र खुदती है और बुजुर्गों की इच्छाओं के कफन में लिपटी लाश गाड़ दी जाती है।**

5) **हृद से हृद तक : रामदरश मिश्र**

कैसे होते हैं वे हालात जो एक बेटी को बेटी, पत्नी को पत्नी, माँ को माँ और थक-हार कर वेश्या बननेवाली नारी को वेश्या भी नहीं रहने देते? एक मार्मिक यातना कथा

6) **देशद्रोही की माँ : मॅक्झिम गोर्की : रूसी कथा**

क्या वजह थी कि उसने अपने ही हाथों अपने बेटे की हत्या कर डाली और फिर सुकून की सांस ली। माँ-बेटे के जज्बाति रिश्ते की तस्वीर को तोड़ती, देश-प्रेम की गौरव गाथा.....

7) **उसासों में जन्मी ' सुरजितो ' का एक दिन : बच्चन कौर ;(किसान परिवारों में नारी की व्यथा-कथा)**

सुबह जागने से लेकर रात के सोने तक हमारे देश के किसान परिवारों की औरत आम तौर पर क्या-क्या करती, सहती, झेलती है, इसकी एक झलक है, सुरजितो की यातना जो नहीं जानती कि जेल अगर जिन्दगी नहीं होती तो फिर जिन्दगी जेल क्यों हो जाती है?

8) **दौड़ : नफीस आफरिदी**

आदमी, औरत को पत्नी के रूप में अधिक प्यार करता है या अपने बेटे की माँ के रूप में। माँ बनने के संदर्भ, औरत के लिए, महज पति के लिए संतान पैदा करने तक ही सीमित होते हैं, या प्राकृतिक आवश्यकताओं के तहत एक संपूर्ण नारी होने से जुड़े हुए हैं? पति की अपूर्णता के बावजूद नारी मन की संपूर्णता पर लगे, व्यक्तिगत अंकुश एवं पुरुष की अधिकारिक मानसिकता को रेखांकित करती कहानी.....

9) **एक सूरजमुखी की अधुरी परिक्रमा. : कमलेश भारतीय : एक सत्यकथा**

विककी ने जहरीली दवा पीकर कुछ माह पहले आत्महत्या कर ली थी और अब उसकी माँ ने भी। आत्महत्या के बाद आत्महत्या का सिलसिला...बेटे के बाद माँ.....आखिर क्यों? क्यों एक सुंदर, आलिशान नयी-नवेली कोठी स्मशान में बदल गयी? नये संदर्भों में रेखांकित होती नारी यातना-----

10) **प्रलाप एक पत्नी का ; इर्विन शॉ : अमेरिकी कहानी**

पति के व्यक्तित्व को आकार देते-देते वह अंततः खाली की खाली रह गयी। ऐयाश कलाकार की पत्नी की वृद्धावस्था में पनपी दारुण स्थितियों का द्रावक आख्यान-----

11) **जानकी : क्विनी ठाकूर**

अपने जाये को कुएं में फेंक देनेवाली जानकी किसी के लिए एक जाना-पहचाना नाम हो सकती है, मगर उसका पूरा घटनाक्रम एक विसंगतिपूर्ण समाज का आईना भी हो सकता है.....। आखिर ऐसी कौनसी मजबूरी थी जिसके कारण एक माँ को खुद अपने मातृत्व की हत्या करनी पड़ी?

12) **अंधेरे के विरुद्ध : सत्यपाल सक्सेना**

वे कौनसी पारिवारिक स्थितियां हैं, जो एक पत्नी को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने के लिए विवश करती हैं? और अंततः उसे इस अभियान में विजयी बनाती हैं। घर-परिवार की संघर्षपूर्ण स्थितियों को रेखांकित करती कहानी.....

13) **एक्ट्रेस बनना चाहती हो तो: थॉमस वाइजमैन**

उसने एक नामी एक्ट्रेस बनने के लिए एक चोटी के निर्माता से सात साल का अनुबंध किया था। उसे तब क्या मालूम था कि अनुबंध पत्र की एक अनलिखी शर्त के अनुसार उसे.....

14) **नियंत्रण : रमेश आनंद**

गिरधारीलाल स्कूल मास्टर थे और चाहते थे कि उनके अपने बच्चे भी उनसे स्कूल के बच्चों की ही तरह ही डरे। पर उनकी पैंतीस वर्षिया कुंआरी बेटी आदर्श, कुछ और ही सोच रही थी।.....प्रस्तुत है जीवन की क्रूर सचाइयों से टकराती दास्तान।

15) **प्रलय : विजय किशोर मानव**

आपके घर की एक बहू ...नाम लक्ष्मी...रह-रह कर पुछती है कि उसकी बिमारी की कीमत पर जो बात आप करना चाहते हैं, उसका मकसद क्या है?.....रुढ़िग्रस्त परिवारों में बेमौत मरती बहू की व्यथा.....

16) **तलाक : लू शून : चीनी कहानी**

जिन्दगी में एक ऐसा मुकाम आता है जब स्त्री को रिस्तों-नातों, माँ-बाप, घर-बार सब कुछ त्याग कर किसी दूसरे घर के लिए समर्पित हो जाना पड़ता है। मगर क्या बात है कि वहां के पारिवारिक समीकरण में वह एक अनजानी और अकेली शक्ल में ढलती चली जाती है.....

17) **सतह के नीचे : सुरेंद्रपाल साह**

कुछ ऐसे भी क्षण होते हैं जब आदमी बेबस सा अपने को लुटता हुआ देखता रहता है और एक-एक कर सारी चीजें उसके हाथ से निकलती जाती हैं।.....रीति-रिवाज और अंधविश्वास किस कदर आदमी को तोड़ देता है इसका नमूना थी सौखी भैय्या की वर्तमान हालत....बस, आदमी को हलाल करने का मौका मिलना चाहिए, फिर शिकारियों की कोई कमी नहीं।.....ऐसे ही क्षणों की यातना गाथा।

विश्व साहित्य में विषकन्याएं

1) **पत्थर की अप्सरा : हयात उल्लाह अन्सारी : जन्म 1912 : साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत, राज्यसभा मनोनीत सदस्य। प्रमुख कृतियाँ—भर बाज़ार में शिकस्ता कंगुरे(कहानी संग्रह),घरौंदा और मदार(उपन्यास),लहू के फुल(बृहत् उपन्यास)। प्रस्तुत कहानी इसी उपन्यास का एक अंश-----**

“ जब मैं दो महीने की थी तब से ही मेरे दूध में जहर मिलाना शुरू कर दिया गया था और उसकी मात्रा बढ़ाते गये थे। जब मैं जवान हुई तो जहर की मात्रा इतनी बढ़ गयी कि उसकी आधी मात्रा भी नाग को पिलाई जाती तो वह मर जाता.....मैं जहर की वैसी ही आदि हो चुकी थी जैसे नशेबाज शराब का।”

बाबा कहते थे,” बेटी तू अप्सरा है....अप्सरा को देवता के सिवाय कोई हाथ नहीं लगा सकता.....जो इन्सान तुम्हें हाथ लगायेगा, फना हो जायेगा।” मैं इस पर खुश हो जाती थी। अपने को अप्सरा समझकर इतराती थी। पर अब तो मैं पछताती हूँ इस जिन्दगी पर

उषा की आवाज़ कानों में गुंजने लगी,” मेरा दोष क्या है?...मेरा दोष क्या है?...मुझसे नफ़रत क्यों?”

वाकई उसका दोष क्या था? क्या वह अपनी मर्जी से विषकन्या बनी थी?

2) **सर्वे और सुंदरी : हरिशंकर परसाई : जन्म-22-08-1924** प्रमुख कृतियाँ...कबीरा खड़ा बाज़ार में, विकलांग श्रद्धा का दौर, सदाचार का ताबीज, रानी नागफणी की कहानी, परसाई रचनावली साहब ने कहा, “ नक्शे? मैं तो सोचता था, आप मेरी जान मांगोगी। मैं जान निकालने के लिए तैयार बैठा था। नक्शा तो मामूली चीज है। जितने चाहिए ले लीजिये। आप चाहे तो मैं आपको पूरा देश दे सकता हूँ।”

3) **विलक्षणा : सुरेश उनियाल : जन्म-1947।** प्रमुख कृतियाँ—दरअसल, यह कल्पना लोक नहीं। सारिका संपादकीय विभाग से सम्बद्ध रहे हैं।

“ बृहद कथा, विशाखादत्त के नाटक, मुद्राराक्षस, प्रसाद के निबंध, चंद्रगुप्त मौर्य तथा अन्य उपलब्ध स्त्रोतों के कंकाल पर कल्पना की मांसमज्जा चढ़ाकर तैयार किया गया एक कथा प्रयोग।”

4) **घर-गमला : योगेश गुप्त : जन्म-दिसम्बर 1931,** प्रमुख कृतियाँ—उनका फैसला, अकारण, अनायास, उपसंहार(उपन्यास), टूटा हुआ कोना, अदरक के फूल (कहानी संग्रह)

‘ वह अन्दर आ गयी। उस आदमी ने देखा, इसकी बगल में एक दरी है। उसने दरी बिछा दी और लेट गयी, बोली,” किसीने ठीक कहा है, एक से दो भले।”

उस आदमी ने जोर देकर कहा,” बिल्कुल गलत बात, दो से एक भला। मरने में आसानी होती है, जीने में भी।”

5) **बेवकूफी की कीमत :** ‘ लेसू सेन्त नोवेलेस ‘ से

6) **एक दूजे के लिए :** बाला दुबे

7) **सोने का घूंट :** इस्मत चुगताई

लीना कभी भी उम्र नहीं छुपाती। उम्र वे छुपाते हैं जिनके पास सिवाय जवानी के और कुछ न हो। लीना के पास दुनिया है। उम्र से कभी उसे धक्का नहीं खाना पड़ा। उसके आशिकों में ज्यादातर कमसिन लडके हैं।

8) **शहद का जाल : बाला दुबे**

बड़े-बड़े देशों के जासूसी तंत्र, एकदूसरे का भेद पाने के लिए कई तरह के जाल बुनते हैं। उनमें सबसे घातक लेकिन असरदार होता है यह शहद का जाल।

9) **सुकन्या : हरिमोहन**

वह अब सुकन्या नहीं रह गयी थी, विषकन्या हो गयी थी। डॉ. गौतम को उसीने तो डंसा था। वह रो-रोकर उस विष को अपने भीतर से बहाकर बाहर निकाल देना चाहती थी, जो चंद्रशेखर तथा ऊषा ने अनजाने में उसके अन्दर भर दिया था।.....लेकिन क्या इससे डॉ. गौतम वापस आ सके?

10) **हत्यारिणी : सी.पी.डोनेल**

जब किसी स्त्री के दो पति मर जाये, और दोनों को ही पेट में बिमारी हों, और वह भी विवाह के केवल दो साल बाद और दोनों ही अपने पीछे पत्नी के लिए बड़ी जायजाद छोड़ जाये तो.....

11) **सुनो, परीक्षित सुनो : शिवप्रसाद सिंह (द्वितीय भाग) , जन्म..19-08-1929 ।** काशी हिंदू

विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग के अध्यक्ष रह चुके हैं। कृतियाँ....अलग-अलग वैतरणी, गली आगे मुडती है(उपन्यास), अंधकूप, एकक यात्रा सतह के नीचे (कहानी)

क्या खुद के मन में छल है, क्या विश्व युद्ध में अपनी रक्षा के लिए ब्रह्मशिर का प्रयोग उचित है? कौन सोचता है ऐसा? अब धर्मयुद्ध का अवनिकापात हो गया अश्वत्थामा। जिस ब्रह्मशिर को मेरे हाथों सौंपते हुए, मानव विरुद्ध इस्तेमाल न करने की शपथ कराई, वे खुद उसीपर दृढ़ रह सके क्या?

12) चमन्नचवा : राजेन्द्र प्रसाद पांडेय : जन्म 1947, रचनाएँ—नया प्रतीक, आलोचना, नवनीत, नयी कहानी, वर्तमान साहित्य और इंद्रप्रस्थ भारती आदि में रचनाएँ प्रकाशित। 'नान्दी' के प्रयोजक और सम्पादक।

कोई नहीं जानता कि मरे हुए पशु के चमड़े में मनुष्य की सारी संवेदना क्यों भरी हुई है? कोई नहीं जानता कि मिट्टी के कच्चे-पक्के गोलों में मन के सुखों, दुःखों, क्रोधकरुण, उत्साह विराम और प्रेम को अपना देने की अद्भुत शक्ति क्यों है?

.....उपन्यास का एक अंश—

13) छोटा सा इंद्रधनुष : महेश राजा

14) पान और पेड की दुकान : गोपाल चतुर्वेदी

15) अलविदा कैथी : जाहीद (सारिका में प्रकाशित प्रथम रचना)

नांव बह रही थी। वह पानी में हाथ डाले उसकी धार को पलटने की कोशिश कर रही थी।....मैंने उसे गौर से देखा। वह झुकी-झुकी उन अनबहे आंसुओं को पीने की कोशिश कर रही थी, जिनमें खून के कतरे थे। वह मुझे हाड-मांस की कोई नारी मूर्ति नहीं, अमरनाथ की प्राचीरों पर जमी बर्फ के ढेर सी लगी, जिसमें दिव्य आत्मा थी।

देह व्यापार

(अंक 315 : 1982 अगस्त उत्तरार्द्ध)

1) 000 और ' वह ' : अर्नेस्ट हेमिंग्वे (अमेरिकी कथाकार की सशक्त कृति ' टू हॅव अँड हॅव नॉट ' का अंश) कॉल गर्ल की देह के साथ किया गया कुछ क्षणों का खेल कैसे चक्कर पर चक्कर पैदा कर देता है, एक पति के लिए.....इसी खेल का बेबाक चित्रण.....

2) बाज़ार बंद : सुभाष अखिल : युवा लेखन कहानी प्रतियोगिता में पुरस्कृत कहानी)

' बाज़ार बंद करो ' एक तरफ यही शोर है। फिर भी बाज़ार बंद नहीं होते। क्यों नहीं होते? क्या बाज़ार के धंधे में लगे लोग इतने बेजार हो चुके हैं कि वे सचमुच किसी बस्ती में घर बसाकर बसना ही नहीं चाहते?....एक ' खलीफा ' और ' वेश्या ' की प्रेमगाथा, एक चश्मदीद गवाह के कलम से.....

3) नरगिस : सआदत हसन मण्टो

क्या अजब शख्स थी नरगिस भी कि एक बार तो किसी मर्द की रूह को भी फना कर दे। वह जिस्मफरोशी करती थी और वह भी अपनी शर्तों पर। ऐसी शख्सियत से आपका परिचय करवा रहे हैं, उर्दू कथा जगत के सरताज सआदत हसन मण्टो....

4) **कजरी : अब्दुल वहीद खॉ**

नाजी को हर कोई कजरी कहता, पर उसका मतलब कोई नहीं बताता और जिस दिन नाजी ने उस शब्द का अर्थ जाना, उस दिन उसका वजूद समाज के लिए एक गाली बन चुका था। प्रस्तुत है पश्तो की सवालिया कहानी.....

5) **नरक के देवता : सारा हसन और लूसी फ्रीमैन**

वेश्या के जीवन में सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति होता है दलाल, जो प्रायः उसका मालिक भी होता है। सत्यकथाओं पर आधारित 'द लॉर्ड्स ऑफ हेल' उपन्यास में निग्रो-दलाल-मालिक को नायक बनाकर, उसके माध्यम से अमेरिका के निम्न मध्यम वर्ग में चलनेवाले देह-व्यापार का विस्तृत और यथार्थवादी चित्रण किया है। अमेरिका में दलाल और वेश्याओं के संबंधों और गतिविधियों का उल्लेख करते अमेरिकी उपन्यास का अच्छा अंश.....

6) **जरीना : राकेश कपूर**

जरीना अपने देह का व्यापार करती थी। ...मगर वह समाज के उन अलमबरदारों की निगाहों में क्यों खटक रही थी, जो अपने जमीर का ही व्यापार करने लगे थे, जिन्होंने जरीना की दुकान उजाड़कर, अपनी दुकान सजा ली थी। शरीर का व्यापार अगर वेश्यावृत्ति है तो जमीर का व्यापार क्या है? इन्हीं सवालों को उठाती कहानी....

7) **वेश्या : रमणलाल सोनी**

कभी किसी वेश्या को माँ, बहन या बेटा कहकर देखा है आपने? अगर नहीं तो कभी कहकर देखिएगा, मगर उस बूढ़े की तरह नहीं, जिसने कुसुम को 'बेटा' तो कहा मगर.....। वेश्या जीवन में रिश्तों की प्यास को रेखांकित करती गुजराती कहानी.....

8) **मेजबान लड़की : जॉन फिलिप लुंडीन**

“अगर तुम मुझे ज्यादा पैसा दोगे तो मैं समझूँगी कि तुम वास्तव में मेरा खयाल रखते हो। नाइट क्लब की लड़की को हमेशा ज्यादा पैसा मिलना चाहिए।”....एक अमेरिकी के साथ जापानी वेश्या के संबंधों की दास्तान।

9) **वह बेचारी लड़की : गाई द मोपांसा**

एक के बाद एक बलात्कार ने उसे समझ दे दी और अब वह हर बलात्कार की कीमत वसूल करने लगी थी। एक घरेलू लड़की को वेश्या बनानेवाले कारणों की तलाश करती एक महत्वपूर्ण फ्रांसीसी कहानी....

10) **तस्वीर : तौसीफ चुगताई**

क्या वजह है कि कोठे पर बिकी एक बदसूरत और जालिम मर्द की बदकार औरत अपनी वफा को बेचने से इन्कार कर देती है और अमीरी तथा शराफत के लबादे में लिपटी मेहबूबा अचानक प्यार और गैरत को नजरअंदाज कर जाती है।....औरत की तस्वीर के दो पहलुओं का मनोवैज्ञानिक जायजा देती पाकिस्तानी कहानी।

11) **टैक्सी : गुरमेल भडाहड**

हमारी बहु-बेटियों के समक्ष ऐसी कौनसी मजबूरियाँ मुंह बाये आ खड़ी होती हैं कि उनके पास वेश्या बनने के अलावा दूसरा कोई चारा ही नहीं बचता? घर-परिवार में उत्तरोत्तर बढ़ती वेश्यावृत्ति पर क्षोभ प्रकट करती पंजाबी कहानी

12) **अंधेरा : सलीम खॉ गिम्मी : पाकिस्तानी कहानी**

यह कारोबार कानून के खिलाफ है, इखलाक के खिलाफ है, सेहत के खिलाफ है, धर्म के खिलाफ है, इन्सानी फितरत के खिलाफ है फिर भी क्या वजह है कि उजड़-उजड़कर, फिर-फिर आबाद हो जाती हैं वेश्याओं की बस्तियाँ? लाहोर के बाज़ार में जिस्मानी तिजारत का खाका....

(दो : अंक 316)

1) **पेशकश : जॉन ओ' हारा : अमेरिकी कहानी.....** कहानी जिन्दगी के उस मुकाम की, जब एक वेश्या ने अपने प्रेमी से कहा, “ मुझसे शादी कर लो तो मैं अपनी रोजाना की कमाई भी तुम्हें सौंप दिया करूंगी।” ...पेशकश, चाहत और शरीर की भौगोलिक जुगुप्साओं की.....

2) **शरीर की दीवार : जॉर्ज लुइस बॉर्ग : आर्जेन्टीनी कहानी**

वे दोनों ज्यूलियना को बेहद चाहते थे.....पर उससे भी ज्यादा करीब वह कौनसी चीज थी जिसकी वजह से उन्हीं में से एक ने ज्यूलियना की हत्या कर दी।....दो पुरुषों के बीच एक वेश्या के साझे की मार्मिक कथा..

3) **मुमताज़ : प्रोफेसर अब्बासी : एक सत्यकथा**

वह मुहब्बत ही क्या, जो कब्जे की तमन्ना करे? एक सच्चा किस्सा उस लबरेज तवायफ का, जिसने एक दिलफेंक नौजवान को इश्क की तालीम दी।

4) **रिश्ते-नाते : जयवन्त दळवी : मराठी कहानी**

किसी सीधे-सादे आदमी को वेश्या का घर अपने घर जैसा एवं अपना घर पराये जैसा लगने लगे तो इसे क्या कहेंगे? मानसिक विकृति? शायद नहीं, तो फिर? एक पारिवारिक सवाल उठाती विचारोत्तेजक रचना..

5) **काली खुशबू का फुल : अशोक गुप्ता**

वे विकराल स्थितियाँ कौन-कौन सी हैं, जब कोई औरत वेश्या बनने से इन्कार नहीं कर पाती? एक बेटे की जबानी, माँ की कहानी कि किस प्रकार व्यवस्था की विसंगतियों का शिकार होते-होते वह अपने घर को कोठा बना बैठी।

6) **सभ्य ढंग : सॉमरसेट मॉम : अंग्रेज़ी कहानी**

पुरुष भी कितने अजीब होते हैं, बेवकूफ बनना पसंद करते हैं लेकिन बनाया जाना नहीं। नारी और पुरुष की दो विपरीत मनःस्थितियों की रोचक दास्तान।

7) **नोरा : जेम्स ए. मिचनर : अमेरिकी उपन्यास का अंश**

एक बालवेश्या के जीवन और उसके प्यार, पहले प्यार की पावन स्मृति को उकेरता बहुचर्चित अमेरिकी उपन्यास ‘ कैरेवांस ’ का मार्मिक अंश।

8) जोगती : दुर्गाप्रसाद शुक्ल

सांसारिक अंधविश्वास और मानदंड ताराबाई को मजबूर कर रहे थे कि वह अपने किशोरी बेटी को ' देवदासी ' के रूप में ' वेश्या बना दे, जबकि वह खुद किसी भी कीमत पर अपने ' भूत ' को बेटी का भविष्य नहीं बनाना चाहती थी। क्यों और किसलिए? नारी शोषण के विरुद्ध जनमत तैयार करती महत्वपूर्ण कृति ' जोगती ' का सार संक्षेप.....

9) शट अप सर : सत्येंद्र शर्मा

यह न करती तो मेडिकल में दाखिला भी न ले पाती, फिर यहाँ का माहौल....अमीर घरों के लड़के-लड़कियाँ...एक से एक फैशन.....और मैं नहीं चाहती थी कि कोई मुझे गरीब समझे, छोटी नजर से देखे।

10)केतकी : बलवीर त्यागी

“ नहीं-नहीं भतीजे, यह जूठन तुम्हारे लिए नहीं है.....बाप-बेटे की समान रूप से भोग्या नहीं बनूंगी मैं। एक जनभोग्या नारी की मर्यादा-गाथा.....

11)हामीद : अचादियत के. मीहारजा : इंडोनेशियन कहानी

वे लोग कैसे होते हैं, जो दिन के उजाले में कहते हैं कि वेश्यावृत्ति कलंक है....और रात के अंधेरे में उसी कलंक को किसी औरत के माथे पर बिंदिया की तरह सजा देते हैं? इज्जत के खाचों में कैद दोगले चरित्रों को बेपर्दा करती कहानी.....

12)शबनम : गुरुबखशसिंह : पंजाबी कहानी

क्यों, क्यों? क्या वजह है कि शबनम कहीं भी क्यों न हो , न तो वह अपनी मनचाही दुनिया बसा पाती है और न ही छोड़ पाती है वह दुनिया, जो उसे कतई पसंद नहीं....कहानी उस लड़की की, जो जिस्म बेचकर भी मन से वेश्या नहीं बन पायी

13)कमरा नंबर ग्यारह : मोपासां : फ्रांसीसी कहानी

उन्नीसवीं सदी के पश्चिमी यूरोप और विशेष रूप से फ्रांस के संभ्रांत वर्ग के जीवन-मूल्यों में जिस तरह की गिरावट आ गयी और जिस्म का आदान-प्रदान जिस तरह आम हो गया था, उसका बड़ा ही कटू चित्रण किया है मोपासां ने इस कहानी में.....

(अंक 317)

1) टिकट : नॉर्मन मैलर : अमेरिकी कहानी

सफलता के टिकट की एक ही शर्त होती है कि अपने आपको शरीर से भी उसीके हवाले कर दो, जो तुम्हें कुछ दे सकता हो.....हॉलिवुड की दुनिया के कुछ विचित्र अनुभव.....

2) बकुल : गंगाधर गाडगीळ : मराठी कहानी

और ग्राहक तो बकुल को पैसा देते थे पर वह बिना कोई पैसा दिये उसके पास आता था। फिर भी बकुल को हमेशा उसीका इन्तजार रहता था और जो आखरी कीमत उसने दी वह आज भी बकुल को उदास कर जाती है। वेश्या के प्रेम की अनोखी दास्तान, जो कहीं आपको भी उदास कर देगी....

3) **नाना : एमिल झोला** : फ्रांसीसी उपन्यास का सार संक्षेप

“ तुम एक महीने में दस लाख खर्च करती हो ” नाना ने सुना तो विस्मय में पड़ गयी, क्योंकि वह तो यह जानती थी कि कभी-कभी उसे सौ फ्रैंक की जरूरत पड़ती है, तो उसके पास ये भी नहीं होते। पॅरिस के जनजीवन में तहलका मचा देनेवाली ‘ रतिरानी’ की मार्मिक गाथा के रूप में वेश्या जीवन को बयान करता विश्वविख्यात फ्रांसीसी उपन्यास का सार-संक्षेप.....

4) **शरीफजादी : राजिदा तबस्सुम** : उर्दू कहानी

जोहरा बीबी!....एक रंडी की भी कोई इज्जत होती है भला? मेरी तो जैसी गुजर गयी, मगर...” घर-परिवार और खानदानी मान-मर्यादा को रेखांकित करती एक तवायफ की नसीहत, उन शरीफजादियों के नाम, जो होती हैं कुछ, और करती हैं कुछ.....

5) **न्यूड पेंटिंग : स्टिफन लॉगस्ट्रिट** : स्पेनी उपन्यास ‘ आर्टिस्ट्स क्वार्टर ’ जो एक स्पेनी कलाकार के वास्तविक जीवन पर आधारित है, का एक महत्वपूर्ण अंश

” मैं उन पेंटर्स के हाथों, अपनी दुर्दशा नहीं होने दूंगी। मैं चाहूंगी की मेरी पहली और आखरी न्यूड पेंटिंग पर आपके ही हस्ताक्षर हो।”

6) **डेड लाईन : शब्दकुमार**

वह एक वेश्या थी और फिल्मों में हिरॉईन बनना चाहती थी।...मगर फिल्मी दुनिया के अनुभव पाकर उसने अपना इरादा मंसूख कर दिया कि वह हिरॉईन बनने से तो वेश्या ही भली। जाने-माने फिल्म लेखक द्वारा प्रस्तुत एक घटना-कथा...

7) **महानगर की रात्रि : सुरेंद्र महन्ती** : उडिया कहानी

कौनसा अहसास था जो उसे उस औरत के भीतर की औरत से मिलने को मजबूर कर रहा था? कोठेवाली की बहन उसे ऐसी क्यों लग रही थी कि उसे बेटी की तरह ही प्यार किया जा सके।...

8) **हमपेशा : सागर सरहदी**

सुमति बंगलोर से आयी थी। अभी उसने पेशे के गुर नहीं सीखे थे। पर कथानायक ‘ मैं ’ तो कहीं से नहीं आया था और सारे गुरों से परिचित था। फिर भी अपने को इस कदर लुटा-पिटा क्यों महसूस कर रहा था?

9) **प्रेमिका, समुद्र और वह लड़की : विभांशु दिव्याल** : युवा लेखन प्रतियोगिता (1982) में पुरस्कृत

वे कौनसे क्षण होते हैं, जब समुद्र के सौंदर्य और प्रेमिका के चेहरे पर हावी होने लगता है, उस लड़की का चेहरा, जिसे आम बोलचाल में कहा जाता है-वेश्या।....पुरुष के मन में नारी अस्मिता की बाजारू और घरेलू मानसिकता को रेखांकित करती रागात्मक कथा....

10) **बारात : अरविन्द गोखले** : मराठी कहानी

कितना चालाकीपूर्ण और कठिन काम होता है किसी कोठे के संचालन का, जहाँ ग्राहकों को खुश रखने से भी ज्यादा मुश्किल होता है कोठे की लड़कियों को संभाले रखना। कोठे के जीवन के अंतर्व्यापार की एक मार्मिक कथा.....

11) बाज़ार : राधेश्याम

इस बाज़ार में हर चीज बिक रही है-जिस्म भी, दिमाग भी और जमीर भी। लेकिन ग्राहक तो जिस्म को ही पहले मिलता है.....

12) छाग : हरमन चौहान : राजस्थानी कहानी

जी हां, वेश्या की भी अपनी इज्जत होती है और उसकी रक्षा के लिए वह हर सजा भुगतने को तैयार रहती है...

13) रोम की नगरवधू : अलबर्तो मोराविया : इतालवी उपन्यास सार-संक्षेप

जिन्दगी की जिजीविषा के मंजर, जब माँ चाहने लगे कि बेटी अपने देह की अधिक से अधिक कीमत वसूल ले....और बेटी चाहे कि उसका एक छोटासा घर आबाद हो जाये....। चाहत और हालात के टकराव की विश्व प्रसिद्ध गाथा.....

(अंक 340)

1. बहुत बड़ा मजाक : जॉन ओ' हारा

उसने कई शादियां कीं और हमेशा अनेक लड़कियों से घिरा रहा मगर उसका संताप यह रहा कि वह उन्हें चाहते हुए भी, नहीं चाह पाया। अप्राकृतिक देह व्यापार की विसंगति फिल्मी माहौल में उजागर करती अमेरिकी कहानी...

2. मैं वेश्या बनूंगी : यशपाल

वह धर्म कितना परोपकारी हो सकता है, जिसमें जो शरण वेश्या को मिलती है, किसी बहू-बेटी को नहीं? धार्मिक पाखंड को उजागर करती प्रख्यात कथाकार की विचारोत्तेजक रचना.....

3. तुम्हारी चाहत बस एक रात की : नेल्सन एल्ग्रेन

क्या पुरुष मूलतः एक पशु है?....और उसका प्रेम शरीर के तल का ही नहीं, पाशविक भी होता है ...? परपीड़न कामुकता को उजागर करती सशक्त कहानी....

4. फैशन मॉडल : जेम्स मिचनर

मॉडलिंग की दुनिया की चकाचौंध उसे खींचे ले रही थी.... और वह भी अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूरा होता देखने का सपना संजोएँ थी....फिर एकाएक क्या हो गया कि उसका सपना उसी के साथ राख हो गया.....

5. क्रिसमस का भोज : मोपासां : फ्रांसीसी कहानी

मैं उसके पास से गुजरता हूँ, तो मेरा हाथ चुमने के लिए मुझे रोक लेती है। मैं तो पागल हो जाऊंगा। इसलिए मैं क्रिसमस की पूर्व संध्या नहीं मनाता....

6. फ्रॉक का रंग : जसबीर चावला

तवायफ की फ्रॉक का रंग, बेटी की फ्रॉक के रंग से मेल खाता हो और वह उसी तरह कंधों पर झूल जाए, तो क्या उससे कीमत का तकाजा किया जा सकता है? बेटी और बेटी के उम्र की वेश्या की संवेदना को रेखांकित करती कहानी....

7. बदकार : बीर राजा

जिन्दगी को जोंक लगते देर नहीं लगती पर जोंक लगी जिन्दगी में कभी कोई उम्मीद का फुल खिल जाये और जोंक उसे भी न बख्शे तब? ...ऐसी ही जिन्दगी की बदनसीबी के बीच इन्सानियत की लौ से रू-ब-रू-कराती कहानी....

8. जैनकथा

संसार की असारता, भोगों की अनित्यता के समर्थक मुनी की आंखों में वह वेश्यागृह क्यों बस गया था और उसकी परिणति अंततः क्या हुई?

9. नई ब्लू फिल्म ; जोसेफ हेलर

युवती की मजबूरी थी ब्लू फिल्मों की हिरोइन बनना...और युवक था कि हिरो बनना ही नहीं चाहता था। क्यों होता है ऐसा, कि गलीज माहौल में फंसकर भी नेक इन्सान, इन्सानियत नहीं छोड़ पाता....

10. बेकसी के आगे : रिचर्ड द अंब्रेसियो

कुछ ही सालों में कितनी बदल गयी थी वह !....तब उसके लिए अभिनय की जरूरत पड़ी थी और आज वह सचमुच उसके साथ लिपटना चाहती है....खुशी के लिए.....

11. भर्ती : कैटी विलियम

वेश्याएं सिर्फ वेश्यालयों में ही नहीं, संस्थाओं में बाकायदा पदासीन भी की जाती हैं। देह का उपयोग तस्करी में करने के लिए नारी को इस धंधे में प्रवृत्त करने के घटनाक्रम को रेखांकित करती कहानी.....

12. कद्र : एम.इलियास

वह सोच रही थी कि सहेली से माफी किस तरह मांगे और सहेली थी कि कराची की कद्रदानी पर खुशी जाहिर किये जा रही थी....जिस्मानी तिजारत का खुलासा करती, एक चौकानेवाली पाकिस्तानी कहानी....

13. देवरजी : गुलजार

जब भाई की पत्नी भाभी कहलाती है, तब उस वेश्या को क्या नाम दिया जायेगा जो भाई की भोग्या हो?....संबंधों और मान्यताओं के दायरों को नापती कहानी.....

14. पानीपत की नगरवधू : नीरज ठाकुर

क्या वेश्या घर बसा सकती है? यह सवाल आज के समाज के लिए जितना जरूरी है, उतना ही जरूरी इतिहास में भी था। क्या नगरवधू, गृहवधु बन सकती है? इसी सवाल के विभिन्न पक्षों पर चर्चा कर रही है यह कहानी....

15. म्युनिख की वेश्या : मार्टीन ओ ' ब्रायन

सोलह देशों के इक्कीस महानगरों की कॉलगर्ल्स और वेश्याओं से साक्षात्कार के बाद लिखी गयी लेखक की विवादास्पद किताब ' ऑल द गर्ल्स ' का महत्वपूर्ण अंश....

1) इशारा : मोपासां

बेरेनेस ने इतना ही तो किया था कि सामने के घर में खिड़की पर बैठनेवाली वेश्या की देखा-देखी, सड़क पर गुजरनेवाले एक आदमी को वैसा ही इशारा कर दिया। फिर जो कुछ हुआ उसने बेरेनेस के मन को उद्वेलित कर दिया.....तत्कालीन यूरोप के कुलीन वर्ग की औरतों के पाखंड को उजागर कर रही हैं, फ्रांसीसी कथा-सम्राट की यह कहानी....

2)पेशा : इस्मत चुगताई

मुझे ऐसा लगा कि जैसे वह बन-संवरकर अपने ग्राहकों को, पेट की खातीर, लुभाती है। मैं भी कील-कांटे से दुरुस्त होकर अपने ग्राहकों के दरबार में जाती हूँ। फर्क इतना है कि मैं दिमाग बेचती हूँ और वह जिस्म। एक सामान्य औरत और एक वेश्या के जज्बात.....

3)बाबू के लिए : राकेश तिवारी

वासना इन्सान को किस हद तक गिरा देती है?...क्यों होता है ऐसा कि हम गिरते चले जाते हैं और हमें इस गलाजत का खयाल ही नहीं रहता? क्या स्त्री और पुरुष के बीच महज देह का रिश्ता सबसे ऊपर होता है?.....

4)ईदन : सआदत हसन मण्टो

सारा लाहौर ईदन पर फिदा था। कालाबाजार के बादशाह जफरशाह ने अपनी पेकार्ड कार उसके हुस्न की नज़र कर दी थी। वह उससे निकाह तक कर लेना चाहता था, पर ईदन तैयार न थी। उसी लाहौर में एक व्यक्ति ऐसा भी था जिसे उसके हुस्न की कतई पर्वा न थी। ईदन की मिन्नतों को वह ठोकरों से उड़ा देता था। वह व्यक्ति था लाहौर का सबसे बदसूरत आदमी, कादरा कसाई.....एक वेश्या के प्रेम संबंधों पर नये कोण से रोशनी.....

5)अन्दर का आदमी : नछतर

आदमी की इच्छा बड़ी होती है या इज्जत? यह किस हद तक जायज है कि कई लोग देह का सुख तो भोगना चाहते हैं लेकिन महज इज्जत डुबने के डर से ऐसा नहीं करते। आदमी के अन्दर और बाहर को, देह व्यापार की मानसिकता के तहत, समाज, सम्मान और व्यक्ति के स्तर पर रेखांकित करती पंजाबी कहानी.....

6)घरवाली : सलीम खॉ गम्मी

सरकार ने ऑर्डिनेंस निकाल दिया कि अब वेश्यावृत्ति नहीं होगी। और देखते ही देखते वेश्याओं ने शादियां रचा लीं। मगर क्या वेश्यावृत्ति तब भी बंद हुई....? देह व्यापार के पेशे से जुड़े दंदफंद का पर्दाफाश करती पाकिस्तानी कहानी.....

7)तुम मत आना : विरेन्द्र जैन

वह उसे वेश्या के रूप में देखकर भी अनदेखा कर गया....मगर वह उसे वेश्यागामी होते न देख सकी वेश्या के संस्कारी नारी मन को उकेरती कहानी.....

8)फिसलन : ब्रस जे. फ्रायडमैन

मुझे एहसास है कि मैं एक बीभत्स और अमानवीय चेहरा लिए कटघरे में खड़ा हूँ। लेकिन यह अहसास भी है कि यह कटघरा सोने का है। सोने के इस कटघरे की ओर ले जानेवाली फिसलन, एक लेखक को पतन की किन गहराइयों में पहुँचा देती है...पेश है उसका जायजा(लेकिन तुम्हारी कहानियों के पात्र एक शापग्रस्त, सूनी और खोखली जिन्दगी जीते हैं। वे न मालूम कैसे आदर्शवाद की खोज में भटकते रहते हैं। उनके भटकन की न कोई दिशा है, न कोई सार्थकता। इसलिए अपने उम्दा अंदाजेबयां के बावजूद, तुम पाठक को सिर्फ एक बेमानी ख्वाब ही दे पाते हो, यथार्थ को चित्रित करती कोई ठोस कथा नहीं.....रचना में एक लेखक के प्रति एक प्रकाशक का कथन) लेखक—“ मुझे मालूम पड़ चुका था कि मेरे उपन्यास के पहले भी मिस्टर क्रिवी के कई उपन्यास जल्द हो चुके थे और उनकी प्रतियाँ ब्लॉक में चार-पाँच गुना कीमत पर बेचकर काफी कमाई की गयी थी। ऐसी कमाई, जिसपर आयकर या अन्य कोई कर देने का सवाल ही नहीं उठता था.....

9)यह भी तो : गुरुपाल सिंह लिट्

क्या ऐसा भी हो सकता है कि पति-पत्नी के बीच देह की सौगात, सहसा देह व्यापार बन जाए और एक रिश्ते की पूर्ति के बाद सहसा पत्नी को लगे कि वह इस क्षण कोठे पर मौजूद कोई वेश्या है। देह-व्यापार के नितांत घरेलू पहलू को, घर-परिवार और मुहल्ले के प्रारूप में उजागर करती पंजाबी कहानी.....

10)स्थितियाँ : यशपाल वैद

रास्ते में मिली उस किशोरी को वह पार्क में लाये तो मनबहलाव के लिए....मगर जब वह उससे जुदा हुए तो किशोरी उनकी बेटी बन चुकी थी।

11)ठंडा गोश्त : प्रदीप अग्रवाल

जिस्म में जान होते हुए भी गोश्त ठंडा कैसे हो सकता है? वह कौनसी चीज है जो रिश्तों की गर्मी को ठंडेपन में बदल देती है? कैबरे नर्तकी के जीवन-संबंधों पर एक नज़र....

12)अहमदाबाद, अहमदाबाद

पतन के वे कौनसे स्तर हैं, जहाँ आदमी देह मात्र बनकर रह जाता है। उसके सारे कार्य मन की नहीं, केवल देह की आवश्यकता की पूर्ति के लिए होने लगते हैं? प्रस्तुत है, इसी पतन की पड़ताल करती एक गुजराती कहानी.....

13)परस्त्रीगमन : शानी

औरत तो औरत होती है, फिर क्यों आदमी अपनी घर की औरत को छोड़कर बाहर की औरत के लिए लार टपकाता फिरता है? कौन है जो उसे इस सबके लिए प्रेरित करता है? सारिका के लिए विशेष रूप से लिखी गयी शानी की एक महत्वपूर्ण कथाकृति.....

धन्यवाद्